समसामयिक हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली

टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पुणे (महाराष्ट्र)

पीएच्.डी. (हिंदी)

उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध–प्रबंध

शोध–छात्र

श्री. प्रकाश विलास जाधव

शोध–निर्देशक

डॉ. विजय महादेव गाडे

शोध केंद्र

श्री बालमुकुंद लोहिया संस्कृत आणि भारतीय विद्या अध्ययन केंद्र,

टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पुणे (महाराष्ट्र)

फरवरी, 2016

प्रमाणपत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि **श्री. प्रकाश विलास जाधव** ने टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पुणे की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि के लिए प्रस्तुत **'समसामयिक हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली'** शीर्षक से प्रस्तुत शोध–प्रबंध मेरे निर्देशन में सफलतापूर्वक पूरे परिश्रम के साथ पूरा किया है। यह शोधार्थी का मौलिक अनुसंधान है, जो तथ्य इस शोध– प्रबंध में प्रस्तुत किए गए हैं , मेरी जानकारी के अनुसार सही है। शोधार्थी के प्रस्तुत शोध कार्य के बारे में पूरी तरह संतुष्ट होकर ही इसे प्रस्तुति पूर्व परीक्षणार्थ अग्रेषित करने की अनुमति प्रदान करता है ।

स्थान : सांगली **शोध– निर्देशक**

तिथि : 20.02.2016

डॉ. विजय महादेव गाडे
एम. ए., बी.एड्., एम.फिल., पीएच.डी.

प्रख्यापन

मैं प्रख्यापित करता हूँ कि **'समसामयिक हिंदी उपन्यासों मे शिक्षा प्रणाली'** शोध–प्रबंध मेरा मौलिक अनुसंधान हैं, जो पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि के लिए प्रस्तुत की जा रहा है। यह शोध कार्य इससे पहले इस विश्वविद्यालय या अन्य किसी भी विश्वविद्यालय मे पीएच.डी. या अन्य किसी भी उपाधि के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है।

स्थान : सांगली **शोधार्थी**

तिथि : 20.02.2016

(श्री. प्रकाश विलास जाधव)

ऋण–निर्देश

प्रस्तुत शोध प्रबंध की पूर्ति में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में मेरी सहायता करनेवाले तथा मुझे समय–समय पर मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन देनेवाले गुरूजनों, हितचिंतकों एवं आत्मीयजनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मेरा परम कर्तव्य है।

यह शोध प्रबंध पूर्ण करते समय डॉ. विजय गाडे जी ने समय–समय पर मार्गदर्शन किया और मेरे मन जो प्रश्न उठे उनका समाधान किया इसलिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ के विभागप्रमुख डॉ. भट्टजी ने हमेशा मुझे प्रोत्साहित किया, इसलिए मैं उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मेरे साथ काम करनेवाले ज्येष्ठ अधिव्याख्याता डॉ. होसकोटी आर. ए., डॉ. इनामदार आय. ए., डॉ. कामशेट्टी के. एम., व्ही. ए. गदगडे, डॉ. अंजली रसाळ और जिल्हा शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्था, कोल्हापुर, सांगली के सभी अभिव्याख्याता और कार्यालयीन कर्मचारी हमेशा मेरे साथ रहे हैं और मार्गदर्शन करते रहे हैं, इसलिए उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। साथ ही ग्रंथपाल सौ. देवके पी. वाय., चंदनशिवे एन., और सौ. कांबळे व्ही. पी. जिन्होंने मुझे किताबें उपलब्ध कराई इसलिए उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मेरी पत्नी सौ. छाया प्रकाश जाधव जिन्होंने हर समय मुझे अनुसंधान के कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। अत: उनके प्रति भी मैं ऋण व्यक्त करता हूँ। साथ ही मेरे माता–पिता श्री. विलास नारायण जाधव, श्रीमती कृष्णाबाई विलास जाधव जो हमेशा ही मेरी उन्नति के लिए प्रयासरत रहते हैं उनके बिना यहाँ तक पहुँचना असंभव था। इसलिए उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

टंकलेखिका सौ. शितल अशोक पसारे, राजोम टायपिंग सेंटर, राजारामपुरी 14 वी गल्ली, कोल्हापुर इनके बिना यह कार्य समयपर पूरा होना असंभव था उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस अनुसंधान कार्य में जिन लोगों ने प्रत्यक्ष – अप्रत्यक्ष रूप से मुझे मदद की उन सभी लोगों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। भविष्य में इन सभी के स्नेह से आशीर्वाद की कामना करता हूँ।

स्थान : सांगली

तिथि : 20.02.2016 **(श्री. प्रकाश विलास जाधव)**

प्राक्कथन

प्राक्कथन

शैक्षिक अनुसंधान के क्षेत्र में नियोजन, व्यवस्थापन, संचलन, समायोजन, धन–व्यवस्था, शिक्षण–विधि, शिक्षण प्रणाली, सीखना तथा उसे प्रभावित करनेवाले तत्व, प्रशासन, पर्यवेक्षण, मूल्यांकन आदि आते हैं। विगत कुछ वर्षों से शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न घटकों पर विचार विमर्श, मापन तथा मूल्यांकन के क्षेत्र में पर्याप्त अनुसंधान हुआ है। उसके आधार पर शिक्षा व्यवस्था में प्रगति हुई है। सीखने की नयी–नयी विधियों का अविष्कार, सीखने को प्रभावित करनेवाले तत्त्व, छात्रों तथा शिक्षकों के पारस्पारिक संबंध, उनमें अंत:क्रिया, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, सहाय्यक सामग्री और उसका उपयोग आदि सभी क्षेत्रों में अनुसंधान हो रहे हैं तथा अभी बहुत कुछ और करना है।

अनुसंधान के द्वारा, सुव्यवस्थित विधियों द्वारा किसी क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना है। उसके साथ–साथ मानव का सर्वांगीण विकास कर उसे राष्ट्र की प्रगति में सहायक एवं कुशल नागरिक बनाना है। शिक्षा–व्यवस्था की प्रणाली द्वारा व्यक्ति के लिए अवसर की समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व जैसे उदात्त भावनाओं की स्थापना कर सकते हैं। आज की शिक्षण व्यवस्था में बाल–केंद्रित शिक्षा, व्यक्तिगत शिक्षा, समाज–शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा के नारे तो बुलंद हो रहे हैं किंतु समुचित योजना, कुशल मार्गदर्शन तथा सफल साधन, सदोष दृष्टिकोण, शिक्षा प्रकार के व्यवधानों के कारण प्रगति दिखाई नहीं दे रही हैं।

शिक्षा की समस्याओं और उनके समाधान की बात सोचने के लिए सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक अनुसंधान ही हमारी सहायता कर सकता है। शैक्षिक अनुसंधान के अंतर्गत शिक्षा दर्शन, शिक्षा का इतिहास, शिक्षा प्रणाली, विधियों, शिक्षक–शिक्षा, शैक्षणिक प्रशासन, शैक्षिक प्रशासनिक वातावरण एवं छात्रों की उपलब्धि पर उसका प्रभाव, सामाजिक शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा, उच्च शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा इन सभी क्षेत्रों के कुछ पक्षों को लेकर अनुसंधान–कार्य हुए हैं और हो रहे हैं।

हिंदी साहित्य विधा में अनेक क्षेत्रों मे अनुसंधान हो रहे हैं। उसमें हिंदी उपन्यास विधा में विभिन्न दृष्टिकोण से अनुसंधान हो रहे हैं। लेकिन हिंदी उपन्यासो में शिक्षण व्यवस्था और अब तक

शिक्षा प्रचार, व्यवस्था, दृष्टिकोण में लेखकों ने अपने–अपने मत–मतांतर व्यक्त किए हैं। अध्यापक–शिक्षा, शैक्षिक नियोजन, संगठन, प्रशासन, पर्यवेक्षक, प्राध्यापक, छात्र, प्राचार्य, उनकी अंतक्रिया संबंधी अनुसंधान होने की जरूरत थी। क्योंकि अनुसंधान ही सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समस्याओं का समाधान कर प्रगति का पथ प्रशस्त करता है। इसलिए मैंने ''समसामयिक हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली'' इस विषय पर अनुसंधान किया है। यह विषय हिंदी साहित्य विधा में उपेक्षित ही रह गया है और जिस पर कोई अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षक नित्य अनेक समस्याओं का सामना करता है। जो कुछ भी कर रहा है, वह वैसा क्यों? जो पाठ्यक्रम पढ़ रहा है, वही क्यों पढ़ाया जाय? क्या हमारी शिक्षण–विधि प्रभावपूर्ण है? क्या छात्रों में आवश्यक परिवर्तन लाने में समर्थ है? यदि नहीं तो क्यों? इसमें क्या बाधाएँ हैं?

शिक्षा का संबंध धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, समाज, संस्कृति के साथ कैसा है? क्या यह सब जिम्मेदारी संभालने में सक्षम हैं? क्या उसमें बदलाव की जरूरत हैं? शिक्षा प्रणाली में परंपरागत शिक्षा प्रणाली से आधुनिक शिक्षा प्रणाली के सभी विभागों में आया परिवर्तन, समस्याएँ, बाधाएँ उस पर विचार करने की जरूरत है।

अध्यापक वर्ग, युवा वर्ग का दृष्टिकोण जो सांस्कृतिक, सामाजिक, धर्मनिरपेक्ष, अर्थविषयक, मानवतावादी, राष्ट्रीय एकात्मता विषयक दृष्टिकोण विकसित करने में उपन्यासों का सहयोग कैसा रहा है?

ऐसे बहुत सारे प्रश्न शोधार्थी के मन में पैदा हुए, तब अनुसंधान कैसे किया जाए। संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण, अनुसंधान में अपनानी जानेवाली विधि प्रयोग में साहित्य का विश्लेषण इस पर विचार किया और उपन्यासों का, संदर्भ साहित्य, शब्दकोश, जर्नल आदि का चुनाव किया गया।

2. प्रेरणा एवं विषय चयन

छात्र जीवन से ही मेरी रूचि शैक्षणिक, प्रशासकीय, अनुसंधान और साहित्य की ओर रही है। एम. ए. (हिंदी) और एम.एड्. करने के पश्चात मैं अध्यापक के रूप से शैक्षणिक क्षेत्र से जुड़ा रहा। उसी दौरान पारिवारिक और प्रशासकीय जिम्मेदारी भी आ गयी। परिणामस्वरूप अनुसंधान के क्षेत्र में समय नहीं दे सका, फिर भी एम. ए. एम.एड्. होने के उपरांत अनेक शैक्षणिक और अनुसंधान

कार्यक्रम में सहभागी होता रहा हूँ । उस समय अनुसंधान के प्रति मेरी रूचि मुझे खलती रहती थी। अनेक वरिष्ठ शोध छात्रों से संपर्क एवं मित्रता के परिणामस्वरूप अनुसंधान क्षेत्र के प्रति मेरी रूचि बढ़ती गई। हिंदी साहित्य की विधाओं में से उपन्यास इस गद्य विधा में मुझे शुरू से ही रूचि रही है। विषय चयन की दृष्टि से नव पुस्तकों की सूचियाँ, साहित्यकार, उपन्यासकार की जानकारी लेने लगा। इसी रूचि के फलस्वरूप 'भ्रमभंग', 'छप्पर', 'एकलव्य', 'परिशिष्ट', 'मुक्तिपर्व' आदि उपन्यासों को पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी कारण हिंदी साहित्य के उपन्यास विधी में शोध अध्ययन की प्रेरणा मुझे मिल गई।

'छप्पर' उपन्यास का नायक चंदन शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक बनकर आंदोलन चलाता है। 'एकलव्य' उपन्यास में गुरू अपने शिष्य पर अन्याय करते हैं। 'परिशिष्ट' उपन्यास में उच्च शिक्षा में हो रही अन्यायी प्रवृत्ति का उद्घाटन किया है। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में शिक्षा के माध्यम से समाज परिवर्तन की बात उठाई गई है। मैं शिक्षा क्षेत्र के प्रशिक्षण अनुसंधान में सक्रिय होने के कारण इन उपन्यासों में चित्रित शिक्षा व्यवस्था से बेचैन हो उठा। अत: वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के मूल्यांकन हेतु निर्देशक डॉ. विजय गाड़े और वरिष्ठ शोध छात्रों से मैंने विचार–विमर्श किया। उसके उपरांत विषय की मौलिकता, औचित्य और महत्व को ध्यान में रखते हुए 'समसामयिक हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली' इस विषय पर शोध अध्ययन किया है।

3. शोध–विषय का उद्देश्य

1. समसामयिक हिंदी उपन्यासों मे शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करना है।
2. विवेच्य शिक्षासंबंधी हिंदी उपन्यासों का सामान्य परिचयात्मक विवेचन करना है।
3. विवेच्य उपन्यासों में अंकित शिक्षा व्यवस्था का अवलोकन करना है।
4. विवेच्य उपन्यासों में चित्रित अध्यापक वर्ग के दृष्टिकोण को उद्घाटित करना है।
5. विवेच्य उपन्यासों में चित्रित शिक्षित युवा वर्ग के दृष्टिकोण को उद्घाटित करना है।
6. विवेच्य उपन्यासों में चित्रित शिक्षासंबंधी समस्याओं का अध्ययन करना है।

4. शोध विषय का महत्व

किसी भी गाँव, प्रदेश, राज्य एवं राष्ट्र की प्रगति का द्योतक वहाँ की शिक्षा प्रणाली होती है। आजादी के बाद देश में शिक्षा प्रणाली के माध्यम से समाज परिवर्तन एवं प्रगति का सपना देखा जाता रहा, परंतु वह सपना, सपना ही रहा गया है। आजाद भारत की सुदीर्घ यात्रा में शिक्षा व्यवस्था की स्थिति दिशाहीन हो गई है। परिणामस्वरूप इस भ्रष्ट व्यवस्था की जड़ें गहरी हो रही है। आज प्रतिभासंपन्न भारतीय युवक अपनी विद्वत्ता विदेश में बेच रहे हैं, इस कारण देश का पतन हो रहा हैं। आज अध्यापक अपना उत्तरदायित्व पूरी तरह से नहीं निभा रहे हैं। युवक वर्ग भी दिशाहीन जीवन जी रहा है अत: 'समसामयिक हिंदी उपन्यासों मे शिक्षा प्रणाली' विषय आज के समय की माँग है और शिक्षा प्रणाली की दृष्टि से भी अपना अलग महत्व रखती है। परंपरागत और आधुनिक शिक्षा प्रणाली, ग्रामीण और शहरी प्रणाली, अध्यापक वर्ग का दृष्टिकोण, शिक्षित युवा वर्ग का दृष्टिकोण और शिक्षा प्रणाली संबंधी समस्याएँ आदि को लेकर प्रस्तुत उपन्यासकारों ने उसका यथार्थ चित्रण किया है।

प्राचीन काल से भारत वर्ष में शिक्षा को जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। अत: जीवन के सारे क्षेत्र में शिक्षा एवं संस्कार को व्यक्तित्व के उन्नयन का एक प्रभावी साधन या माध्यम माना गया है। आज भारत वर्ष में इसका विकास स्वतंत्रता के बाद में धीरे–धीरे किन्तु निश्चित रूप में होता दिखाई दे रहा है। आज भारत वर्ष को ग्लोबल नॉलेज और इकॉनॉमी क्षेत्र में एक अग्रसर देश के रूप में देखा जा रहा है। शिक्षा और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत के विकास ने विश्व में उसे अपना विशेष स्थान प्राप्त कर दिया है। जीवन का हर एक क्षेत्र सूचना प्रौद्योगिकी ने अपने (आप) में समा लिया है। अत: इससे शिक्षा क्षेत्र भी वंचित नहीं रहा है। शिक्षा क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग दिन–ब–दिन बढ़ रहा है। इससे युवा वर्ग बहुत ही प्रभावित हुआ है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा प्राप्त कौशल के कारण आज भारत वर्ष का युवा वर्ग अपनी प्रतिभा के द्वारा ब्रिटेन, अमेरिका, कनाड़ा में अनेक शैक्षिक और वैज्ञानिक संस्थाओं में बड़े बड़े ओहदों पर नियुक्त हो रहा है /चुना जा रहा है।

सूचना प्रौद्योगिकी के कारण शिक्षा क्षेत्र में आधुनिक तकनिकी ज्ञान का समावेश हुआ है। इससे नए–नए साधन, नई पद्धतियाँ और संचार माध्यमों के कारण व्यक्ति–व्यक्ति के बीच का संप्रेषण बहुत ही प्रभावी हो रहा है। इससे ज्ञान वृद्धि समय और पैसे की बचत के साथ साथ मानवी

संबधों में औपचारिकता तथा भावनाहिनता के भाव पनप रहे हैं। इसके मानवी जीवन पर सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों परिणाम हो रहे हैं। इसका बहुतही प्रभावी ढ़ंग से चित्रण वर्तमान उपन्यास साहित्य में किया गया है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, यह वर्तमान उपन्यास साहित्य का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के बदलते हुए स्वरूप को इन उपन्यासों में उजागर किया है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली से युवा वर्ग की प्रतिभा का विकास सभी क्षेत्रों में किसप्रकार से हो रहा है, और इससे युवाओं का जीवन किसप्रकार से प्रभावित हो रहा है इसका भी चित्रण उपन्यास साहित्य में मिलता है।

आज भारत वर्ष संसार में सबसे युवा देश है। क्योंकि भारत में विश्व की 17% आबादी रहती है। भारत आबादी की दृष्टि से विश्व में दुसरे स्थान पर है। इसकी 65% आबादी युवाओं की है। इसमें अधिकांश युवा गरीब और मध्यम वर्ग से है, जिनमें श्रम करने की अपार शक्ति है। भारत के पूर्व राष्ट्रपती डॉ. अब्दुल कलाम जी ने सन 2020 में भारत विश्व का एक शक्तिशाली देश होगा यह घोषणा की है। इस दृष्टि से भविष्य में युवाओं की भूमिका बहुत ही अहम होगी। भारत सरकार की योजनानुसार भारत में उच्च शिक्षा लेनेवाले युवाओं की संख्या जो वर्तमान में 12% है उसे 2017 तक 21% और 2020 तक 30% तक बढ़ानी है। वर्तमान समय की परिस्थिति का वर्णन उपन्यास साहित्य में जो दर्शाया गया है वह इसी ओर सूचित करता है।

आज शिक्षा प्रणाली में जो समस्याएँ हैं उन्हें अगर दूर करना है तो इस ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक होता है और साथ ही उज्ज्वल भविष्य के उपयुक्त बदलाव के लिए भी प्रेरित करना आवश्यक होता है। इस दृष्टि से समसामयिक उपन्यास साहित्य अपनी उत्तरदायित्व का वहन करता दिखाई दे रहा है।

प्रस्तुत शोध विषय का महत्व इसप्रकार है कि इन उपन्यासों की विषयवस्तु सर्वथ: नई, मौलिक और उल्लेखनीय है। अत: यह शोध विषय सर्वथ: नविनतम् कहा जा सकता है।

5. अध्ययन के आरंभ में मेरे सामने निम्न प्रश्न थे–

1. क्या प्रस्तुत उपन्यासों में चित्रित शिक्षा–व्यवस्था का चित्रण संपूर्ण भारतीय शिक्षा व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है ?

2. विवेच्य उपन्यासकारों ने शिक्षा संबंधी कौनसी समस्याओं का चित्रण किया है ?

3. विवेच्य उपन्यासकारों ने समसामयिक शिक्षा–व्यवस्था में अध्यापकों की भूमिका का स्पष्टीकरण किसप्रकार किया है ?

4. विवेच्य उपन्यासकारों ने समसामयिक शिक्षा–व्यवस्था और शिक्षित युवा वर्ग के पारस्पारिक संबंधों को किस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है ?

5. विवेच्य उपन्यास शिक्षा प्रणाली में कौन से परिवर्तन चाहते हैं ?

6. विवेच्य उपन्यासकार में चित्रित पात्रों के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन कैसे लाना चाहते हैं ?

प्रस्तुत विषय का अध्ययन सूक्ष्मता एवं योजनाबध्दता से संपन्न हो इसलिए शोध प्रबंध को छह अध्यायों में विभाजित कर शोध–विषय का विवेचन एवं विश्लेषण किया है।

6. संपन्न अनुसंधान कार्य

1. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में शिक्षा–व्यवस्था

   शोध छात्र– रमेश कुमार

   शोध – निर्देशक – प्रो. डॉ. सुधाकर पाण्डेय

   बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, अगस्त 1995

   (यूनिव्हर्सिटी न्यूज के अनुसार)

2. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में शिक्षा – व्यवस्था

   शोध छात्र– कृष्णदास सिन्हा

   शोध – निर्देशक – डॉ. पुरूषोत्तम अग्रवाल

   जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, दिसंबर 1990

3. देवेश ठाकूर तथा भालचंद्र नेमाडे के उपन्यासों में प्रस्तुत शिक्षा–व्यवस्था का तुलनात्मक अनुशीलन

   शोध छात्र– रमेश विठ्ठल गवळी
   शोध – निर्देशक – डॉ. अर्जुन गणपती चव्हाण
   शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, जून 2000

4. देवेश ठाकूर के उपन्यासों में चित्रित अध्यापक वर्ग

शोध छात्र– विश्वास दत्तात्रय पाटील

शोध – निर्देशक – डॉ. पांडूरंग पाटील

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, जुलाई 2000

5. विवेकी राय के गद्य साहित्य में शिक्षा व्यवस्था

शोध छात्र– विजय तानाजी शिंदे

शोध – निर्देशक – डॉ. पांडूरंग पाटील

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, दिसंबर 2000

7. शोध–विषय की सीमा और व्याप्ति

किसी भी कार्य की एक विशिष्ट सीमा एवं व्याप्ति होती है। प्रतिपाद्य शोधकार्य की सुकरता, सुलभता तथा अपेक्षित समय पर शोधकार्य संपन्न होने के लिए प्रतिपाद्य शोधकार्य की सीमा एवं व्याप्ति तथा दिशा सुनिश्चित की है। प्रतिपाद्य शोधविषय की निर्धारित व्याप्ति एवं सीमा निम्ननुसार है।

इसमें केवल उपन्यास विधा को चुना गया है। प्रस्तुत शोध विषय की सीमा में नौ उपन्यासकारों के नौ उपन्यास समाहित किए गए है। प्रस्तुत उपन्यास सन 1990 से लेकर 2010 की अवधि में प्रकाशित हुए है। काल सीमा की दृष्टि से इस शोध विषय के अंतर्गत प्रस्तुत उपन्यासों का समावेश किया गया है।

8. परिचय

प्रस्तुत विषय का अध्ययन सूक्ष्मता एवं योजनाबध्दता से संपन्न हो इसलिए शोध प्रबंध को छह अध्यायों में विभाजित कर शोध विषय का विवेचन एवं विश्लेषण किया है।

प्रथम अध्याय – शिक्षा का स्वरूप एवं उद्देश्य : सैद्धान्तिक विवेचन

प्रस्तावना

शिक्षा का अर्थ, शिक्षा की परिभाषा, शिक्षा का स्वरूप, शिक्षा के उद्देश्य, भारतीय शिक्षा प्रणाली का स्वरूप, शिक्षा एवं धर्म, शिक्षा एवं अर्थ, शिक्षा एवं काम, शिक्षा एवं मोक्ष, शिक्षा एवं समाज, शिक्षा एवं संस्कृति, निष्कर्ष।

द्वितीय अध्याय – शिक्षासम्बन्धी हिंदी उपन्यास : परिचयात्मक विवेचन

प्रस्तावना

देवेश ठाकुर– 'भ्रमभंग', मोहनदास नैमिशराय – 'मुक्तिपर्व', जयप्रकाश कर्दम – 'छप्पर', मदन दीक्षित – 'मोरी की ईंट', चंद्रमोहन प्रधान – 'एकलव्य', तेजिंदर– 'उस शहर तक', गिरीराज किशोर–'परिशिष्ट', सत्यप्रकाश – 'जसतस भई सवेर', रामधारीसिंह दिवाकर – 'आग, पानी, आकाश', निष्कर्ष।

तृतीय अध्याय – समसामयिक हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली

प्रस्तावना

परंपरागत शिक्षा प्रणाली, आधुनिक शिक्षा प्रणाली, ग्रामीण शिक्षा प्रणाली, शहरी शिक्षा प्रणाली, सरकारी शिक्षा प्रणाली, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्रणाली, उच्च माध्यमिक शिक्षा प्रणाली**,** उच्च शिक्षा प्रणाली. वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उदात्त दृष्टि का अभाव, शिक्षा प्रणाली में बढ़ती विसंगतियाँ, निष्कर्ष।

चतुर्थ अध्याय – समसामयिक हिंदी उपन्यास में अध्यापक वर्ग का दृष्टिकोण

प्रस्तावना

अध्यापक का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण, अध्यापक का सांस्कृतिक दृष्टिकोण, अध्यापक का सामाजिक दृष्टिकोण, अध्यापक का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, अध्यापक का अर्थविषयक दृष्टिकोण, अध्यापक का मानवतावादी दृष्टिकोण, अध्यापक का राष्ट्रीय दृष्टिकोण, अध्यापक का छात्रविषयक दृष्टिकोण, अध्यापक का मानवतावादी दृष्टिकोण, अध्यापक का राष्ट्रीय दृष्टिकोण, अध्यापक का छात्रविषयक दृष्टिकोण, निष्कर्ष।

पंचम अध्याय – समसामयिक हिंदी उपन्यास में शिक्षित युवा वर्ग का दृष्टिकोण

प्रस्तावना

शिक्षित युवा वर्ग का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण, शिक्षित युवा वर्ग का सांस्कृतिक दृष्टिकोण, शिक्षित युवा वर्ग का सामाजिक दृष्टिकोण, शिक्षित युवा वर्ग का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, शिक्षित युवा वर्ग का अर्थविषयक दृष्टिकोण, शिक्षित युवा वर्ग का मानवतावादी दृष्टिकोण, शिक्षित युवा वर्ग का राष्ट्रीय दृष्टिकोण, शिक्षित युवा वर्ग का अध्यापक के प्रति दृष्टिकोण, निष्कर्ष।

षष्ठ अध्याय – समसामयिक हिंदी उपन्यास में शिक्षा प्रणाली संबंधी समस्याएँ

प्रस्तावना

भ्रष्टाचार की समस्या, गरीबी की समस्या, मूल्यहीनता की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, शिक्षा के लिए उचित परिवेश का अभाव, अवसरवादिता की प्रवृत्ति, जातीयता की समस्या, निष्कर्ष।

9. उपसंहार

उपसंहार में पूर्व विवेचित अध्यायों के अध्ययन के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किया है। साथ ही शोध अध्ययन की मौलिक उपलब्धियों को आलोकित किया है।

अंत में आधार ग्रंथों एवं संदर्भ ग्रंथो की सूची तथा शोध की नई संभावनाएँ एवं दिशाओं को उजागर किया है।

10. मौलिकता

1. शिक्षा ही समाज के विकास का माध्यम है।
2. अध्यापक वर्ग ही समाज को सही दिशा दे सकता है।
3. देश के युवा वर्ग को शिक्षा के माध्यम से सही राह दिखाई जा सकती है।
4. हिंदी उपन्यासकारों ने शिक्षा प्रणाली की यथार्थता को स्पष्ट करके सही राह दिखाने का कार्य किया है।

11. शोध पद्धति

प्रस्तुत अनुसंधान पूर्ति हेतु मुख्यत: विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक पद्धती का प्रयोग किया गया है। तथा आवश्यकतानुरूप यथास्थान समीक्षा पद्धती का प्रयोग किया गया है।

शिक्षा संबंधी अनुसंधान के क्षेत्र में वर्णनात्मक अनुसंधान का सबसे अधिक महत्व है, यह बड़े व्यापक रूप में व्यवहार में प्रयुक्त होती है। जॉन डब्ल्यू बेस्ट के अनुसार वर्णनात्मक अनुसंधान क्या है? इसका वर्णन एवं विश्लेषण करते हैं परिस्थितियाँ अथवा संबंध जो वास्तव में विद्यमान हैं, विचारधारा अथवा अभिवृत्तियाँ पायी जा रही हैं, प्रकियाएँ चल रही हैं, अनुभव जो प्राप्त किए जा रहे हैं, अथवा नई दिशाएँ जो विकसित हो रही हैं उन्हीं से इसका संबंध हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि वर्णनात्मक अनुसंधान वर्तमान से अध्ययन के विषय की स्थिति को स्पष्ट करता हैं। इस विषय की वर्तमान स्थिति क्या हैं? इसके विषय में ज्ञान प्राप्त करना और भविष्यवाणी करना होता हैं।

अनुसंधान की समस्या के समाधान हेतू सामग्री का संकलन किया जाता हैं। एकत्रित सामग्री को बोधगम्य तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए उसका वर्गीकरण तथा सारणीकृत किया जाता है। उसके बाद विश्लेषण की प्रक्रिया आरंभ होती है। विश्लेषण के आधार पर सामग्री से निष्कर्ष निकाले जाते है।

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

अ. क्र.	अध्याय / प्रकरण	पृष्ठ संख्या
अ	प्रमाणपत्र	I
ब	प्रख्यापन	II
क	ऋणनिर्देश	III
ड	प्राक्कथन	IV-XIII
इ	विषयानुक्रमणिका	XIV- XVI
1	**अध्याय– एक** **शिक्षा का स्वरूप एवं उद्देश्य : सैद्धांतिक विवेचन,**	1–31
	प्रस्तावना	
1.1	शिक्षा का अर्थ	
1.2	शिक्षा की परिभाषा	
1.3	शिक्षा का स्वरूप	
1.4	शिक्षा का उद्देश्य	
1.5	भारतीय शिक्षा प्रणाली का स्वरूप	
1.5.1	शिक्षा एवं धर्म	
1.5.2	शिक्षा एवं अर्थ	
1.5.3	शिक्षा एवं काम	
1.5.4	शिक्षा एवं मोक्ष	
1.5.5	शिक्षा एवं समाज	
1.5.6	शिक्षा एवं संस्कृति	
	निष्कर्ष	
	संदर्भिका	
2	**अध्याय – दो** **शिक्षा संबंधी हिंदी उपन्यास : परिचयात्मक विवेचन**	32–55
	प्रस्तावना	
2.1	'भ्रमभंग'– देवेश ठाकुर	
2.2	'छप्पर' – जयप्रकाश कर्दम–	
2.3	'मोरी की ईंट' – मदन दीक्षित	
2.4	'एकलव्य' – चंद्रमोहन प्रधान	
2.5	'उस शहर तक' – तेजिंदर	
2.6	'परिशिष्ट' – गिरीराज किशोर	

अ. क्र.	अध्याय / प्रकरण	पृष्ठ संख्या
2.7	'जस तस भई सवेर' – सत्यप्रकाश	
2.8	'आग, पानी, आकाश' – रामधारीसिंह दिवाकर	
2.9	निष्कर्ष	
	संदर्भिका	
3	**अध्याय – तीन** **हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली**	56–88
	प्रस्तावना	
3.1	परंपरागत शिक्षा प्रणाली	
3.2	आधुनिक शिक्षा प्रणाली	
3.3	ग्रामीण शिक्षा प्रणाली	
3.4	शहरी शिक्षा प्रणाली	
3.5	सरकारी शिक्षा प्रणाली	
3.6	प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्रणाली	
3.7	उच्च शिक्षा प्रणाली	
3.8	वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उदात्त दृष्टि का अभाव	
3.9	शिक्षा प्रणाली में बढ़ती विसंगतियाँ	
	निष्कर्ष	
	संदर्भिका	
4	**अध्याय – चार** **हिंदी उपन्यासों में अध्यापक वर्ग का दृष्टिकोण**	89–130
	प्रस्तावना	
4.1	अध्यापक का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टीकोण	
4.2	अध्यापक का सांस्कृतिक दृष्टिकोण	
4.3	अध्यापक का सामाजिक दृष्टिकोण	
4.4	अध्यापक का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण	
4.5	अध्यापक का अर्थविषयक दृष्टिकोण	
4.6	अध्यापक का मानवतावादी दृष्टिकोण	
4.7	अध्यापक का राष्ट्रीय दृष्टिकोण	
4.8	अध्यापक का छात्रविषयक दृष्टिकोण	
	निष्कर्ष	
	संदर्भिका	

अ. क्र.	अध्याय / प्रकरण	पृष्ठ संख्या
5	**अध्याय – पाँच** **हिंदी उपन्यास में शिक्षित युवा वर्ग का दृष्टिकोण**	131–179
	प्रस्तावना	
5.1	हिंदी उपन्यास में शिक्षित युवा वर्ग का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण	
5.2	शिक्षित युवा वर्ग का सांस्कृतिक दृष्टिकोण	
5.3	शिक्षित युवा वर्ग का सामाजिक दृष्टिकोण	
5.4	शिक्षित युवा वर्ग का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण	
5.5	शिक्षित युवा वर्ग का अर्थविषयक दृष्टिकोण	
5.6	शिक्षित युवा वर्ग का मानवतावादी दृष्टिकोण	
5.7	शिक्षित युवा वर्ग का राष्ट्रीय दृष्टिकोण	
5.8	शिक्षित युवा वर्ग का अध्यापक के प्रति दृष्टिकोण	
	निष्कर्ष	
	संदर्भिका	
6	**अध्याय – छह** **हिंदी उपन्यास में शिक्षा प्रणाली संबंधी समस्याएँ**	180–215
	प्रस्तावना	
6.1	भ्रष्टाचार की समस्या	
6.2	गरीबी की समस्या	
6.3	मूल्यहीनता की समस्या	
6.4	बेरोजगारी की समस्या	
6.5	शिक्षा के लिए उचित परिवेश का अभाव	
6.6	अवसरवादिता की प्रवत्ति	
6.7	शिक्षा माध्यम की समस्या	
6.8	जातीयता की समस्या	
	निष्कर्ष	
	संदर्भिका	
	उपसंहार	215–223
	ग्रंथानुसूची	224–227

प्रथम अध्याय

शिक्षा का स्वरूप एवं उद्देश्य: सैद्धांतिक विवेचन

प्रथम अध्याय

शिक्षा का स्वरूप एवं उद्देश्य: सैद्धांतिक विवेचन

प्रस्तावना :

शिक्षा से तात्पर्य है कि ''मानव का सर्वांगीण विकास''। शिक्षा मानव के जीवन में व्याप्त अंधकार को नष्ट करती है। शिक्षा का प्रमुख प्रयोजन यह है कि, मानव के मस्तिष्क को योग्य बनाना है कि वह सत्य–असत्य की पहचान करें और अभिव्यक्त करने की क्षमता प्राप्त करें। शिक्षा के लिए अलग–अलग अर्थ है, लेकिन उसका उद्देश्य एक ही है, मानव का अंतरबाह्य विकास करना। इस संदर्भ में सुभाष शर्मा का कहना है,''शिक्षा संस्कृत के 'शिक्ष' शब्द से बना है, उसी तरह से अंग्रेजी का एज्युकेशन शब्द लैटिन भाषा के 'एजुकेटम'(Educatam) शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है, 'अंदर से बाहर की ओर विकास' अर्थात बालक की अंतर्निहित शक्तियों का बाह्य आवरण में विकास।''[1] शिक्षा एक सामाजिक गतिशील प्रक्रिया है। साथ ही व्यक्ति को अपने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के साथ अपना उचित समायोजन करने योग्य बनाती है।

1. शिक्षा प्रणाली का इतिहास:–

भारतीय शिक्षा प्रणाली का अवलोकन करने पर यह तथ्य हमारे सामने आते हैं कि भारतीय शिक्षा पद्धति अति प्राचीन है। भारत में शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात वैदिक काल (ई. पू. 2500 से लेकर ई. पू. 500) से माना जाता है। वैदिक काल में गुरूकुल प्रणाली थी। छात्र माता पिता से अलग गुरू के घर पर ही शिक्षा प्राप्त करता था, अन्य सहपाठियों के साथ वह गुरू गृह में ब्रम्हाचर्य का पालन करता हुआ शिक्षा प्राप्त करता था। इस काल में मौलिक रूप में शिक्षा दी जाती थी। इस काल से ज्ञान को मानव का तीसरा नेत्र माना गया है। तत्कालीन आर्य लोगों का विश्वास था कि शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपना मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और अध्यात्मिक विकास कर सकता है। तत्कालीन स्थिति में शिक्षा का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साथ–साथ मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना था। शिक्षा के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना, ईश्वर की भक्ति करना, एक सुजान नागरिक निर्माण करना था। साथ ही शिक्षा का प्रमुख प्रयोजन समाज हित एवं राष्ट्रीय भावना जागृत करना था। इस प्रकार वैदिक काल में शिक्षा से विधायक कार्य होते थे, लेकिन कुछ विघातक तथा अनिष्ट प्रकार भी

इस काल में शिक्षा के संदर्भ में नजर आते हैं। गहरा अध्ययन करने पर यह दिखाई देता है कि इस काल में शिक्षा पर धर्म का प्रभाव था। धार्मिक विषयों को अत्याधिक महत्व देकर वैज्ञानिक विषयों की उपेक्षा की गई थी। साथ ही इस काल में वर्ण–व्यवस्था जटिल होने के कारण शूद्रों के लिए शिक्षा के द्वार बंद थे। तत्कालीन काल में रूढिवादी और संकीर्ण दृष्टिकोण को अपनाया जाता था। परिणामस्वरूप विचार–स्वातंत्र्य का अभाव इस काल में दिखाई देता है। वास्तव में कहा जा सकता है कि इस समय की शिक्षा वेदों के अध्ययन तक ही सीमित थी। प्रत्येक के लिए वेदों का ज्ञान आवश्यक था। जिसे वेदों का ज्ञान नहीं था, वह शुद्र के समाज समझा जाता था।

बौद्ध काल (ई. पू. 500 से लेकर सन1200) में भी शिक्षा के उद्देश्य वही रहें, परंतु वेदों का अध्ययन इस काल में अनिवार्य नहीं माना गया था। महात्मा बुद्ध द्वारा 'बौद्धर्म' की स्थापना करने के उपरांत समाज में परिवर्तन की लहर निर्माण हो गई। बौद्ध धर्म का विकास बौद्ध विहारों में हो रहा था। निर्वाण प्राप्त करने के लिए बुद्ध ने अष्टमार्ग का रास्ता दिखाया था। निर्वाण प्राप्ति के बाद मनुष्य संसारिकता से छुटकारा पा जाता है। इस समय विहारों में शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का मत दृष्टव्य है–'' ये मठ केवल धर्म के ही नहीं वह शिक्षा के भी केंद्र थे।''[2] वहाँ पर बौद्ध भिक्षु शिक्षा प्रदान का कार्य करते थे। वैदिक काल की शिक्षा पद्धति से हटाकर बौद्ध काल में हर व्यक्ति को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार दिया गया। इस काल में जाति, वर्ग एवं संप्रदाय को नकारकर हर व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर सकता था। विवेच्य कालखंड में विद्यार्थी को केंद्रबिंदु माना गया था। इस काल में गुरू–शिष्य का संबंध पूरी तरह से वैदिक काल की भाँति स्नेहपूर्ण था। वैदिक काल में वैयक्तिक शिक्षा पर बल दिया जाता था तो बौद्ध काल में सामुहिक शिक्षा पर बल दिया जाता था। इस काल की शिक्षा में धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता था। बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली में जिसप्रकार अच्छे गुण दिखाई देते हैं उसीप्रकार कुछ दोष भी नजर आते हैं। इस काल में कट्टर धार्मिक विचार नजर आतें हैं। साथ ही स्वेच्छाचारी प्रवृत्तियों का अधिक बोलबाला नजर आता है। अहिंसा परमोधर्म के कारण शस्त्र निर्माण की शिक्षा में प्रगति नहीं हुई। इस शिक्षा पद्धति पर विचार प्रकट करते हुए डॉ. एफ.आई. केई कहते है-""For over fifteen hundred years Buddhist education was in vogue and developed a system of education wich was a rival of the Brahmanic system though in many ways similar toit."[3] (बौद्ध शिक्षा 1500वर्ष से अधिक प्रचलित रही है और उसने

ऐसी शिक्षा पद्धति का विकास किया जो ब्राहमणीय शिक्षा–पद्धति जिसका प्रतिद्वंद्वी थी, पर अनेक बातों में उसके सदृश्य थी। इसप्रकार बौद्धकाल में शिक्षा प्रणाली नजर आती है। वैदिक युग की शिक्षा की विशेषताएँ बौद्ध शिक्षा प्रणाली में, पाठ्यक्रम शिक्षा उद्देश, विधियाँ, समावर्तन आदि बातों पर आधारित थी। इस युग में हस्तकला, वस्तुकला, चिकित्सा शास्त्र, उद्योग शिल्प शिक्षा विकसित हो गई थी।

मध्यकाल (सन 1200 से लेकर सन 1700 तक) में मुसलमान शासकों के आगमन से परंपरागत शिक्षा पद्धति का ऱ्हास हो गया। उन्होंने शिक्षा पद्धति को राजनीतिक आश्रय दिया था, जिसने ज्ञान के प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। साथ ही उन्होंने लोगों में इस्लाम धर्म के अनुसार एक विशेष प्रकार की नैतिकता का विस्तार करने पर बल दिया है। उन्होंने हिंदू संस्कृति पर प्रहार करते हुए इस्लाम संस्कृति के प्रचार–प्रसार पर बल दिया। इन इस्लाम शासकों को भय था कि भारत की बहुसंख्य हिंदू जनता उनके खिलाफ विद्रोह कर सकती है। इसलिए राजनीतिक स्थिरता आने के लिए मुस्लिम शिक्षा के प्रसार पर बल दिया गया। फलस्वरूप इनके कुछ दोष भी सामने आ जाते हैं। उन्होंने हिंदू शिक्षा केंद्रों का विनाश कर दिया। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का मत अवलोकनीय है,'' मुसलमानों ने सत्ता पर आते ही उनके अंतर्राष्ट्रीय हिंदू–शिक्षा केंद्रों को मुस्लीम कर दिया।''[4] इसप्रकार मुस्लिम शासकों ने हिंदू शिक्षा पद्धति पर गहरा आघात किया है। साथ ही इन शासकों ने प्रांतीय भाषाओं की उपेक्षा की है। इस युग में मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव हमारे देश की संस्कृति पर पड़ता रहा। मुस्लीम शासको ने भारतीय शिक्षा के स्वरूप के बदलकर एक नई शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया था तथा साथ ही हमारे देश चली आ रही प्राचीन वैदिक शिक्षा और बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली को समूल नष्ट करने का भी प्रयत्न करते रहे।

भारत में सन 1600 से लेकर 1947 तक यूरोपीय मिशनरी की शिक्षा पद्धति एवं अंग्रेज शासकों का काल था। प्राचीन हिंदू शिक्षा प्रणाली और मुस्लीम शिक्षा प्रणाली संरक्षकों के अभाव में पतनोन्मुख हो गई थी। भारत में यूरोपीय मिशनरी के आगमन से नई शिक्षा–प्रणाली सामने आई। इस संदर्भ में ए. एन. बसु का कहना है, कि "It was mainly due to te efforts of the missionaries that the early years of the nineteenth century witnessed the emergence of a new system of education in this country."[5] (यह मुख्यत: मिशनरियों के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि 19 वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों ने इस देश ने शिक्षा की एक नई पद्धति का अविर्भाव देखा।)

यूरोपीय मिशनरियों ने इसाई धर्म के प्रचार–प्रसार करने के लिए शिक्षा को साधन के रुप में प्रयोग किया है। इन मिशनरियों ने अपना पाठ्यक्रम विस्तृत रुप में अपनाया। इसमें धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ अंग्रेजी, गणित, भूगोल आदि विषयों पर बल दिया। उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए स्थानीय भाषाओं को भी प्रधानता दी थी। उन्होंने परंपरा से हटकर पूर्णतया नई शिक्षा–प्रणाली को अपनाया। उन्होंने किसी जाति, वर्ग एवं संप्रदाय से हटकर सभी के लिए नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की है। इसप्रकार भारतीय जनता के लिए पूर्णतया शिक्षा के नई द्वार खोलने का काम मिशनरियों ने किया था।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय जनता में शिक्षा का विकास करने के लिए प्रयास किया है। तत्कालीन गव्हर्नर जनरल लॉर्ड बैंटिग ने 10 जून, 1834 में मैकाले को शिक्षा सलाहकार के रुप में नियुक्त किया। मैकाले ने सन 1835 में अपना विवरण पत्र प्रस्तुत किया। इसमें शिक्षा की नीति निश्चित की गई। साथ ही पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान के प्रसार पर बल दिया। परिणामस्वरुप भारतीय जनता आधुनिक संरचना से परिचित होती गई। मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के साथ–साथ देशी भाषाओं को भी प्रधानता दी। इससे भारत की जनता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना का निर्माण हुआ। आग्ल साहित्य से परिचित भारतीयों को भी प्रोत्साहन मिला। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''मैकाले का उद्देश्य चाहे जो कुछ भी हो परंतु उसने अंग्रेजी भाषा के प्रचार और प्रसार को सरकारी मान्यता प्रदान करके शिक्षित भारतीयों में राजनैतिक और सामाजिक चेतना उत्पन्न कर दी।''[6] इसप्रकार मैकाले के निर्णय से भारतीय समाज में परिवर्तन नजर आया है।

सन 1854 में वूड का घोषणा–पत्र प्रकाशित हुआ। वह घोषणा–पत्र भारतीय जनता के लिए और खासकर शिक्षा क्षेत्र के लिए महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस घोषणा–पत्र में भारतीय जनता के लिए शिक्षा के संदर्भ में सभी पक्षों को लेकर महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक सिफारिशें की गई। इन सुझावों का ही परिणाम था कि भारत में अनेक शैक्षणिक संस्थाएं एवं विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ। सन 1882 में हंटर कमिशन का गठन किया गया। इस कमिशन ने शिक्षा क्षेत्र को सार्वजनिक बनाया और प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक के दरवाजें जनता के लिए प्रशस्त किए। सन 1898 में लॉर्ड कर्झन भारत के गव्हर्नर जनरल बन गए। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार को सरकार का कर्तव्य बतलाकर संख्यात्मक एवं गुणात्मक प्रगति पर बल दिया। साथ ही उन्होंने माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में भारतीय भाषाओं को सम्मानजनक स्थान दिया। भारतीय शिक्षा–व्यवस्था में सुधार लाने

के लिए 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' गठित किया। उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित करते हुए उच्च शिक्षा के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उसके साथ–साथ प्रत्येक प्रांत में शिक्षा विभाग की स्थापना श्रृंखलाबद्ध विद्यालयों की स्थापना सहायता अनुदान की घोषणा शिक्षक–प्रशिक्षण हेतू विद्यालय स्थापित करने की सिफारिश, स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा के लिए औद्योगिक विद्यालय खोलने की सिफारिश करके महत्त्वपूर्ण कार्य किया। डॉ. राधाकृष्णन एक स्वेच्छाचारी शासक और शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान देनेवाले कठोर साम्राज्यवादी थे। इस संदर्भ में श्रीनाथ बासु लिखते है, "By temperament Curzon was benevolent autocart and by training a diehard imperialist faith in strong rule."[7] (वह स्वभाव से उदार व स्वेच्छाचारी शासक था तथा शिक्षा द्वारा कठोर शासन में विश्वास करनेवाला कठोर साम्राज्यवादी था।)

सन 1882 में हंटर समिति भारतीय शिक्षा के संदर्भ में गठित की गई। सरकार ने इस समिति के आड़ में शिक्षा प्रसार पर रोक लगा दी थी। इस समिति ने शिक्षा–व्यवस्था में संख्यात्मक वृद्धि की अपेक्षा गुणात्मक वृद्धि को अधिक महत्त्व दिया है। द्वितीय महासमर के उपरांत सन 1944 सार्जेंट रिपोर्ट सामने आई। जिसमें भारतीय शिक्षा–व्यवस्था के गुण–दोषों का कच्चा–चिट्टा मौजूद था। पर देश के आजादी के बाद वह योजनाएं कागज पर रहने से शिक्षा–व्यवस्था में सुधार नहीं आया है।

आजादी के उपरांत देश के शिक्षा–व्यवस्था में प्रगति होगी। यह सपना देखा गया लेकिन वह सपना आज सपना ही बनकर रह गया है। क्योंकि आजादी के उपरांत सन 1948 में '' विश्वविद्यालय आयोग'', सन 1952 में ''माध्यमिक शिक्षा आयोग'' और सन 1964में '' भारतीय शिक्षा आयोग'' (कोठारी आयोग) की स्थापना की गयी। इन आयोगों ने सुदूरगामी एवं महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए। लेकिन सरकार ने उसका पूर्ण रुप से अमल नहीं किया। परिणामस्वरुप शिक्षा–व्यवस्था में सुधार होने के बजाय शिक्षा नीति एक असर बनकर रह गई। सन 1986 में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति', सन1992 में 'नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति' का गठन किया गया। उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए। परंतु वह भी पूरीतरह से अमल में नहीं आ रहे हैं।1995 में डॉ. आर.एच. दवे के नेतृत्व में एक समिति गठित की गई। जिसमें कक्षा 1 से 5 वी कक्षा के स्तर मातृभाषा, गणित परिसर अभ्यास को श्रेणीबद्ध आकलन करके न्यूनतम अध्ययन स्तर निश्चित किया गया। जो पाठ्यक्रम क्षमताधिष्ठित अभ्यासक्रम के रुप में सभी राज्यों द्वारा अपनाया गया।

सन1992 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए थे। लेकिन जितनी फलनिष्पत्ति मिलनी चाहिए थी उतनी नहीं मिली। जिसके कारण उनका पुनर्विलोकन करने के लिए सन 2000 में प्रा. यशपाल के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय सुकाणु समिति नियुक्त की गई। जिसमें शालेय विषय, अध्ययन, अध्यापन प्रक्रिया, पाठ्यक्रम की समझ आदि वर्तमान स्थिति और भविष्य में कौन से बदलाव की जरुरत है। इसपर कार्य करने के लिए 21 केंद्रित गुट (Focus Groups) स्थापन किए गए।

''21 केंद्रित गुट अभ्यास और उनके अनुसंधान से आए निष्कर्ष और सिफारिशों से राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 2005 की निर्मिति हुई। जिसमें चार मार्गदर्शक तत्व देखने को मिलते हैं–

1. संपादित ज्ञान का संबंध पाठशाला के बाहरी जीवन के साथ जोड़ना।
2. अध्ययन में पुनरावृत्ति (पुनर्पाठ) से परावृत्त कराना।
3. पाठ्यक्रम का स्तर इतना ऊँचा करना की पाठ्यसामग्री से परे जाकर अध्ययन प्रवृत्त हो।
4. मूल्यांकन में तरलता इतनी हो की कक्षा छात्रों के जीवन का एक अंग बन जाए।''[8]

'' एन.सी.एफ. 2005 में (National Curriculum framework)

1. दृष्टिकोण के बारे में विचार व्यक्त किए गए हैं। जिसमें शिक्षा व्यवस्था का सक्षमीकरण, अध्ययन, संविधानिक मूल्योंपर आधारित अभ्यासक्रम, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, नीतिमत्ता, लिंग भेद, जरुरतों पर आधारित शिक्षा सक्षमीकरण आदर्श का निर्माण आदि पर विचारों की अभिव्यक्ति हुई हैं।

2. अध्ययन और ज्ञान में एकात्मिक दृष्टिकोण सर्जनशीलता, विकास, अनुभव और क्रिया एक साथ मिलाकर क्रियाशील शिक्षा।

3. ज्ञान के साथ–साथ आकलन, उपयोजन, निरीक्षण, शोध वृत्ति, विश्लेषण, संश्लेषण आदि की चिंतनवृत्ति बढ़ाना।

4. पाठ्यक्रम का क्षेत्रीय स्तर और निरंतर मूल्यांकन पद्धति का प्रयोग किया गया है। जिसमें छात्रों का संख्यात्मक और गुणात्मक मूल्यांकन मिलता है। क्रमिक मूल्यांकन का प्रावधान किया गया है। वह मूल्यांकन व तनावमुक्त बालस्नेही विद्यार्थी केंद्रीत हो।

5. पाठशाला और कक्षा का वातावरण इसमें अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया के लिए आवश्यक बुनियादी सुविधा साहित्य, पाठ का निर्माण उसी प्रकार हो जिसमें गुटकार्य, चिंतन, उपक्रम, अभ्यास आदिपर ध्यान दे।''[9]

अध्ययन–अध्यापन में शिक्षक और छात्रों के बीच अंतरक्रिया बहु माध्यम का प्रयोग करके कक्षा का वातावरण बालस्नेही आनंददायी बनाने में मद्द हो।इसप्रकार प्राथमिक शिक्षा का सार्वत्रिकीकरण ओर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का प्रसार होने के लिए 2005 की राष्ट्रीय शिक्षानीति में पूरा प्रयास किया गया है। जिसमें निम्न बातोंपर प्रकाश डाला गया है।अपनी सोच, कल्पकता, सृर्जनशीलता के माध्यम से विद्यार्थियों को आयुर्मान के अनुसार उनके जीवन में उतारने और संस्कार करने का पूरा स्वातंत्र्य अध्यापकों को दिया गया है।अध्यापक अपने अध्यापन में ज्ञान संरचनावाद के द्वारा विद्यार्थियों की स्वयं अध्ययन के अधिक से अधिक अवसर उपलब्ध करके छात्रों का सहयोग बढ़ाए।

2005 की राष्ट्रीय शिक्षानीति के आधारपर हर राज्य ने अपनी राज्य की शिक्षानीति बनाते समय आधारभूत दस्तावेज के रुप में एन.सी.एफ. 2005 को अपनाया है। जिसके आधारपर राज्य शिक्षानीति 2010 SCF (State Curriculum framework 2010) हर राज्य में बनाई गई है। राज्य का पाठ्यक्रम तैयार करने की जिम्मेदारी राज्य शैक्षिक संशोधन और प्रशिक्षण संस्था (एम.एस.सी.ई.आर.टी) MSCERT – (Maharashtra State Council of Education Research and training) सौंप दिया था।

शिक्षा प्रणाली में पाठ्यक्रम पुनर्रचना की आवश्यकता:–

1. शैक्षणिक बदलाव– राष्ट्रीय शैक्षिक नीति 1996, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रुपरेखा 2000 पर आधारित प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम 2004 के अंमल हेतु केंद्र सरकार द्वारा एन.सी.एफ . 2005 SCF (State Curriculum framework 2005) प्रचलित पाठ्यक्रम का पुनर्विलोकन करने के लिए अलग–अलग राज्यों को भेज दिया। आर.टी.ई 2009 के कानून के अनुसार शिक्षा का सार्वत्रिकीकरण और गुणवत्ता के दृष्टि से बहुत बड़ा कदम उठाया गया है। उसी कानून के अनुसार निरंतर सर्वकष मूल्यांकन का प्रावधान किया गया है। उसमें आकारिक और संकलित मूल्यांकन

साधन तंत्रों का समावेश किया गया है। इस प्रकार आरंभ से लेकर आज तक शिक्षा प्रणाली में सुधार लाने का प्रयास किया है।

भारतीय शिक्षा के इतिहास की प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

भारतीय इतिहास में घटी शिक्षा की प्रमुख एवं महत्वपूर्ण घटनाएँ निम्न प्रकार से है।

1780 : ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा 'कोलकाता मदरसा' स्थापना की ।

1799 : ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बनारस में 'संस्कृत कालेज' की स्थापना ।

1813 : एक आज्ञापत्र के द्वारा शिक्षा में धन व्यय करने का निश्चय किया गया।

1835 : मैकाले का घोषणापत्र ।

1854 : वुड का घोषणापत्र ।

1857 : कलकत्ता, बंबई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित हुए।

1870 : लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और उनके सहयोगियों द्वारा पुना में फर्ग्यूसन कालेज की स्थापना ।

1882 : हण्टर आयोग।

1886 : आर्य समाज द्वारा लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज की स्थापना ।

1893 : काशी नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना ।

1898 : काशी में श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा सेंट्रल हिंदू कालेज की स्थापना ।

1901 : लार्ड कर्जन ने शिमला में एक गुप्त शिक्षा सम्मेलन किया जिसमें 152 प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे।

1902 : भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति (लॉर्ड कर्जन द्वारा) स्वामी श्रध्दानन्द द्वारा हरिद्वार के पास कांगडी में गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय की स्थापना ।

1904 : भारतीय विश्वविद्यालय कानून बना ।

1905 : स्वदेशी आंदोलन के समय कलकत्ते में जातीय शिक्षा परिषद की स्थापना हुई और नैशनल कालेज स्थापित हुआ जिसके प्रथम प्राचार्य अरविंद घोष थे। बंगाल टेक्निकल इस्टिट्यूट की स्थापना भी हुई ।

1911 : गोपाल कृष्ण गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क और अनिवार्य करने का प्रयास किया ।

1916 : मदन मोहन मालवीय द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना ।

1937–38 : गांधीवादी विचारों पर आधारित बुनियादी शिक्षा योजना लागू ।

1945 : सार्जेण्ट योजना लागू ।

1948–49 : विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन ।

1951 : खडगपुर में प्रथम आईआईटी की स्थापना ।

1952–53 : माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन ।

1956 : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना ।

1958 : दूसरा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान मुंबई में स्थापित किया गया।

1959 : कानपुर एवं चेन्नई में क्रमश: तीसरा एवं चौथा आईआईटी स्थापित किया गया।

1961 : एनसीईआरटी की स्थापना National Council of Education Research and training
प्रथम दो भारतीय प्रबन्धन संस्थान अहमदाबाद एवं कोलकाता में स्थापित किए गए।

1963 : पॉचवा आईआईटी (Indian Institute of technology)दिल्ली में स्थापित किया गया तीसरा (I.I.M.) (Indian Institute of management) बंगलौर में स्थापित किया।

1964–66 : कोठारी शिक्षा आयोग की स्थापना, रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

1968 : कोठारी शिक्षा आयोग की सिफारिशों के अनुसरण में प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति अपनाई गई ।

1975 : छह वर्ष तक के बच्चों के उचित विकास के लिए समेकित बाल विकास सेवा योजना प्रारम्भ हुआ।

1976 : शिक्षा को राज्य विषय से समवर्ती विषय में परिवर्तन करने हेतु संविधान संशोधन किया गया।

1984 : लखनऊ में चौथा (I.I.M.) (Indian Institute of management) स्थापित किया गया।

1985 : संसद के अधिनियम द्वारा इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना ।

1986 : नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को अपनाया ।

1987–88 : संसद के अधिनियम द्वारा सांविधिक निकाय के रूप में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) (All India council for technical education) स्थापित
राष्ट्रीय साक्षरता मिशन प्रारम्भ ।

1992 : आचार्य राममूर्ति समिति द्वारा समीक्षा के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में संशोधन ।

1993 : संसद के अधिनियम द्वारा संविधिक निकाय के रूप में राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद स्थापित ।

1994 : उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं का मूल्यांकन एवं प्रत्यायन करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद की स्थापना । (बंगलौर में नॅक का मुख्यालय) ।
गुवाहाटी में छठे (IIT) (Indian Institute of technology) की स्थापना ।

1995 : प्राथमिक स्कूलों में केन्द्रीय सहायता प्राप्त मध्यान्ह भोजन आरम्भ की गई।

1996 : पाँचवा (I.I.M.) (Indian Institute of management) कोझीकोड में स्थापित ।

1998 : छठा (I.I.M.) (Indian Institute of management) इंदौर में स्थापित ।

2001 : जनगणना में साक्षरता दर 65.4 (समग्र) 53.7 (महिला) पूरे देश में गुणवत्तापरक प्रारंभिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण हेतु सर्व शिक्षा अभियान प्रारंभ। रूडकी विश्वविद्यालय सातवें (I.I.T.) (Indian Institute of technology)में परिवर्तित।

2002 : मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने के लिए संविधान संशोधन ।

2003 : 17 क्षेत्रीय इंजिनियरिंग कालेज, राष्ट्रीय प्रोद्योगिकी संस्थानों में परिवर्तित ।

2004 : शिक्षा को समर्पित उपग्रह एज्युसैट (Edusat) छोडा गया ।

2005 : संसद अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय अल्पसंख्यांक शैक्षणिक संस्था आयोग गठित, NCF (National Curriculum framework)

2006 : कोलकाता और पुणे में दो भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान स्थापित।

2007 : सातवाँ (I.I.M.) शिलांग में स्थापित किया गया। मोहाली में एक भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान स्थापित किया गया। राष्ट्रीय संस्कृत परिषद गठित। केन्द्रीय शैक्षिक संस्था (प्रवेश में आरक्षण) अधिनियम अधिसूचित।

2009 : भारतीय संसद द्वारा नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित।

आज देश की बढती आबादी एवं देश का आर्थिक पतन से राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) समिती की सिफारिशों का पूर्णतया कार्यान्वयन करना संभव नहीं हो रहा है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा राममूर्ति आयोग की सिफारिशों को पूर्णरुप से कार्यान्वित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद से आज तक शिक्षा संस्थाओं में तथा विद्यार्थियों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि होती जा रही है। लेकिन द्रूतगति से बढती जनसंख्या तथा आर्थिक अभाव के कारण भारत अपने शैक्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो रहा है।''[10] इसप्रकार आरंभ से लेकर आजतक शिक्षा–प्रणाली में सुधार लाने का काम शैक्षिक आयोगोंने शिक्षण तज्ज्ञ लोगों ने किया है।

1.1 शिक्षा का अर्थ:–

शिक्षा मानव जीवन के विकास का महत्त्वपूर्ण पहलु है। शिक्षा के बिना मानव जीवन की प्रगति नहीं हो सकती है। प्राचीन काल से लेकर आज तक शिक्षा से ही मनुष्य का जीवन सार्थक बनता जा रहा है। वर्तमान काल पर गौर करने पर तथ्य सामने आते हैं कि शिक्षा से मानव का सर्वांगीण विकास हो रहा है और समाज गतिशील, शक्तिशाली और विकासोन्मुख बनता जा रहा है। शिक्षा मनुष्य जीवन में प्रकाश लेकर आती है। इस संदर्भ में डॉ. ए.एस. अल्तेकर जी का मत सराहनीय है, "Education is a source of illumination and power wich trans forms and harmonious development of our physical, mental, intellectul and spiritual powers and faculties"[11] (शिक्षा प्रकाश और शक्ति का स्त्रोत है, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों तथा क्षमताओं का निरंतर एवं सामंजस्यपूर्ण विकास करके हमारे स्वभाव को परिवर्तित करती है और उसे उत्कृष्ट बनाती है) शिक्षा से मानव जीवन के प्रति यथायोग्य दृष्टिकोण बन जाता है।

शिक्षा से मानव जीवन में व्याप्त समस्याओं को सुलझाते हुए सफल जीवन निर्माण करने का प्रयास किया जाता है।

"Education" शब्द लैटिन भाषा का है। इसका अर्थ है "Act of teaching or training." इसप्रकार शिक्षा प्रक्रिया का शाब्दिक अर्थ है–पथ प्रदर्शन करनेवाली प्रक्रिया, प्रशिक्षण, संवर्धन, ज्ञान ग्रहण करनेवाला आदि। भारतीय विद्वानों ने शिक्षा शब्द का उगम संस्कृत के 'शिक्ष' धातु से माना है। जिसका तात्पर्य है–सिखाना और सीखना। शिक्षा का प्रमुख उद्‌देश्य है कि शिक्षा से बालकों की जन्मजात शैलियों को विकसित करना। इस संदर्भ में डॉ. सुरेश करंदीकर का मत सराहनीय है, ''एखादा शिल्पकार मोठ्या शिळेतून शिल्प साकार करतो, हे अत्यंत रेखीव शिल्प त्या शिळेत मूलत: असतेच. तो शिल्पकार हे शिल्प त्यातून साकार करतो तसेच व्यक्तीत विविध गुण मूलत: असतातचं. शिक्षणाच्या माध्यमातून हे गुण प्रकट होतात व त्यांचा विकास घडवून आणला जातो.''[12] (एक शिल्पकार बड़ी शिला से शिल्प साकार करता है। यह शिल्प उस शिला में मूलत: विद्‌यमान होता ही है। शिल्पकार अपनी दृष्टि से उसमें छिपे शिल्प को साकार करता है। इस तरह व्यक्ति में विविध गुण मूलत: होते हैं। शिक्षा के माध्यम से वह गुण प्रकट होते हैं और उनका विकास किया जाता है।)

सीमित अर्थ में देखा जाए तो शिक्षा से तात्पर्य है कि बालक को स्कूल में दी जानेवाली शिक्षा से है। यह शिक्षा कुछ विशेष विषयों तक ही सीमित रहती है। यह शिक्षा कुछ ही वर्षों के लिए होती है। जो हम स्कूल में प्राप्त करते हैं, यहाँ पर एक विशेष व्यक्ति (अध्यापक) शिक्षा प्रदान करने का कार्य करता है। शिक्षा का संकुचित अर्थ बताते हुए रेमोन्ट का कहना है, ''संकुचित अर्थ में शिक्षा का प्रयोग बोलचाल की भाषा और कानून में किया जाता है। इस अर्थ में शिक्षा, व्यक्ति के आत्मा–विज्ञान और वातावरण के सामान्य प्रभावों को अपने में कोई स्थान नहीं देती है। इसके विपरीत यह केवल उन विशेष प्रभावों को अपने में स्थान देती है जो समाज के अधिक आयु के व्यक्ति जान–बुझकर और नियोजन रुप में अपने से छोटों पर डालते हैं, भले ही ये प्रभाव–परिवार धर्म या राज्य द्‌वारा डाले जाएं।''[13] इसप्रकार रेमोन्ट ने शिक्षा का संकुचित अर्थ बताया है।

शिक्षा का संकुचित अर्थ साधारणत: हमारे दैनंदिन शालेय जीवन के संबंध में लिया जाता है। लेकिन शालेय जीवन के पूर्व भी बालक शिक्षा लेता है। सिर्फ शालेय जीवन के संदर्भ में शिक्षा का अर्थ लेना, यह बहुत ही मर्यादित विचार है। घर में बालक विविध प्रकार के अनुभव लेता है। छोटा बच्चा शक्कर खाता है। वह सफेद पदार्थ मिठा लगता है। लेकिन उसीप्रकार का सफेद पदार्थ नमक

होता है। बालक वह नमक मुँह में डालने पर मिठा नहीं लगता है। उस समय बालक जान जाता है कि हर सफेद पदार्थ मिठा नहीं होता है। यह उसे शिक्षा से समझता है। तात्पर्य यह है कि शिक्षा से हम चेतनामय बन जाते हैं और विकास का रास्ता निर्माण हो जाता है। इस संदर्भ में मेकेंजी के विचार अवलोकनीय है–''संकुचित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय हमारी शक्तियों के विकास एवं प्रगति के लिए चेतनापूर्व किए गए किसी भी प्रयास से हो सकता है।''[14] इसप्रकार शिक्षा प्रगति का रास्ता तैयार करती है। आज साधारणत: स्कूल की चार दीवारी के अंदर पढना ही शिक्षा मानी जा रही है। जब तक छात्र किसी विद्यालय या विश्वविद्यालय में पढ रहा है, तब तक कहा जाता है कि वह शिक्षा प्राप्त कर रहा है। वहाँ पर छात्र मर्यादित पाठ्यक्रम के अंतर्गत विशिष्ट विषयों का अध्ययन करता है। जिससे छात्र के व्यवहार एवं ज्ञान में स्पष्ट रुप में परिवर्तन होता है। उस पर विशेष प्रभाव डाला जाता है। इसप्रकार शिक्षा का संकुचित अर्थ हमारे सामने आता है।

साधारणत: शिक्षा का व्यापक अर्थ विशाल रुप में हमारे सामने आता है। वह पाठ्यक्रम तक सीमित नहीं रहता है। मानव अपने जीवन में शिक्षा सदैव लेता रहता है। शिक्षा से तात्पर्य है, मनुष्य का सर्वांगीण विकास। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक शिक्षा प्राप्त करता रहता है। मनुष्य के जीवन में आनेवाला हर अनुभव उसका गुरू होता है। जीवन में आनेवाले अनुभव से परिवर्तन कर विकास करना ही शिक्षा है। यह परिवर्तन ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक हो सकते हैं। जिससे मनुष्य के जीवन में सुयोग्य दिशा में बौद्धिक एवं वैचारिक विकास होता है।

शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास करता हैं। शिक्षा से मनुष्य का जीवन विकासशील बनता है। शिक्षा में ज्ञान संवर्धन एवं कौशल्य प्राप्त होते हैं। व्यावहारिक समझदारी, वैचारिक एवं बौद्धिक विकास होता है, नैतिक मूल्य, सामाजिकता, आदर्श नागरिकता की भावना निर्माण होती है। मानवता एवं विश्वबंधुत्व की भावना निर्माण होती है। इन गुणों को मनुष्य में विकसित कर व्यक्तित्व को समृद्ध करनेवाला सर्वश्रेष्ठ साधन शिक्षा है। शिक्षा मनुष्य के जीवन में सर्वश्रेष्ठ साधन के रुप में सामने आती है। जिससे मनुष्य का जीवन परिवर्तनशील एवं गतिशील बन जाता है। मानव भाषा के आधार पर सुसंस्कृत जीवन आत्मसात करता है। वह बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक पारिवारीक और सामाजिक माहौल ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक स्तर पर परिवर्तन करके सर्वांगीण एवं संतुलित विकास प्राप्त करता है। इस संदर्भ में प्रो. डमविल का मत महत्त्वपूर्ण है,'' शिक्षा के व्यापक अर्थ में वे सभी प्रभाव आते हैं जो व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित

करते हैं।''[15] इसप्रकार शिक्षा का विस्तृत अर्थ है कि मनुष्य अपने जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक जो ज्ञान ग्रहण करता है, अनुभव से सीखता है, वह शिक्षा के अंतर्गत आता है।

अत: स्पष्ट है कि शिक्षा का क्षेत्र व्यापक दिखाई देता है। मनुष्य बचपन से लेकर अंतिम समय तक शिक्षा से विकास करता रहता है। इस ज्ञान से वह जीवन की विभिन्न समस्याओं को सुलझाकर परिस्थिति पर विजय प्राप्त करके अपना कर्तव्य निभाता है। मनुष्य शिक्षा को सामाजिक और पारिवारिक विकास की प्रक्रिया में साधन रुप में प्रयोग करता है। स्कूल में शिक्षा प्राप्त करना, यह एक संकुचित क्रिया है। शिक्षा यह व्यापक और विशाल प्रक्रिया है जो मनुष्य के जीवनभर साथ रहती है।

1. 2 शिक्षा की परिभाषा :

शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा के 'शास' से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है नियंत्रण लगाना, अनुशासित करना। शिक्षा मनुष्य को अज्ञानरुपी अंध:कार से बाहर निकालकर ज्ञानरुपी प्रकाश की ओर ले जाती है। इसलिए संस्कृत में कहा है कि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' विभिन्न विचारकों ने शिक्षा की परिभाषा अलग–अलग ढंग से प्रस्तुत की है। यहां पर कुछ विद्वानों की परिभाषाएं इसप्रकार हैं–

1. स्वामी विवेकानंद, – ''हम उस शिक्षा को जानना चाहते हैं, जिसकी वजह से चरित्र का निर्माण होता है और सत्य की शक्ति बढती है, जिससे मानव अपने बल बुते पर खड़ा हो सके।''[16]

2. महात्मा गांधी, – ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जो बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा के सर्वोत्कृष्ट रुपों को प्रस्तुत कर दे।''[17]

3. Drever, James के अनुसार, "Education is a process in which and by which the knowledge, character and behaviours of the younge are shaped and moulded"[18] (शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किशोर (बालकों) के ज्ञान, चरित्र और व्यवहार को एक निश्चित दिशा व रुप (आकार) प्रदान किया जाता है।)

4. Doubals, Holland के अनुसार,The term education is used to designate all the changes that take place in an individual during the course of his life."[19] (शिक्षा का प्रयोग उन सब परिवर्तनों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है जो एक व्यक्ति में उसके जीवन–काल में होते हैं।)

5. बाळ गंगाधर तिलक, – ''देशाची तरूण पिढी देशाचे राजकीय, औद्योगिक आणि सामाजिक वैभव राखण्यास किंवा वाढविण्यास समर्थ होईल, हेच खरे शिक्षण होय''[20] (देश की युवा पीढी देश का राजनीतिक, औद्योगिक और सामाजिक वैभव जतन कराने में अथवा बढाने में समर्थ होंगी, वही सच्ची शिक्षा है।)

6. श्री. अरविंद घोष, – '' व्यक्तीच्या सुप्त अंतर्गत शक्तिचा विकास आणि व्यक्तींत मानवता, राष्ट्रीयता आणि विश्वबंधुत्व निर्माण करणारे शिक्षण हेच खरे शिक्षण होय।''[21] (व्यक्ति के निहित शक्ति का विकास और व्यक्ति में मानवता, राष्ट्रीयत्व और विश्वबंधुत्व निर्माण करनेवाली शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है।)

1.3 शिक्षा का स्वरूप :

मनुष्य के प्रगति के लिए शिक्षा की जरुरत है। इसके कारण देश का विकास होता है, इसीलिए मनुष्य को व्यावसायिक, नैतिक, भावनिक शिक्षा देना जरूरी है। उसके साथ–साथ औपचारिक, अनौपचारिक सहज शिक्षा से भी परिचित होना जरूरी है। वैश्वीक शिक्षा का स्वरुप देखे, तो भारत का शैक्षिक विकास का स्वरुप विश्व में सबसे पहले दिखाई देता है।

इसके कारण देखा जाए तो भारत की शिक्षा का स्वरुप प्राचीन है। भारत की संस्कृति के अपने विशिष्ट गुण है उसमें शिक्षा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब यूरोप में अज्ञान का अंधकार छाया था तब भारत में ज्ञान का प्रकाश था। इस संदर्भ में एच.सी. वाले कहते हैं, ''आज के आधुनिक युग में मनुष्यों को सभी क्षेत्रों में सम अवसर प्रदान करने की प्रवृत्ति बढ रही है और इस प्रवृत्ति को रोका नहीं जा सकता।''[22]

उपरोक्त मत के अनुसार सभी को शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य हो गया है। क्योंकि वह हर मनुष्य का बुनियादी अधिकार बन गया है। इस रुप से शिक्षा की ओर देखा जाए तो, शैक्षिक स्वरुप बदलता नजर आ रहा है। इसका महत्त्वपूर्ण कारण आधुनिक काल, वैज्ञानिक दृष्टिकोन, संगणक का युग यह सब बन सकते हैं। इस आज के वर्तमान युग में मनुष्य का विकास हर क्षण को बदलता हुआ नजर आता है। इसके कारण शिक्षा के प्रति उसका दृष्टिकोन भी बदलता हुआ नजर आ रहा है। मनुष्य को युग के अनुसार स्वयं में बदलाव करना जरुरी हैं, इसकारण वह शिक्षा से वह उम्मीदें रख रहा है। इससे शिक्षा के स्वरुप में उसके अपेक्षाओं के अनुसार बदलाव नजर आ रहे हैं।

शिक्षा के साथ यह धारणा भी जुड़ी हुई है कि सामाजिक सहयोग में एक प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने में मनुष्य को बहुत लाभ मिल सकता है। सम्भवत: अवसर की समानता में राष्ट्र का विश्वास ही इस का मुख्य कारण है। वस्तुत: उसी देश में ही शिक्षा की लोकतांत्रिक भावना की परिपक्वता के रुप में शिक्षा का विकास हुआ है।

मनुष्य के भावात्मक एवं स्वाभाविक गुणों के अंतर की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसी अंतर के कारण शिक्षा में विभिन्न प्रकारों पर असर पड़ता है और वैयक्तिक रुप मिल जाता है। इसके कारण शिक्षा का अध्यापन क्षेत्र बदलता है और मनुष्य बनाने के लिए शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए शिक्षा भविष्य का विचार पहले करती है; तब मनुष्य बनता है और यही विचार अनुसंधान में किया है।

1.4 शिक्षा का उद्‌देश्य:–

शिक्षा का उद्‌देश्य क्रिया के माध्यम से परिवर्तन लाना है। यह परिवर्तन ज्ञानात्मक, व्यवहारगत, क्रियात्मक एवं भावात्मक हो सकते हैं। शिक्षा का प्रमुख उद्‌देश्य छात्र का विकास करना। इसमें शिक्षा के उद्‌देश्यों का निर्धारण किया जाता है। जिससे छात्र के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन आता है और छात्र का सर्वांगीण विकास होता है। इस संदर्भ में ब्लुम का कहना है, '' शैक्षिक उद्‌देश्यों से हमारा तात्पर्य है चिंतन (ज्ञान), भावना और क्रिया में परिवर्तन आना ही उद्‌देश्य का पूर्ण होना है। यह अलग–अलग किसी भी क्षेत्र में हो सकता है (चाहे वो ज्ञान, भावना या क्रिया में से हो।)''[23] साधारणत: शिक्षा के अंतर्गत उद्‌देश्यों का निर्धारण शिक्षा व्यवस्था को व्यवस्थित एवं योजनाबद्‌ध ढंग से संचालित करने के लिए किया जाता है। शिक्षा व्यवस्था से सामान्यत: निम्नलिखित उद्‌देश्य निर्धारित किए जा सकते हैं–

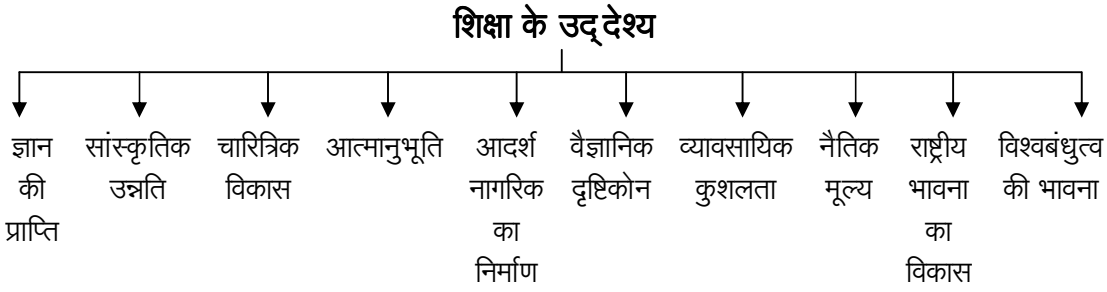

इससे स्पष्ट होता है कि शिक्षा के प्रधान उद्‌देश्य अनेक हैं। शिक्षा से मनुष्य ज्ञान की प्राप्ति करता है। शिक्षा के माध्यम से सांस्कृतिक उन्नति एवं रक्षण हो जाता है। साथ ही शिक्षा से व्यक्ति का चारित्रिक विकास हो जाता है। उसमें आत्मानुभूति की भावना निर्माण हो जाती है। व्यक्ति में राष्ट्रीय भावना का विकास एवं विश्वबंधुत्व की भावना निर्माण होकर आदर्श नागरिक का निर्माण होता है। उसमें आदर्श नैतिक मूल्यों का निर्माण होता है। साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण और व्यावसायिक कुशलता निर्माण होने में मदद होती है।

मनुष्य चिंतनशील प्राणी होने के कारण कोई भी कार्य को करने से पहले अपने मस्तिष्क में योजना बनाता है। समाज में आदर्श का निर्माण होने के लिए और व्यक्ति के विकास के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, '' व्यक्ति की उन्नति के लिए तथा समाज के आदर्शों की प्राप्ति के लिए ही शिक्षा के उद्‌देश्यों को निर्धारित किया जाता है।''[24] शिक्षा के उद्‌देश्य पर गौर करने पर यह तथ्य सामने आ जाते हैं कि शिक्षा की प्रक्रिया उदात्त और आध्यात्मिक है। शिक्षा की प्रक्रिया मनुष्य के जन्म से ही बनी रहती है।

समाज सदैव परिवर्तनशील है। परिणामस्वरुप शिक्षा के उद्‌देश्यों में भी परिवर्तन होता रहता है। प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली और आधुनिक शिक्षा प्रणाली में काफी अंतर है। प्राचीन काल में शिक्षा को उद्‌देश्य मानवीय, नैतिक मूल्य एवं आध्यात्मिक गुणों को प्राप्त कर सके। छात्र गुरू के समीप रहकर जीवन विषयक ज्ञान प्राप्त करके समाज और परिवार के कर्तव्य को पूरा करता था। इस संदर्भ में ओम प्रकाश का कहना है, ''इस काल में वह ऐसी नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करता था जिसके द्‌वारा वह समाज के प्रति अपने कर्तव्यों की पूर्ति सफलता पूर्वक कर सके।''[25] इसप्रकार प्राचीन काल में शिक्षा सर्वांगीण विकास की आधारशीला थी। आधुनिक काल का भी शिक्षा का प्रमुख उद्‌देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास ही है। सिर्फ उसका स्वरुप बदल गया है। प्राचीन काल में गुरुकुल पद्‌धति थी और कुछ वर्गों का ही एकाधिकार शिक्षा व्यवस्था पर था, पर आज सभी को शिक्षा लेने का हक्क है और शिक्षा क्षेत्र ने व्यापक रुप ग्रहण कर लिया है। आज शिक्षा सार्वभौम बन गई है। जिससे मानव ज्ञानार्जन, शारीरिक और मानसिक विकास कर रहा है। वह सामाजिक और पारिवारिक दायित्व निभा रहा है। शिक्षा से मानव शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति करके व्यक्तित्व विकास में अग्रेसर हो रहा है। शिक्षा के माध्यम से बौद्‌धिक विकास साध्य किया जाता है। आज की पीढी अधिकतर अपनी शिक्षा जीविकोपार्जन के लिए ही करती है। क्योंकि शिक्षा का उद्‌देश्य ही है कि

शिक्षा से नागरिक को लाभ हो। इस संदर्भ में डॉ. जाकिर हुसैन का कहना है,'' राज्य का पहला कार्य यह होना चाहिए कि वह नागरिक को लाभप्रद कार्य के लिए समाज में किसी निश्चित कार्य के लिए शिक्षित करना अपना उद्‌देश्य बनाए।''[26]

शिक्षा का उद्‌देश्य है कि उत्तम नागरिकों का निर्माण करना। शिक्षा से राष्ट्रीय एकात्मता को प्राधान्य मिलकर राष्ट्रीय सुरक्षा को बढावा मिलना है। साथ ही सामाजिक उन्नति होकर सांस्कृतिक संरक्षण हो जाता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होकर देश के प्रगति का रास्ता खोला जाता है और उदात्त, नैतिक मूल्यों का सृजन एवं संवर्धन हो जाता है। मानव जीवन अपने पूर्वानुभव एवं परंपरा से की उन्नति करता है। शिक्षा से उत्तम नागरिकों का निर्माण होकर सामाजिक दायित्व की भावना निर्माण होती है और व्यवहार संपन्न नागरिक का सृजन हो जाता है। हमें आजीविका, नौकरी करने के लिए और आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा के माध्यम से हमारे व्यक्तित्व में तेजस्विता, शील, अस्मिता, नम्रता एवं कृतज्ञता निर्माण होती है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिससे व्यक्ति में निर्णय लेने की क्षमता निर्माण हो जाती है। साथ ही जीवन व्यतीत करते समय अनेक अनपेक्षित परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना कर सकता है। इस संदर्भ में पवनकुमार गुप्ता का कहना है,'' जीवन में व्यक्ति का सामना निरंतर अनिश्चित, अनपेक्षित परिस्थितियों से होता रहता है। व्यक्ति इन परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना कर सकें, यह क्षमता पैदा करना शिक्षा का ही काम है।''[27] शिक्षा से हम अपनी परंपरागत आदर्श सांस्कृतिक विरासत का संवर्धन कर सकते हैं। साथ ही एक सृजनात्मक दृष्टि का निर्माण कर सकते हैं। शिक्षा से हमारी दृष्टि समन्वित बन जाती है। इसके माध्यम से हम एक प्रभावी सभ्यता का विकल्प का निर्माण करके अपनी सृजनात्मक ताकद दिखा सकते हैं, इसप्रकार शिक्षा के विविध उद्‌देश्य दिखाई देते है।

1.5 भारतीय शिक्षा प्रणाली का स्वरूप :

भारतीय शिक्षा प्रणाली की अपनी परंपरा है। शिक्षा प्रणाली ने समाज परिवर्तन के लिए परंपरा से योगदान दिया है। प्राचीन काल में गुरु कुल पद्‌धति थी। वहाँ पर समाज का नेतृत्व करनेवाला नागरिक तैयार किया जाता था। गुरुकुल में ज्ञानार्जन के साथ नैतिक संस्कार भी दिए जाते थे।

भारत में ब्रिटिशों के आगमन से नवीन दर्शन, नए विचार आदि का भी भारत में आगमन हुआ। पहले शिक्षा संस्कार, ज्ञान ग्रहण करने का माध्यम था। लेकिन अंग्रेजों के आगमन से वह व्यवसाय बन गया। परिणामस्वरुप शिक्षा क्षेत्र में परिवर्तन आ गया है। आज अध्यापक के ही दृष्टिकोण में बदलाव आया है। वह सिर्फ परीक्षा के लिए छात्र को तैयार कर रहे हैं। लेकिन आज अध्यापक का दायित्व है कि वह भारतीय समाज को लोकतंत्रात्मक, वैज्ञानिक, धर्मनिरपेक्ष, आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्य स्वीकार करनेवाला समाज निर्माण करें कि जिससे विषमता, गरीबी में डूबा हुआ भारतीय समाज उभरकर विश्व के सामने आए और विकसित बनकर 'भारत' एक विश्व की महासत्ता बने।

शिक्षा क्षेत्र व्यवसायभिमुख बनने के कारण आचारसंहिता की आवश्यकता महसूस हो रही है। इस संदर्भ में डॉ. सुरेश करंदीकर का कहना है, ''शिक्षकी पेशा हा व्यवसाय आसल्यामुळे त्याला आचारसंहितेची गरज भासू लागली.''[28] (शिक्षा क्षेत्र व्यवसाय बनने से आचारसंहिता की आवश्यकता महसूस हो रही है।) शिक्षा क्षेत्र में कार्य करते समय कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। शिक्षा क्षेत्र में शुद्ध एवं सात्विक कार्य होना चाहिए। ''आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा केवल व्यक्ति सापेक्ष या वस्तूसापेक्ष बन गई है, जो हमें केवल बाह्य जगत की सूचनाएँ दे रही है, उसमें उन अंतर प्रेरणाओं का अभाव है जो मनुष्य की अन्तर्दृष्टि को खोल सके। अत: आधुनिक शिक्षा प्रणाली में निम्न बिंदू हो – 1) संस्कारक्षम शिक्षा, 2) संवेदनोन्मुखी शिक्षा, 3) व्यवसायोन्मुखी शिक्षा'' [29]

1.5.1 शिक्षा एवं धर्म:

'धृ–धारयति', धारयते से तात्पर्य है कि धारण करना। इस शब्द से धर्म शब्द तैयार हो गया है। शुद्ध वर्तन, अच्छा कार्य करना एवं सदाचारी रहना ही धर्म है। धर्म से हमें अच्छी और गलत धारणाओं की पहचान होती है। मानव को अपना सही और अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए धर्म की जरूरत होती है। मानव का जीवन नियंत्रण में रखने का कार्य धर्म करता है।

वर्तमान समय विज्ञाननिष्ठ समय है। जिससे मानव के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया है। एक ओर विज्ञान ने हर क्षेत्र को प्रभावित किया है तो दूसरी ओर परंपरागत धार्मिक शिक्षा की जरूरत महसूस हो रही है। विज्ञान के आविष्कारों से जीवन में सुधार आए है, लेकिन इससे निर्मित शस्त्र आज मानव के विनाश के कारण बनते जा रहे हैं। इस स्वार्थी दुनिया में मनुष्य–मनुष्य में अंतर निर्माण होकर एक–दूसरे के दुश्मन बन बैठे हैं। इसलिए अनेक विचारक धर्म के सहारे के बजाय

मानव का अस्तित्व खत्म होने की बात करते हैं। धार्मिक विचारों के बिना मनुष्य का अस्तित्व पशु से बदतर है। व्यक्ति को मनुष्यत्व सिर्फ धर्म ही दे सकता है। इसलिए धार्मिक शिक्षा जरूरी है। जिससे समाज में शांति, सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम आदि नैतिक जीवन मूल्य बरकरार रहे। धार्मिक शिक्षा से आचरण में शुद्धिकरण आ जाता है। इसलिए कहा जाता है कि 'आचार प्रभावो धर्म:' धार्मिक व्यवहार से मनुष्य शुद्ध आचरण करता है। भारत में परंपरा से गुरुकुल पद्धति से संस्कार किए जाते थे। इस संदर्भ में डॉ. किरण सिंह का कहना है,''गुरुकुल में व्यापक रुप से विनय तथा शील की भावना कायम होती थी। प्रत्येक विद्यार्थी मर्यादा का पालन करता था। गुरुकुल में आपस में शिष्टाचार देखने को मिलता है।''[30] इसप्रकार भारत में धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था थी। भारतीय समाज में धार्मिक शिक्षा नहीं देनी चाहिए ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। क्योंकि भारत बहुधर्मी देश है। इसप्रकार की शिक्षा देने से धार्मिक विवाद निर्माण हो सकते हैं। इसमें मानव का फायदा नहीं है। इससे मानव का नुकसान ही है। धार्मिक शिक्षा से अंधश्रद्धा निर्माण हो सकती है। धार्मिक शिक्षा मनुष्य को संन्यास की ओर प्रवृत्त करती है। जिससे मनुष्य प्रयास, श्रम इन जैसे मूल्यों से दूर चला जाता है।

अनेक विद्वानों का मानना है कि धार्मिक शिक्षा की जरूरत है। जिससे मनुष्य मानसिक शांति प्राप्त करता है। मेरा तो कहना है कि इन धर्मों के तत्वों से हटकर धर्मनिरपेक्ष मानवधर्म को अपनाना चाहिए। जिसमें सर्वधर्म समभाव की नींव हो। इससे मनुष्य–मनुष्य में अटूट नाता निर्माण होकर सामाजिक और उच्च नैतिक मूल्य को बढ़ावा मिल सकता है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''धर्म–निरपेक्ष समाज का निर्माण एक आवश्यक प्रयोजन है। जिससे प्रत्येक सदस्य सभी धर्मों को समान आदर प्रदान करें तथा धार्मिक संकीर्णता, घृणा एवं रूढ़ीवादिता के चंगुल से बच सके।''[31] इसप्रकार धर्म का योगदान समाज के प्रति योगदान होता है। धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा व्यक्ति में सहनशीलता, मेहनत, सेवा आदि भाव सिखाते हैं। इस संदर्भ में डॉ. वैद्यनाथ मिश्र कहते हैं,''धार्मिक और नैतिक शिक्षा कुछ तो पुस्तकों और उपदेशों के आधार पर तथा कुछ आश्रमों में पारस्पारिक सेवा, स्नेह और सहयोग के वातावरण से दी जाती थी, जिससे छात्र यह ज्ञान ग्रहण करते थे कि स्वयं असुविधा एवं कष्ट झेल कर भी दूसरे को सुख पहुंचाना चाहिए तथा सहनशीलता का व्यवहार करना चाहिए।''[32] धर्म कभी तोड़ता नही अपितु जोड़ता है, कभी आक्रमक नही होता किंतु वह कभी दुर्बल नहीं होता। धर्म या धर्मशास्त्र कोई भी हों, उन्हे समझाने के लिए खुलेपन की आवश्यकता है। धर्म भारतीय जीवन और उसकी संस्कृति में प्रमुख स्थान रखती है। धर्म उदात्त

मूल्यों में विश्वास रखता है। और उन मूल्यों में विश्वास रखता है। और उन मूल्यों को उपलब्ध कराने के लिए जीवन की एक पद्धति विकसित करता है। धर्म का मूलभूत तत्व व्यक्ति की अध्यात्मिक उन्नति के लिए वातावरण तैयार करना होता है। इस प्रकार धार्मिक शिक्षा की भूमिका समाज में महत्त्वपूर्ण है।

1.5.2 शिक्षा एवं अर्थ:

'अर्थ' हर क्षेत्र को प्रभावित करता है। शिक्षा क्षेत्र भी इससे अछूता न रहा। भारतीय शिक्षा एवं समाज व्यवस्था 'अर्थ' पर निर्भर है। आज शिक्षा का उद्देश्य आर्थिक स्थैर्य प्राप्त करना माना जाता है। अर्थव्यवस्था देश और दुनिया इन दोनों को प्रभावित करती है। किसी भी देश की शिक्षा–व्यवस्था जितनी मजबूत और साफ–सुथरी होंगी, उतना ही उस देश का विकास होगा। आज शिक्षा को जीविकोपार्जन का साधन माना गया है। वर्तमान काल में छात्र नौकरी मिलने और व्यवसाय करने के लिए शिक्षा प्राप्त करता है। इस संदर्भ में जॉन.एस. ब्राडबेकर लिखते हैं, ''बालकों को माता–पिताओं को उनके पाठशाला जाने का उद्देश्य पूछिए तो वे एक स्वर में उत्तर देंगे कि वे उन्हें जीविकोपार्जन का तरीका सीखने के लिए पाठशाला भेजते हैं।''[33] इसप्रकार वर्तमानकाल में छात्र के माता–पिता रोजगार उपलब्ध होने के लिए स्कूल भेजते हैं। आज देश के विकास के लिए सरकार भी शिक्षा नीति में परिवर्तन लाकर रोजगारभिमुख शिक्षा दे रही है।

देश आजाद होने के उपरांत आर्थिक समस्याओं का हल ढूँढने का प्रयास किया गया, लेकिन उसका समाधान नहीं हो गया। आर्थिक समस्याओं का समाधान शिक्षा के माध्यम से ही हम ढूँढ सकते हैं। शिक्षा ही उस परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। शिक्षा हमारे मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। आज की भारतीय शिक्षा पद्धति का प्रथम उद्देश्य 'आर्थिक विकास' को मानना चाहिए। आर्थिक स्थिति शिक्षा क्षेत्र को अत्याधिक प्रभावित करती है। देश की आर्थिक स्थिति के अनुसार शिक्षा–पद्धति में परिवर्तन होता है। देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए अधिकतर व्यावसायिक शिक्षा दी जाती है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का मत दृष्टव्य है, ''आज हमारे देश में आर्थिक दशा के प्रभाव ही परिणाम है कि व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जा रहा है।''[34] इसप्रकार देश की आर्थिक स्थिति शिक्षा को प्रभावित करती है और शिक्षा भी देश की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है।

भारत एक कृषिप्रधान देश है। आज सरकार को कृषि की शिक्षा, समृद्ध उद्योगों की शिक्षा एवं तत्संबंधित अनुसंधान पर सर्वाधिक बल दिया जाना चाहिए। साथ ही सामान्य शिक्षा के बाद व्यावसायिक शिक्षा देनी चाहिए। जिससे राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि हो। इसके साथ ही राष्ट्रीय आर्थिक विकास में वृद्धि करानेवाली शिक्षा सुलभ करनी चाहिए। भारत में माध्यमिक शिक्षा स्तर की समाजोपयोगी उत्पादन के लिए शारीरिक कार्य को अंग के रुप में अपनाना चाहिए। आज कृषि शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा पर बल देना चाहिए। इस संदर्भ में लक्षता गुप्ता का कहना है कि '' व्यावसायिक शिक्षा के अंतर्गत उन्हीं व्यवसायों में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जो या तो कृषि से संबद्ध हो या जिन क्षेत्रों में प्रशिक्षित कुशल जनशक्ति का अभाव हो। कृषि तकनीकी को प्रधानता दी जानी चाहिए।''[35] इसप्रकार भारतीय शिक्षा प्रणाली में अर्थ की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

1.5.3 शिक्षा एवं काम:

विश्व में अनेक ऐसे देश हैं जिनकी अपनी प्राचीन परंपरा है इसमें हमारा हिंदुस्तान है। भारत को भी प्राचीन परंपरा प्राप्त हुई है और इतिहास को देखा जाए तो वह हर एक भारतीय के जीवन के विकास के रुप मिलते हैं और उस प्राचीन भारतीय लोक जीवन का विचार किया जाए तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान दियाजाता था। क्योंकि इसके जरिए व्यक्ति या मानव का विकास होता है। इसे ही भारतीय इतिहास ने चार पुरूषार्थ माने हैं।

भारत के लोक जीवन में काम को महत्त्व दिया है।'काम' को विभिन्न दृष्टि से देखा जाए तो कई दृष्टिकोण या विचार सामने आते हैं। इसके कारण समाज व्यवस्था अनेक विभागों में विभाजित हुई दिखाई देती थी। लेकिन आज इस काम दृष्टिकोण में बदलाव शिक्षा के कारण हुआ है। क्योंकि इस विचार में आज बदलाव होना जरुरी है। शिक्षा के जरीए जन जागृती हो गई है।

काम के कारण मनुष्य में संकुचित वृत्ति निर्माण होती है लेकिन उसे शिक्षा से बदलाव करवाया जाता है और प्राचीन भारतीय इतिहास के अनुसार समाज जीवन में वर्ण, जातियों, उपजातियों में इतने भेद हैं कि परस्पर आत्मीयता का अभाव दिखाई देता है। छुआछूत के नियम सवर्णों में ही नहीं पिछड़ी तथा निचली जातियों में भी कठोर थे। समाज सुविधा संपन्न और अभावग्रस्त दो वर्गों में विभाजित था। समाज का एक वर्ग अपने वैभव और समृद्धि के प्रदर्शन में मदमस्त था। तो अभावग्रस्त सामान्य मनुष्य किसी तरह जीवनयापन कर रहा था। स्त्रियों की दशा भी

अच्छी नहीं थी। दास प्रथा, सती प्रथा, बहुविवाह, और पर्दा–प्रथा आदि प्रथाओं ने उनको केवल घर तक सीमित कर दिया था इसलिए वे ईश्वर की शरण में जाते थे। ऐसे निराश और अराजक सामाजिक जीवन को शिक्षा ही बदल सकती हैं। इस पर हिंदी के भाषाशास्त्री विद्वान रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखा है, ''अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान किए जाने के अतिरिक्त दुसरा मार्ग ही क्या था? और उनकी वह भगवान की शक्ति और करूणा यह शिक्षा थी।''[36]

यह सब बदलने का काम शिक्षा करती है। आज समाज में नैतिकता का स्तर निम्न होता जा रहा है, इसलिए अनैतिकता बढ़ रही है। स्वैराचार में वृद्धि होती जा रही है। यह दृष्टिकोण दूर करना जरूरी है। यह कार्य शिक्षा ही कर सकती है। इसलिए बालक का भावात्मक विकास करना जरूरी है और यही काम शिक्षा के जरिए होता है। 'काम' का मतलब वासना ही है, यह विचार दूर करने के लिए उसे भावनिक दृष्टिकोण से योग्य बनाना जरूरी है। तब उसका भावनात्मक विकास होगा। जब यह विकास बाल्यावस्था में होगा तो सुजान नागरिकत्व की इमारत का ढांचा अच्छे ढंग से खड़ा होगा और इसमें शिक्षा का अन्यन्य साधारण महत्त्व है।

काम यह तीसरा पुरूषार्थ है अर्थात इसका केवल एक ही अर्थ हम ग्रहण करते हैं। किंतु काम का दूसरा एक अर्थ है वह किसी चीज के प्रति मानव की प्यास। अर्थात निष्काम भाव से कोई भी कार्य संपूर्ण हो ही नहीं सकता। इसलिए काम की ओर देखने का हमारा दृष्टिकोण जब तक हम बदल नहीं सकते तब तक शिक्षा का कुछ भी मूल्य नहीं है। क्योंकि वर्तमान परिवेश में धर्म और मोक्ष को कोई भी नहीं पूछता और हर जीव की नजर अर्थ और काम की ओर ही लगी है, यह समकालीन परिवेश का सबसे बड़ा सच भी है।

1.5.4 शिक्षा एवं समाज:

जिस देश की शिक्षा की जड़ें जितनी मजबूत होती है, उतनी ही उस देश की सामाजिक परिस्थिति में विकास होता है। शिक्षा के माध्यम से समाज सही दिशा में परिवर्तन करता है। डॉ. नीता पांढरीपांडे के अनुसार, ''शिक्षा वह अमोघ अस्त्र है जिसके माध्यम से समाज के सदस्यों के मस्तिष्क में स्थित चिंतन को अपेक्षित मोड़ प्रदान किया जाता है।''[37] शिक्षा के वैयक्तिक प्रयोजन के लिए समाज के संदर्भ में ही संभव हो सकता है और सामाजिक परिवर्तन शिक्षित व्यक्ति द्वारा ही संभव

है। शिक्षा ग्रहण करने से परिवार और समाज की उन्नति होती है। शिक्षा वह अमोघ अस्त्र है कि जिसके द्वारा समाज अपने आदर्शों का सृजन करता रहता है। शिक्षा द्वारा ही समाज में सत्य, अहिंसा, शांति आदि नैतिक विचार छा जाते हैं। शिक्षा ही हमारे परंपरागत रीति–रिवाजों से अवगत कराती है। वास्तव में शिक्षा समाज की आधारशीला है। वैसे देखा जाए तो जिसप्रकार समाज की मान्यताएँ होती है, उसी प्रकार शिक्षा की रुपरेखा तैयार होती है। समाज में तानाशाही होगी तो उसी प्रकार शिक्षा में अनुशासन होगा। समाज में प्रजातंत्र (लोकतंत्र) से उसी प्रकार स्वतंत्रता एवं समानता नजर आ सकती है। इससंदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का मत अवलोकनीय है,'' यदि समाज में तानाशाही व्यवस्था है तो वहाँ की शिक्षा में अनुशासन, सैनिक, शिक्षा, आज्ञाकारिता पर अधिक बल दिया जाएगा। विपरीत लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली में स्वतंत्रता, समानता को अधिक महत्त्व मिलेगा।''[38] समाज के समसामयिक परिवर्तनों का शिक्षा पर प्रभाव दिखाई देता है। सामाजिक कुरीतियों का शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है और शिक्षा के द्वारा इन कुरीतियों को खत्म करने का प्रयास किया जाता है।

शिक्षा समाज के परंपरागत विचारों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रवाहित करती है। समाज में नव निर्माण करने पर बल देती है। शिक्षा सृजनात्मक कार्य करने के साथ–साथ स्थानीय नैतिक मूल्यों का जतन करती है। शिक्षा द्वारा परंपरागत गलत धारणाओं का विरोध कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है। शिक्षा समाज में अपेक्षित सुधार होता है और इसके कारण देश की तरक्की हो जाती है। शिक्षा मनुष्य को समाज के उत्थान के लिए प्रेरित करती है। जिससे समाज में नव–निर्माण हो सके और समाज की प्रगति हो जाए। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''शिक्षा व्यक्ति को समाज के उत्थान के लिए तैयार करती है तथा इस ओर भी संकेत करती है कि वह उत्थान किन दिशाओं में हो। शिक्षा समाज में उन परिवर्तनों को लाने की चेष्टा करती है, जिनसे समाज में नव–जीवन का संचार हो और समाज प्रगति की दिशा में आगे बढ़े।''[39] इसप्रकार समाज में परिवर्तन शिक्षा के माध्यम से होता है।

शिक्षा और समाज का गहरा संबंध है। शिक्षा के माध्यम से आदर्श समाज का निर्माण होता है। समाज की राजनीतिक परिस्थिति और शिक्षा पर गहरा संबंध होता है। जिस समाज में जिसप्रकार की राजनीतिक परिस्थिति होती है, उसीप्रकार की शिक्षा व्यवस्था भी हो जाती है। हम देखते हैं कि अमेरिका, भारत, रशिया आदि देशों की शिक्षा प्रणाली अपनी–अपनी राजनीतिक विचारधारा के

अनुरूप है। समाज में आर्थिक दशा प्रशंसनीय होती है तो शिक्षा का रूप भी आदर्श होता है। शिक्षा हमें सामाजिक विरासत के रूप में ज्ञान सामने लाती है। शिक्षा द्वारा ही समाज की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। इस संदर्भ में लक्षता गुप्ता का कहना है, ''शिक्षा को चाहिए कि समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं को पहचाने तथा व्यक्तियों को इस प्रकार से प्रशिक्षित करे कि वे समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं को पूरा कर सके।''[40] इसतरह शिक्षा और समाज का गहरा संबंध नजर आता है।

1.5.5 शिक्षा एवं संस्कृति:

शिक्षा और संस्कृति का गहरा संबंध है। शिक्षा से छात्र को उसकी सामाजिक विरासत, उसकी संस्कृति प्रदान करना है। प्रत्येक मानव समूह में परंपरा के विकास के परिणामस्वरूप संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता है। यह संस्कृति प्रत्येक पीढ़ी द्वारा नई पीढ़ी को शिक्षा द्वारा प्रदान की जाती है। इसप्रकार प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी सांस्कृतिक विरासत में जन्म लेता है। इसे विरासत से प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने का निश्चय करते हुए मानव परंपरागत मूल्य अपनाता है। इसप्रकार संस्कृति मनुष्य के जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संस्कृति के अंतर्गत परंपराएँ रीति–रिवाज, नैतिक मूल्य विद्यमान रहते हैं। इस संदर्भ में लक्षता गुप्ता का कहना है, ''बालक को समूह की संस्कृति की शिक्षा देने से वह समूह की परंपराओं, रीति–रिवाजों, मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों से परिचित हो जाता है।''[41] इसप्रकार शिक्षा और संस्कृति का गहरा संबंध है।

बालक की शिक्षा परिवार से प्रारंभ होकर समाज में विकसित होती है। परिवार में माता–पिता तथा अन्य सदस्यों द्वारा बालक पर संस्कार किए जाते हैं। बालक को घर में व्यावहारिक, नैतिक एवं धार्मिक ज्ञान दिया जाता है। उसके उपरांत बालक विद्यालय में जाने लगता है, तब अध्यापक उसे सांस्कृतिक एवं किताबी बातें सिखाते हैं। वह पाठ्यक्रम के माध्यम से संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा प्राप्त करता है। विद्यालय में उसका सर्वांगीण विकास करने का प्रयास किया जाता है। जिससे वह पारिवारिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्व को पहचान सके और अपनी सांस्कृतिक विरासत को जान सके।

शिक्षा से सांस्कृतिक जीवन मूल्य मानव में निर्माण होते हैं। उससे सांस्कृतिक मूल्य स्वीकार करके मानव का व्यक्तित्व का विकास होता है। इस मूल्यों को अपनाने पर एक प्रौढ़त्व तैयार हो

जाता है। मनुष्य जीवन नियंत्रण में रखकर सही दिशा में मनुष्य अपना जीवन जीता है। इससे सामुदायिक सद्‌भावना का विकास होता है और एक सुजान नागरिक का निर्माण होता है। इन कारणों से समाज में सुधार आ जाता है। वैसे देखा जाए तो शारीरिक और बौद्‌धिक विकास ज्यादातर बाल्यावस्था में होता है। बचपन में जब बालक का मन संस्कार और ग्रहणशील होता है तब तेज और स्मृति प्रखर होती है। इस संदर्भ में डॉ. किरण सिंह का कहना है, ''बाल्यावस्था में शारीरिक और बौद्‌धिक विकास की क्षमता अत्याधिक रहती है। इस समय साधारण आहार से ही शरीर का उतना उपचय होता है, बाद में असाधारण आहार से भी संभव नहीं है। ठीक उसी भाँति ज्ञान की उपलब्धि इस अवस्था में जितनी हो सकती है, उतनी दूसरे समय में संभव नहीं है।''[42] इस प्रकार शिक्षा से बचपन से ही छात्र पर संस्कार किए जाते हैं।

आज औद्‌योगिकीकरण से मनुष्य का जीवन यंत्रवत बन गया है। इस संस्कारहीन जीवन से मनुष्य का अस्तित्व संकट में आ सकता है। इसलिए संस्कारों की बहुत आवश्यकता है। इसलिए संस्कार से तात्पर्य शिक्षा और शिक्षा से तात्पर्य संस्कार है। इसलिए शिक्षा से संस्कार मिलते हैं और संस्कार से जीवन का उद्‌देश्य स्पष्ट होता है। संस्कारशील कार्य से भावनाएँ एवं विचार समृद्‌ध होते हैं। इसप्रकार शिक्षा और संस्कार के अंत:संबंध है।

1.5.6 शिक्षा एवं मोक्ष :

मानव के जीवन में मोक्ष को महत्त्वपूर्ण माना गया है। जब मानव शिक्षा ग्रहण करता है, तब भौतिक ज्ञान के साथ–साथ आध्यात्मिक ज्ञान को भी प्राप्त करता है। वह आत्मा, शरीर, बुद्‌धि एवं मन पर विचार करता है। मानव के आध्यात्मिक शिक्षा का मूल उद्‌देश्य मानव का विकास, निरामयता एवं संस्कार है। यह प्राप्त करके आत्मा मोक्ष प्राप्त करता है, ऐसा माना जाता है। मनुष्य में धार्मिक सद्‌ज्ञान प्राप्त होना महत्त्वपूर्ण बात है। इसलिए कहा जाता है 'ऋतेज्ञानात न मुक्ति:'। मोक्ष प्राप्ति के लिए कहा जाता है कि मनुष्य को अपने चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण रखना चाहिए। परंपरा से माना गया है कि शरीर नश्वर है और आत्मा अमर है। आत्मा को मोक्ष प्राप्त होने के लिए जपसाधना, तपसाधना एवं योगसाधना आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस संदर्भ में डॉ. किरण सिंह का कहना है,'' प्राचीन भारतीय दर्शन में शरीर को नश्वर मानते हुए आत्मा के उत्थान के लिए जप, तप एवं योग पर विशेष बल दिया गया।''[43]

भारतीय विद्वानों का कहना है कि मनुष्य को जीवन में जो परम ज्ञान प्राप्त करना है और एक विशिष्ट अवस्था को प्राप्त करना ही मोक्ष है। वे कहते हैं कि मनुष्य को परमार्थवादी रहना चाहिए। मोक्ष का तात्पर्य है कि मुक्त होना। मानव मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयास करता है तो उसे मानना होगा कि मनुष्य बंधन में हैं। आत्मपरीक्षण करने के उपरांत तथ्य हमारे सामने आ जाते हैं कि हम किसी–न–किसी बंधन में बंधे हैं।कुछ पाने के लिए दिन–रात मेहनत करते हैं। कुछ प्राप्त करने की लालसा हमारे मन में सदैव रहती है। परिणामस्वरूप हम आधे–अधूरे का अनुभव करते हैं। मोक्ष से तात्पर्य है कि पूर्णता को प्राप्त करना।

अनेक विद्वान मानते हैं कि निर्वासित अंत:करण का मतलब है मोक्ष प्राप्ति। मनुष्य का प्रत्येक क्षण वासना में लीन रहता है। वह वासना किसी भी संदर्भ में हो सकती है। वह वासना, लालसा मिलने के उपरांत मनुष्य तृप्त होगा। इसप्रकार की धारणा मनुष्य में होती है , लेकिन वह तृप्त नहीं हो पाता। जब वह वासना शून्य, लालसाशून्य बनेगा तब उसे मोक्षप्राप्ति मिल सकती है। इस संदर्भ में श्रीनिवास दीक्षित का कहना है,'' आयुष्याचा प्रत्येक क्षण वासनामय असतो. वासना ही कोणत्या तरी विषयाची असते. व्यक्तीचे या क्षणाचे अस्तित्व आखणे तिने प्राप्त करून घ्यावयाचा विषय यामधील अंतर म्हणजे वासना होय. हे अंतर भरून काढण्याची क्षणोक्षणी चाललेली आपली धडपड म्हणजेचं जीवन. ते अंतर भरून निघाले म्हणजे वासना विरून जाईल. वासनेचा क्षय होईल. कृतार्थ होऊन स्वत:चा क्षय करून घेणे हेच वासनेचे वांछित असते. या वासनाशून्य अस्तित्वाचे नाव मोक्ष.''[44] (जीवन का हर क्षण वासनामय होता है। वासना किसी भी विषय की होती है। मनुष्य के इस क्षण का अस्तित्व और उसे प्राप्त करके देनेवाला विषय इस में अंतर यानि वासना है। यह अंतर नष्ट करने का हर क्षण चलनेवाला प्रयास यानि जीवन, वह अंतर नष्ट होना यानि वासना नष्ट होना। वासना समाप्त होगी। कृतार्थ होकर स्वयं को नष्ट करना ही वासना का कार्य है। इस वासनाशून्य अस्तित्व का नाम मोक्ष है।)

कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य का जीवन वासना से भरा हुआ है। इस वासनामय, लालसामय, जन्म–मृत्यु के चक्र से मुक्त होना ही मोक्ष है। इस जन्म–मृत्यु से मुक्ति पर अनके विद्वानों में विवाद है। मेरा कहना सार रूप में है कि मनुष्य के अहंकार का संपूर्ण समाप्त होना ही मोक्ष है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि शिक्षा का तात्पर्य है कि मानव का सर्वांगीण विकास। परंपरा से आज तक मनुष्य के जीवन परिवर्तन विकास होने के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण साधन है। शिक्षा के बिना मानव जीवन की प्रगति नहीं हो सकती है। शिक्षा मानव का चरित्र निर्माण होता है। शिक्षा से मनुष्य के अंतर्गत शक्ति का विकास होता है। इससे राष्ट्रीयत्व, विश्वबंधुत्व एवं मानवतावादी विचार निर्माण होते हैं। शिक्षा से मनुष्य में ज्ञानात्मक, व्यवहारगत, क्रियात्मक एवं भावात्मक परिवर्तन आता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली की एक पंरपरा है। इसमें धार्मिक शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। धर्म हमें सही एवं गलत धारणाओं की जानकारी देता है। मानव जीवन को नियंत्रण में रखने के लिए धार्मिक शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय शिक्षा एवं समाज व्यवस्था 'अर्थ' पर निर्भर है। आज शिक्षा का उद्‌देश्य आर्थिक स्थैर्य प्राप्त करना माना जाता है। किसी देश के शिक्षा की जड़े जितनी मजबूत है, उतनी ही उस देश की सामाजिक स्थिति में विकास होता है। शिक्षा के माध्यम से उसकी सामाजिक विरासत संस्कृति मानव को प्रदान की जाती है। प्रत्येक मानव समूह में परंपरा के विकास के परिणामस्वरूप संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता है। यह संस्कृति प्रत्येक पीढ़ी द्‌वारा नई पीढ़ी को शिक्षा से प्रदान की जाती है। जब मानव शिक्षा प्राप्त करता है, तब भौतिक ज्ञान के साथ–साथ आध्यात्मिक ज्ञान को भी प्राप्त करता है। आध्यात्मिक शिक्षा के अंतर्गत आत्मा, शरीर, बुद्‌धि एवं मन पर विचार करके संस्कार ग्रहण करता है। कहना गलत नहीं है कि शिक्षा का मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ संकेत

1. शर्मा सुभाष, भारत में शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं:2004, पृ.क्र.17
2. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएं, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं: 2009,पृ.क्र.31
3. Dr. Keay F. E., Indian Education in Ancient and Later Times, Nandkishor & Brother- Banaras, Eid-1975, P.No.85.
4. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएं, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं: 2009,पृ.क्र.35
5. Basu A. N., Education in Mordern India, Concept Publishing company, New Delhi, Eid-1982, P.No.17.
6. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएं, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं : 2009, पृ.क्र. 38.
7. Basu A. N., Education in Mordern India, Concept Publishing company, New Delhi, Ed-1982, P.No.60
8. सर्व शिक्षा अभियान अंतर्गत नवनियुक्त प्रशिक्षित शिक्षकांचे प्रशिक्षण शिक्षक हस्तपुस्तिका, महाराष्ट्र राज्य शैक्षणिक संशोधन व प्रशिक्षण परिषद, पुणे–30, प्र.सं:2012, पृ.क्र.24.
9. वहीं, पृ.क्र.25,26,27,28.
10. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएं, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं : 2009, पृ.क्र. 50.
11. Dr. Altekar A. S. Education in Ancient Indian, Nandkishor & Brother- Banaras, Eid-1951, P.No.8.
12. डॉ. करंदीकर सुरेश, भारतीय समाजातील शिक्षण, फडके प्रकाशन, कोल्हापुर, प्र.सं : 2002, पृ.क्र.02
13. गुप्ता लक्षता, भारतीय समाज और शिक्षा, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र.सं : 2007, पृ. क्र. 02
14. वहीं, पृ.क्र.03

15. वहीं, पृ.क्र.04

16. उपाध्याय राजेंद्र, शिक्षा मनोविज्ञान, वंदना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं : 2007, पृ.क्र.03.

17. वहीं, पृ.क्र.04

18. गुप्ता लक्षता, भारतीय समाज और शिक्षा, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र. सं : 2007, पृ.क्र. 06.

19. डॉ. शर्मा राजेंद्र, शिक्षा दर्शन, सूर्या प्रकाशन, जयपुर, प्र.स ं:1999, पृ.क्र.03.

20. डॉ. करंदीकर सुरेश, भारतीय समाजातील शिक्षण, फडके प्रकाशन, कोल्हापुर, प्र.स ं: 2002, पृ.क्र. 05.

21. वहीं, पृ.क्र. 06.

22. वाले एच. सी., आधुनिक भारतीय शिक्षा एवं समस्याएँ, लखनौ प्रकाशन, लखनऊ. प्र.सं, 1990–91, पृ.क्र.89.

23. डॉ. शर्मा राजेंद्र, शिक्षा दर्शन, सूर्या प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं:, पृ.क्र.77.

24. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएं, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं : 2009, पृ.क्र. 20.

25. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.स : 2008, पृ.क्र.128.

26. वहीं, पृ.क्र. 23.

27. सम्पा. गुप्ता पवनकुमार, शिक्षा, सभ्यता और आधुनिकता, परंपरा प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2005, पृ.क्र.15.

28. डॉ. करंदीकर सुरेश, भारतीय समाजातील शिक्षण, फडके प्रकाशन, कोल्हापुर, प्र.सं : 2002, पृ.क्र.151.

29. सम्पा. मित्तल संतोष, भारतीय आधुनिक शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, प्र. स. जूवरी 2004, पृ.क्र. 47

30. डॉ. सिंह किरण, प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.स ं: 2001, पृ.क्र. 261.

31. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएं, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं: 2009, पृ.क्र.26.

32. डॉ. मिश्र वैद्यनाथ, शिक्षाशास्त्र, पूजा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं:1998, पृ.क्र.189.

33. ब्राडबेकर जॉन एस., शिक्षा के आधुनिक दर्शन धाराएं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं:1992, पृ.क्र.168.

34. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएं, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं: 2009, पृ.क्र.24.

35. गुप्ता लक्षता, भारतीय समाज और शिक्षा, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र.सं: 2007, पृ.क्र. 62.

36. आचार्य शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा–काशी, द्वि. सं:1942, पृ.क्र. 23.

37. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएं, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं : 2009, पृ.क्र. 23.

38. वहीं, पृ.क्र. 24.

39. वहीं, पृ.क्र. 26.

40. गुप्ता लक्षता, भारतीय समाज और शिक्षा, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र.सं : 2007, पृ.क्र. 42.

41. वहीं, पृ.क्र. 84.

42. डॉ. सिंह किरण, प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं:2001, पृ.क्र.172.

43. वहीं, पृ.क्र.46.

44. दीक्षित श्रीनिवास, भारतीय तत्वज्ञान, ज्ञानगंगा प्रकाशन, काशी, प्र.सं:1999, पृ.क्र.17.

द्वितीय अध्याय

शिक्षा संबंधी हिंदी उपन्यास: परिचयात्मक विवेचन

द्वितीय अध्याय

शिक्षा संबंधी हिंदी उपन्यास: परिचयात्मक विवेचन

प्रस्तावना :

शिक्षा को राष्ट्र–निर्माण की रीढ़ मानी जाती है। लेकिन वर्तमान काल में शिक्षा प्रणाली की स्थिति दयनीय नजर आती है। आजादी के उपरांत पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा प्रणाली में तीव्र गति से वृद्धि हो गयी है। लेकिन वह शिक्षा सही लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ रही है। आज शिक्षा प्रणाली अनेक समस्याओं से गुजर रही है। अब शिक्षा प्रणाली में राजनीति की बढ़ोतरी हो रही है। देश की अधिकांश शिक्षा–संस्थाएँ छात्रों की बढ़ती भीड़, अध्यापकों की अक्षमता तथा छात्रों की संख्या के अनुपात में अध्यापकों की संख्या में कमी से पीड़ित है। शिक्षा संचालकों की क्षूद्र मनोवृत्ति, सांप्रदायिकता, राजनीतिक आधार पर शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, विद्यालयों में भवन, पुस्तकालय आदि का अभाव, अध्यापकों में आपसी मनमुटाव, ईर्ष्या, द्वेष भाव आदि अनेक ऐसी समस्याएँ हैं, जो शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति में बाधक हैं। व्यक्ति चाहे, वे प्रशासक हो या विधायक, अध्यापक हो या अभिभावक, छात्र या छात्रा आज सभी अपनी–अपनी सुविधा को ही सिर्फ प्राथमिकता दे रहे हैं। आज के कतिपय अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करते, वे मात्र कोर्स खत्म कराते हैं। मानो यही उनका लक्ष्य है। अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय के कटघरे में भेजकर अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में शैक्षिक क्षेत्र में अनेक समस्याओं का पैदा होना स्वाभाविक ही है। हिंदी के अनेक लेखकों ने शिक्षा प्रणाली पर लेखनी उठाकर न्याय देने का प्रयास किया है।

2.1. देवेश ठाकुर– 'भ्रमभंग':

देवेश ठाकुर हिंदी साहित्य जगत के चर्चित लेखक है। उनके द्वारा लिखित उपन्यास 'भ्रमभंग' मध्यमवर्गीय शिक्षित युवक चंदन का जीवन संघर्ष है। साथ ही शिक्षा संस्थाओं की दयनीय हालात को उजागर किया है। चंदन पारिवारीक दायित्व निभाते हुए अध्यापक का कार्य कर रहा है। वह सदैव आर्थिक अभावों से जूझता रहता है। उसके पिताजी की ख्वाहिश थी कि चंदन पुलिस में नौकरी करे। लेकिन चंदन संघर्ष करते हुए गरीबी, भूख एवं अभावग्रस्तता से जुझते हुए एम.ए. तक पढ़ाई

पूरी करता है। वह अध्यापक बनना चाहता है। उसके पास इंटरव्यू को जाने के लिए भी पैसे नहीं थे। वह अपने मित्रों की सहायता से इंटरव्यू देता है। उसकी मुंबई के सिटी कॉलेज में लेक्चरर के रुप में नियुक्ति होती है। मुंबई में भी उसे रहने के, खाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

प्रस्तुत उपन्यास से स्पष्ट होता है कि आज मेहनत, लगन और योग्यता को कोई स्थान नहीं रहा है। जो भी अपने उच्च पदस्थ की चापलूसी करें वही श्रेष्ठ माना जाता है और जो सच्चे रुप से कार्य करे, उसे कोई स्थान नहीं है। चंदन भी ऐसी व्यवस्था का शिकार बनता है। मुंबई में सरकारी कॉलेज में नौकरी मिलने के उपरांत उसे अनेक कटु अनुभव आते हैं। वह देखता है कि विद्यार्थियों को अध्ययन में कोई रुचि नहीं है। सिर्फ बड़ी–बड़ी कक्षाएँ हैं। पाठ्यक्रम भी छात्रों को निराशजनक लगता है। यह पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को आकृष्ट करने में असफल रहता है। परिणामस्वरुप कुछ छात्र कक्षा में आते ही नहीं। कुछ आते हैं तो कक्षा में क्लास को परेशान करते हैं और अध्यापक को अपने वर्तन से परेशान करते हैं। अलग–अलग जानवरों की आवाजें निकालते रहते हैं। कभी घड़ी की अलार्म बजाते रहते हैं, तो कभी टेप–रिकॉर्ड बजाते रहते हैं। तो कभी सीटी बजाते हैं। ऐसे माहौल से सभी अध्यापक नाराज है। चंदन भी इसका शिकार है। चंदन शिक्षा–व्यवस्था को आदर्श मानता था। लेकिन उसका भ्रमभंग हो जाता है। लेखक ने ऐसी शिक्षा–व्यवस्था की पोल खोलने का कार्य किया है।

कॉलेज में भी विभागाध्यक्ष, लेक्चरर एवं शिक्षेकतर कर्मचारी में भी राजनीति दिखाई देती है। कॉलेज के विभागाध्यक्ष की शान राजा–महाराजाओं से कम नहीं दिखाई देती है। वे ज्यूनिअर लेक्चरर के साथ व्यवहार अच्छा नहीं करते हैं। उन्हें बेगार की तरह काम करना पड़ता है। उनके किसी मित्र को भाषण लिखकर देना पड़ता है। उनके इशारों पर काम करना पड़ता है। अपने उच्च पदों के अधिकारी की सिर्फ प्रशंसा करनी पड़ती है। इसप्रकार के शिक्षा–व्यवस्था से प्रबुद्ध व्यक्तियों पर अन्याय हो रहा है। उन्हें योग्य वेतन भी नहीं दिया जाता है। इसकी आलोचना करते हुए लेखक कहते हैं, '' जहाँ पाँच साल सर्विस के बाद एक प्रोफेसर को साठ सौ रुपए मिलते हैं वहाँ किसी प्राइवेट कंपनी में मामूली से क्लर्क को पाँच सौ।''[1] इसप्रकार उन पर अन्याय होता रहता है।

शिक्षा क्षेत्र में तबादला होना एक प्रकार की बहुत बड़ी समस्या है, जो अध्यापकों पर लटकती तलवार है। चंदन भी इस समस्या से परेशान है। चंदन का तबादला मुंबई से राजकोट हो जाता है।

वहाँ पर भी कॉलेज की दशा देखकर भ्रमभंग हो जाता है। वहाँ पर छात्रों पर रोक नहीं है, कोई भी नियम नहीं है। छात्र स्कूल में आते हैं, जाते हैं, उन्हें कोई नहीं पूछता है। छात्र पर इसप्रकार के व्यवहार पर मना करने पर 'बाहर देख लेने' की भाषा का प्रयोग होता है। क्लासरुम सदैव खाली पड़ी दिखाई देती है। छात्रों को पढ़ने में रुचि नहीं है। इसप्रकार के छात्रों के व्यवहार के चंदन ऊब जाता है। अध्यापकों का व्यवहार भी उसीप्रकार का है। वे अध्ययन–अध्यापन में रुचि नहीं रखते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में इसका उदाहरण प्रोफेसर बोरा है। सदैव लेक्चर टालते रहते हैं। वे फ्रेंच के प्रोफेसर है लेकिन कॉलेज में फ्रेंच न होने के कारण अँग्रेजी पढ़ाते है। उनकी अँग्रेजी; गुजराती मिक्स होती है। कभी–कभी क्लास लेते हैं, तो जोक मारते बैठते हैं। इसलिए छात्र उसकी क्लास में सिर्फ जोक्स सुनने के लिए बैठते हैं। इससे लेखक ने सरकारी कॉलेजों की हीन दशा को दिखाकर ऐसी नाकाम शिक्षा–व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ाई है।

भारत में बहुसंख्य लोग हिंदी बोलते हैं लेकिन कॉलेजों में हिंदी की अवस्था दयनीय नजर आती है। इसे स्पष्ट करते हुए लेखक कहते हैं, ''आजाद देश है हमारा। हमारे आजाद देश की यही शिक्षा–नीति है। पब्लिक स्कूल और कॉन्वेन्टस। सत्ता के नियामक वहीं से निकलेंगे। एक सिलेक्टेड क्लास हिपोक्रेट्स की। हिंदी कोई क्यों सीखे? देशी भाषाओं में क्या रखा है?उन्हें कोई क्यों पढ़े? क्या भविष्य है इनमें? राष्ट्रभाषा का यह सम्मान? पास होने के लिए सिर्फ बीस प्रतिशत अंक चाहिए। फिर हिंदी को कौन पूछेगा? सच है– इन प्रादेशिक भाषाओं में क्या रखा है? हाँ, इनके आधार पर देश को प्रदेशों में बाँट जरुर सकते हैं।''[2] इसप्रकार की गलत मानसिकता ने शिक्षा–व्यवस्था में शिरकत की है।

अध्यापक बड़ी–बड़ी आशाएं लेकर कॉलेज में आते हैं। वे अपना आदर्श छात्रों के सामने रखना चाहते हैं। लेकिन कॉलेजों में उसीप्रकार का माहौल नहीं होता है। उन्हें सही रुप से पढ़ाने का सुख मिलता है न सही रुप में नौकरी करने का। शिक्षा जगत राजनीति का अड्डा बन गया है। इसलिए अध्यापकों का मानसिक शोषण होता है। उनकी हालत दयनीय होती है। कॉलेज में छात्र भी दिशाहीन होते हैं। वे बड़ी–बड़ी आशाएँ लेकर कॉलेज में आते हैं, लेकिन प्रोफेसर बोरा जैसे अध्यापकों से दिशाहीन हो जाते हैं। उन्हें सही रुप से शिक्षा नहीं मिलती है। साथ ही बिना अनुभव के कारण राजनीति के चंगुल में फँस जाते हैं। वे आंदोलन, मोर्चा, तोड़–फोड़ में व्यस्त रहते हैं। परिणामस्वरुप

उनका जीवन दिशाहीन हो जाता है। वे आगे चलकर कुछ भी नहीं कर पाते। इससे छात्रों का समाज का और राष्ट्र का नुकसान हो रहा है।

अत: स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास शिक्षा व्यवस्था के शोषण और स्वार्थ की बुनियाद को उजागर करता है। यह उपन्यास संघर्षशील और ईमानदार युवक चंदन के जीवन का भ्रमभंग है। वह अनेक विपरीत स्थितियों से शिक्षा जगत की भ्रष्ट, स्वार्थी, आत्मकेंद्रीत एवं अवसरवादी मानसिकता को स्पष्ट करता है।

2.2 जयप्रकाश कर्दम– 'छप्पर' :

जयप्रकाश कर्दम हिंदी साहित्य जगत के प्रसिद्ध साहित्यकार है। उनके 'छप्पर' उपन्यास ने भारतीय समाजव्यवस्था की पोल खोल दी है। प्रस्तुत उपन्यास से शिक्षा–व्यवस्था की ओर देखने का दृष्टिकोन स्पष्ट होता है। इस उपन्यास में दलित युवक शिक्षा प्राप्त करना चाहता हैं, पर उच्चवर्ग के ठाकुर–जमींदार, सेठ–साहूकार दलित युवकों को गुलाम बनाकर ही रखना चाहते हैं। इस उपन्यास से उच्चवर्ग की घिनौनी प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक चंदन शिक्षा प्राप्त करके समाजपरिवर्तन में योगदान देता है। वह शिक्षा के माध्यम से समाज में जागृति निर्माण करता है।

प्रस्तुत उपन्यास का पात्र सुक्खा ने परंपरागत गुलामी को सहा है, लेकिन अपने बेटे चंदन को गुलामी की जंजाल में फँसने नहीं देना चाहता है। वह उसे शिक्षित बनाना चाहता है। वह अपने बेटे चंदन को पढ़ने के लिए शहर भेजता है। लेकिन पंरपरागत ग्रामीण जीवन जीने वाले ब्राह्मण, ठाकुर, सेठ, साहूकारों को चंदन का पढ़ने के लिए शहर में जाना अच्छा नहीं लगता है। ब्राह्मण वर्ग दलित वर्ग को शिक्षित होने पर भी हीन समझते हैं। दलितों की ओर देखने का उनका नजरिया अन्यायी ही रहता है। इस उपन्यास का काणा पंडित सुक्खा पर क्रोधित होते हुए कहता है, ''तू कितना भी बड़ा हो जा सुक्खा, लेकिन धर्मशास्त्रों से बड़ा नहीं हो सकता। तू अपमान करता है धर्मशास्त्रों का, वेद–वेदांतों का नास्तिक।''[3]इसतरह ब्राह्मण वर्ग का दृष्टिकोन नजर आता है। गांव का ठाकुर चंदन की पढ़ाई रोककर उसे क्लर्क बनाकर रखना चाहता है। लेकिन सुक्खा नहीं मानता है। इसपर नाराज होकर ठाकुर हरनामसिंह पंचायत बुलाता है। पंचायत में सवर्ण वर्ग अन्यायकारक फैसले करते हैं। सुक्खा को बहिष्कृत किया जाता है। उसको मजदूरी नहीं दी जाती है, लेकिन सुक्खा डॉ. अम्बेडकर के विचारों से जागृत बन गया था। उसने जिंदगी में बहुत कुछ भोगा था। वह चंदन को गुलामी की नर्क

में नहीं रखना चाहता था। इसलिए प्रखर विरोध के बावजूद चंदन को शहर में पढ़ने के लिए भेज देता है।

चंदन शहर में आकर संतनगर में रहने लगता है। इस संतनगर की गरीब जनता अज्ञान और अशिक्षा के कारण अंधविश्वास में डूब गए थी। अशिक्षा के कारण उनका जीवन दुखमय बन गया था। वह महामारी और अकाल से बचने के लिए यज्ञ का आयोजन करते हैं और बहुत–सा रुपया खर्च करते हैं। यह सब देखकर चंदन उसका विरोध करता है। वह कहता है,''पत्थर के इन देवी–देवताओं या भगवानों की पूजा–अर्चना करने या उस को भेंट चढ़ाने से कुछ भी होनेवाला नहीं है।''[4] इसप्रकार वह यज्ञ–अनुष्ठानों का विरोध करता है। वह यज्ञ–अनुष्ठानों पर रुपए खर्च करने के बजाए जीवन सुधार के लिए करने का संदेश देता है। वह उन लोगों को शिक्षा महत्त्व बताता है। चंदन बच्चों के भविष्य के लिए स्कूल खोलने की बात करता है। लोगों को व्यसनाधीनता की भयावहता से अवगत कराता है। महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सिलाई–बुनाई का प्रशिक्षण देने पर बल देता है।

उपन्यास का नायक चंदन शिक्षा प्राप्त करके समाज के उत्थान के लिए प्रयास करता है। वह दीन–दलितों में चेतना निर्माण करना चाहता है। वह अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए फौज निर्माण करने का प्रयास करता है। वह पढ़ाई के साथ–साथ सामाजिक गतिविधियों में भाग लेता है। वह शिक्षा को माध्यम बनाकर क्रांति की मशाल जलाता है। उसका आंदोलन व्यापक रुप धारण कर लेता है। जिससे अन्यायी परंपरागत व्यवस्था हिल जाती है। वह अन्यायी मानसिकता का खुलेआम विरोध करता है। जिससे पंरपरागत व्यवसाय करनेवाले सेठ, साहूकार, ठाकुर, ब्राह्मण वर्ग जो समाज का शोषण करते थे, वह आंदोलन के सामने निरुपाय हो जाए। ठाकुर की बेटी रजनी चंदन की सहेली थी। वह शहर में पढ़ती थी। रजनी परिवर्तन और आजादी की समर्थक थी। चंदन और सुक्खा पर हुए अन्याय का उसके मन में क्षोभ है। वह अपने पिता को कहती है, ''संविधान के अनुसार देश के प्रत्येक नागरिक को सम्मान और स्वाभिमानपूर्वक जीने का हक है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वेच्छानुसार व्यवसाय चुनने और जीवन की दिशा निर्धारित करने की स्वतंत्रता है। यदि चंदन पढ़–लिखकर कुछ काबिल बनना चाहता है तो यह उसका संवैधानिक हक है इसपर किसी को एतराज क्यों होना चाहिए।''[5] इसतरह रजनी अन्याय का विरोध करती है।

अत: स्पष्ट है कि अनेक समस्याओं और अन्याय के बावजूद सुक्खा अपने बेटे चंदन को पढ़ाई के लिए शहर में भेजता है। जिससे स्पष्ट होता है कि समाज में जागृति निर्माण हो रही है। चंदन

शहर जाकर पढ़कर समाजपरिवर्तन के लिए प्रयास करता है। उसपर डॉ. अम्बेडकर के विचारों का प्रभाव है। वह शिक्षा के माध्यम से समाज की समस्याओं का हल करना चाहता है।

2.3 मदन दीक्षित– 'मोरी की ईट':

हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार के रुप में मदन दीक्षित का नाम आता है। मदन दीक्षित द्वारा लिखित 'मोरी की ईट' उपन्यास में मेहतर समाज का यथार्थ अंकन किया है। साथ ही उनमें शिक्षा के माध्यम से आए परिवर्तन का रेखांकित किया है। प्रस्तुत उपन्यास में मेहतर समाज को शिक्षा से जागृत करने का संदेश देते हुए अछूत प्रथा की धज्जियाँ उड़ाई है।

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका मंगिया है। वह संघर्षशील पात्र है। उसका पति झरगदिया शराबी है। वह हेल्थ विभाग में ड्यूटी करता था। वह सारी तनख्वाह शराब पर लूटा देता है। इसलिए परेशान होकर जमादार हिरालाल से मिलकर पति की ड्यूटी करने की सिफारिश करती है। इस सिफारिश का विचार होकर झरगदियाँ की नौकरी मंगिया को दी जाती है। मंगिया की ड्यूटी चुंगी के नए हेल्थ ऑफिसर डॉ. सुरेंद्र नारायण पांडे की हवेली पर लगाई जाती है। मंगिया डॉ. पांडे और उनके पत्नी का विश्वास प्राप्त करती है। वह मेहतरानियों को न्याय दिलाने का प्रयास करती है।

मंगिया का बेटा सोहन है। वह अपने बेटे को परंपरागत व्यवहार करने के पक्ष में नहीं है। वह उसे पढ़ा–लिखाकर एक अच्छा आदमी बनाना चाहती है। इसलिए वह डॉ. पांडे से बातचीत करती है। सोहन मेहतर होने के कारण गॉववाले गाँव के स्कूल में उसे घूसने नहीं देंगे, क्योंकि परंपरा से शिक्षा व्यवस्था एक वर्ग की जागीर थी। दलितों को शिक्षा से दूर रखा गया था। इसलिए डॉ. पांडे मंगिया को सलाह देते हैं कि सोहन को ईसापुर के ईसाइयों के मिशन स्कूल में दाखिल किया जाए। इस स्कूल में मिशनरी छात्रों की रहन–सहन, खान–पान एवं पढ़ाई–लिखाई की सारी जिम्मेदारी उठाते हैं। ईसापुर के मिशनरी के स्कूल में जैकब और फ्लोरा बड़े प्यार से संभालती है। क्योंकि उन्हें कोई संतान नहीं है। इसलिए मंगिया सोहन को ईसापुर के मिशनरी स्कूल में रखने का निर्णय लेती है।

एक दिन काम से रहात पाकर मंगिया ईसापुर चली जाती है। ईसापुर में मिशनरी स्कूल में जाकर दाखिला करती है। वह अपने बेटे सोहन को स्कूल में जैकब और फ्लोरा के पास रखती है। जैकब और फ्लोरा मंगिया के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करते हैं। वह सोहन को उच्च शिक्षा देने का वादा करते हैं। मंगिया अपने बेटे सोहन को डॉक्टर बनाना चाहती है। वह पंरपरागत मेहतर का काम

नष्ट करके पढ़–लिखकर बड़ा आदमी बनाना चाहती है। वह कहती है, '' ऐसी तो कोई बात नहीं है, लेकिन क्रिस्टान न बनने पर ही उसे कौन–सी राजगद्दी मिलने जा रही है। हमे तो बस यह चाहते हैं कि किसी–न–किसी तरह हमारा सोहन थोड़ा–बहुत पढ़ लिख जाए। मुझसे पूछा तो क्रिस्टान होने से भी सोहन के माथे का मेहतरी टीका कुछ फीका ही पड़ेगा।''[6] मंगिया को सोहन के भविष्य के बारे में चिंता है। इसलिए वह उसे शिक्षित बनाना चाहती है।

ईसापुर के मिशनरी स्कूल में सोहन पूरी तरह घुल–मिल जाता है। जैकब और फ्लोरा उसपर विशेष ध्यान देते हैं। वह भी एक आदर्श छात्र के रुप में सामने आता है। एक दिन मंगिया सोहन से मिलने ईसापुर आती है। अपने बेटे की प्रगति देखकर खुश होती है। वह जैकब और फ्लोरा को धन्यवाद देती है। जैकब और फ्लोरा बैठने के लिए मंगिया कुर्सी देते हैं। तब मंगिया नीचे बैठते हुए कहती है,''इतना क्या कम है, मेमसाब! आप तो इस मोरी की ईंट को चौबारे पर ही चढ़ाए दे रही है।''[7] फिर भी जैकब और फ्लोरा स्कूल में बैठने के लिए मंगिया को कुर्सी देते हैं। सोहन दिन–ब–दिन प्रगति करता है।

सोहन पाठशाला की परीक्षा में प्रथम आता है। वह आगे चलकर मेडिकल कॉलेज में प्रवेश लेता है। वह डॉक्टर बनकर समाज की सेवा करना चाहता है। वह मेडिकल कॉलेज में भी नाम कमाता है। वहाँ पर भी वह आदर्श छात्र के रुप में जाना जाता है। वह मेडिकल कॉलेज में प्रथम आता है। मदन दीक्षित ने इस उपन्यास के माध्यम से बताने का प्रयास किया है कि शिक्षा परिवर्तन का माध्यम है। सोहन का एक आदर्श छात्र प्रस्तुत करके समज में सोहन जैसे युवकों को तैयार करने का कार्य मदन दीक्षित कर रहे हैं। लेखक ने मंगिया को एक संघर्षशील नारी के रुप में प्रस्तुत किया है। जैकब और फ्लोरा को समाजसेवक के रुप में सामने लाने का काम किया है। इसप्रकार यह उपन्यास समाजपरिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2.4 चंद्रमोहन प्रधान: 'एकलव्य':

चंद्रमोहन प्रधान हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार है। 'एकलव्य' उनका मिथकीय चेतना से युक्त प्रसिद्ध उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास से रुढ़ि, प्रथा, परंपरा का विरोध करके शिक्षा व्यवस्था पर करारा व्यंग्य कसा है। इस उपन्यास में शिक्षा का महत्त्व, गुरू का महत्त्व, गुरू प्रतिमा से प्रेरणा, स्वअध्ययन का महत्त्व आदि को प्रधानता दी है। लेखन के महाभारत की कथा को आधार बनाकर

भारतीय समाज व्यवस्था और शिक्षा व्यवस्था पर करारी चोट की है। इस उपन्यास में अन्यायी आचार्य द्रोण द्वारा अंगुठे की मांग करना गलत है। एकलव्य गुरू दक्षिणा देकर शोषण का शिकार बनता है। एकलव्य को परंपरागत भारतीय शिक्षा व्यवस्था से दूर रखती है, लेकिन एकलव्य स्वअध्ययन करके शिक्षा प्राप्त करने में सफल होता है। लेकिन अंत में परंपरागत शिक्षा व्यवस्था का शिकार बनता है।

प्रस्तुत उपन्यास में इक्षुमति नदी के पास स्थित निषाद गाँव का चित्रण आया है। इस गाँव के लोग दस्युओं के आक्रमण को रोकने के लिए कापिल्य के राजा द्रूपद से सहायता लेते रहते थे। एकलव्य दस्युओं के आक्रमण को निषाद लोगों को विरोध करने की बात करता है। इसपर निषादराज हिरण्यधनु कहता है कि वह व्यवसाय हमारा नहीं है। युद्ध करने के लिए शस्त्र चाहिए। हमारे लोगों को उसप्रकार का प्रशिक्षण नहीं है। दस्युओं का आक्रमण होने पर धनुष्यबाण से रोकना होगा। लेकिन हमारे लोग धनुष्य का उपयोग प्रशिक्षण न होने के कारण कम करते हैं।

एकलव्य युद्ध में निपुण होना चाहता है। इसलिए कौरवों के सेना की जानकारी लेता है। उनके गुरू आचार्य द्रोण की भी जानकारी प्राप्त करता है। वह आचार्य द्रोण के पास जाकर धनुष्यबाण का प्रशिक्षण लेना चाहता है, लेकिन कौरवों के गुल्मनायक अतिबल एकलव्य को परंपरागत व्यवस्था से परिचित कराता है। वह कहता है, ''वत्स, तुम्हें क्या बताऊँ? इन दिनों के गुरू अपनी विद्या और कला का श्रेष्ठतम तो उच्च वर्णो, राज्यन्यों के हेतु सुरक्षित रखने लगे हैं। ब्राह्मण–क्षत्रिय श्रेष्ठ विधाओं को प्राप्त करके अधिक उचित अधिकारी माने जाने लगे हैं। इतर वर्णो के लोगों को शस्त्रास्त्र विद्या में सिर्फ गदा, असि आदि ही पर्याप्त माने जाने लगे हैं।''[8] इससे स्पष्ट होता है कि परंपरा से शिक्षा उच्च कुल के लोगों को दी जाती थी। अन्य वर्ग को गुरुकुल में शिक्षा लेने के लिए स्थान नहीं था। फिर भी एकलव्य आचार्य द्रोण द्वारा धुनर्धारी बनने का निश्चय करता है।

आचार्य द्रोण कुरु आश्रित थे। वे सिर्फ राजकुमारों को शिक्षा प्रदान करते थे। उनका व्यक्तित्व हमें यहाँ जातीयवादी नजर आता है। आचार्य द्रोण को गंगास्नान के समय मगरमच्छ के आक्रमण से अर्जुन बचाता है। इसलिए आचार्य द्रोण अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने की इच्छा रखते हैं। वह अपने छात्रों में भी भेदभाव करते हैं। वे एकांत में अर्जुन को अनेक अस्त्र–शस्त्रों का ज्ञान प्रदान करते थे। वे अर्जुन को कहते हैं कि, ''वैसे तो इस महही–दिव्यास्त्र को सिर्फ ब्राह्मण ही धारण कर सकता है। इस मंत्र का मैंने आज तक किसी को ज्ञान नहीं दिया किंतु तुमने इसका

अधिकारी होने की क्षमता प्राप्त कर ली है। अत: तुम्हें यह दूँगा, किंतु अन्य राजपुत्र इस महही–दिव्यास्त्र के पात्र नहीं है।''[9] इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य द्रोण भेदभाव करते हैं।

एकलव्य धनुर्धारी बनने के लिए हस्तिनापुर आता है। वह आचार्य द्रोण से मिलकर उन्हें प्रणाम करता है और बचपन से उनका शिष्य बनने की इच्छा को प्रकट करता है। परिणामस्वरुप हस्तिनापुर में आकर आपके चरणों में स्थान देकर धुनर्विद्या सिखाइए। आचार्य द्रोण एकलव्य के बारे में सभी जानकारी लेते हैं और कहते हैं कि, '' तुम अपेक्षाकृत हीन कुल में उत्पन्न हुए हो। यहां पर गुरुकुल में उच्च कुलस्थ लड़कों के साथ तुम्हें शिक्षा नहीं दे सकता और बात यह भी है कि तुम निषाद वंशी होकर उन राजकुमारों के साथ कैसे सीख सकोगे।''[10] इसप्रकार आचार्य द्रोण द्वारा ज्ञानदान में भी भेदभाव किया जाता है। फिर एकलव्य उनके सामने नतमस्तक होकर वहाँ से प्रस्थान करता है।

हस्तिनापुर के राजपुत्र को लेकर आचार्य द्रोण शिकार करने के लिए जंगल में आते हैं। भगीरथी तट पर आने पर कुत्तों के भोंकने की आवाज सुनाई देती है। वे सभी जाकर देखते हैं कि सिंहनख नामक कुत्ते का मुख बाणों से भरा था। सभी आश्चर्यचकीत रह गए। उस बाणों से कुत्ते को खरौंच तक नहीं आयी थी। आचार्य द्रोण कुत्ते के मुँह से बाण निकालकर देखते हैं। उसपर किसी का नाम नहीं था। आचार्य द्रोण सभी को बताते हैं कि बाण संधान करनेवाले का मक्सद सिर्फ कुत्ते का मुँह बंद करना था। वह उसे मारना नहीं चाहता था। सभी मिलकर एकलव्य के पास जाते हैं। बाण मारने की जानकारी प्राप्त करते हैं। आचार्य द्रोण एकलव्य के पास आने पर उसे आनंद होता है। वह उनका स्वागत करता है। बातचीत के दौरान आचार्य द्रोण एकलव्य के बारे में पूछते हैं। उसपर एकलव्य श्रद्धापूर्वक कहता है कि, ''गुरुदेव, आपकी प्रतिमा मुझे प्रेरित करती रहती है। आपके द्वारा ही मैं प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा हूँ।''[11] इस पर सभी आश्चर्यचकीत हो जाते हैं। आचार्य द्रोण इस पराक्रम को लोकोत्तर कार्य की उपमा देते हैं।

हस्तिनापुर में सार्वजनिक शस्त्रास्त्र प्रतियोगिता होती थी। उस प्रतियोगिता में एकलव्य शामिल होना चाहता था। यह बात एकलव्य अपने गुरू आचार्य द्रोण को बताता है। उस पर द्रोण मौन धारण करते हैं। उस मौन व्रत में आचार्य द्रोण का षड्यंत्र शुरू था। एकलव्य को न चाहते हुए भी आचार्य द्रोण अप्रतिम धनुर्धर का आशिष देना पड़ता है। आचार्य द्रोण मन में भयभीत हो गए थे कि अभ्यास में एकलव्य सफल हो गया है। एकलव्य सार्वजनिक शस्त्रास्त्र प्रतियोगिता में शामिल होकर विजय प्राप्त

कर सकता है। इससे अर्जुन पराजीत होकर मेरे गुरुविद्या कोई महत्त्व नहीं रहेगा। इसलिए इस समस्या के हल के लिए आचार्य द्रोण षड्यंत्र करते हैं। वे एकलव्य को गुरुदक्षिणा की माँग करते हैं। वे कहते हैं कि सचमुच मुझे गुरू मानते हो तो मुझे अपने शिष्य से दक्षिणा चाहिए। वे कहते हैं,'' द्रव्य–आभूषण की अपेक्षा कुछ विशिष्ट चमत्कारी, लोकोत्तर दक्षिणा की माँग की और कहा तुम देना ही चाहते हो तो मात्र अपने दाहिने हाथ का अँगुठा काटकर मुझे दे दो।''[12] इससे एकलव्य स्तब्ध और चकीत रह जाता है।

आचार्य द्रोण ने एकलव्य को पूरीतरह से मायाजाल में फंसाया था। एकलव्य कहता है कि अँगुठे के बिना बाण का संधान नहीं हो सकता। मेरा जीवन नष्ट हो जाएगा। कृपा करके आप अन्य दक्षिणा से प्रसन्न हो जाआगे तो अच्छा होगा। पर आचार्य द्रोण उसी दक्षिणा पर अटल रहते हैं। अंत में निराश होकर गुरू का आदेश प्रधान मानकर एकलव्य अँगुठे की दक्षिण देता है। दक्षिणा के नामपर एकलव्य को बलि बनाया जाता है।

2.5 तेजिंदर–'उस शहर तक':

तेजिंदर हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार है। उनके द्वारा लिखित 'उस शहर तक'उपन्यास में एक उच्च शिक्षित पीलादास उर्फ गिरीषकुमार की त्रासदी है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक मध्यप्रदेश लोकसेवा आयोग द्वारा पंजीयक पद पर नियुक्त होता है। नियुक्त होने के उपरांत एक साल की ट्रेनिंग के लिए दिल्ली भेजा जाता है। इस उपन्यास में नियुक्तिपूर्व घटनाएँ हैं जो पूर्वदीप्ति (फ्लैशबैक) शैली में दर्ज हैं। गिरीषकुमार के परिवार की कथा, गिरीष का शिक्षा प्राप्त करने के लिए संघर्ष, गिरीष के दादाजी एवं गिरीष द्वारा जाति छिपाने की कथा को उद्घाटित किया जाता है।

गिरीषकुमार ट्रेनिंग के लिए दिल्ली महानगर की भीड़–भाड़ में अकेलापन महसूस करता है। गिरीष इम्तियाज अलि की सहायता से सेठी साहब के यहाँ पेइंग गेस्ट के रुप में एक कमरे में रहने लगता है। लेकिन वहाँ पर रहने के लिए गिरीष अपनी जाति को छिपाता है। वह जाति से चमार है। उसके पूर्व भी गिरीष और उसके दादाजी अपनी जाति छिपाते आए हैं। क्योंकि उसकी यातनाओं से मुक्ति मिल सके। गिरीष अपने गुरू आसना सर के प्रति अगाध श्रद्धा रखता है। आसना सर भी अपना आदर्श छात्र के रुप में गिरीष उर्फ पीलादास चमार को मानते हैं। आसना सर, माँ–बाप द्वारा

दिया नाम पीलादास बदलकर गिरीषकुमार रखते हैं, ताकि जातीयता के दंश पीलादास को न हो जाए। आसना सर गिरीष का व्यक्तित्व होनहार बनाकर उसे ऊँचा बनाना चाहते हैं।

गिरीष एक उच्च शिक्षित युवक है। वह गरीबों एवं अभावग्रस्त लोगों का पक्षधर दिखाई देता है। उसे झुग्गी बस्ती में रहनेवाले लोगों के प्रति आस्था है। दिल्ली जैसे शहर में सांप्रदायिकता, जातीयता दिखाई देती है। साथ ही पुलिस की दबाव नीति, आरक्षण नीति पर करार व्यंग्य करना आदि मानसिकता भी नजर आती है।

गिरीष को दादाजी उच्च शिक्षित बनाना चाहते थे। इसलिए वे अपने परिवार के साथ नरसिंहपुर से शहडोल आए थे। वे अपना पुराना धंधा छोड़कर चाय का ठेका लगाते हैं। वह चाय बेचकर गिरीष को उच्च शिक्षित बनाते हैं। गिरीष भी शिक्षित बनने के लिए जी तोड़ मेहनत करता है। वह अपनी गाँव में और शहर में भी दलित वर्ग की पीड़ा सहते हुए संघर्ष करता है। उस पर डॉ. अम्बेडकर के विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है।इस संदर्भ में डॉ. यादवराव धुमाल का कहना है, '' 'उस शहर तक' यह उपन्यास एक उच्च शिक्षित दलित वर्ग की पीड़ा को यहाँ प्रमुखता दी गयी है। उपन्यास के नायक गिरीषकुमार की अवरोधपूर्ण विकास यात्रा के साथ–साथ उसकी मानहानि को यहाँ प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें वर्ग–संघर्ष है, मार्क्सवाद और हिंदुत्ववाद के बीच का टकराव दिखाया है। अपनी जाति को छिपाकर उच्चवर्णीय की भाँति सम्मान से जीने की चाहत को मन में धारण करनेवाले गिरीषकुमार में चेतना जागृत होती है, परंतु सामाजिक परिवेश की प्रतिकुलता में उसकी चेतना ढ़ह जाती है। पीलादास चमार के नाम परिवर्तन की घटना डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जी के नाम परिवर्तन की घटना से साम्य रखती है। इससे उपन्यास एवं लेखक पर अम्बेडकर जी की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।''[13] इसप्रकार अम्बेडकर जी के विचारधाराओं को लेकर गिरीष संघर्ष करते हुए शिक्षा प्राप्त करके उच्च पद पर नौकरी प्राप्त करता है।

इस उपन्यास से एक उच्च शिक्षित युवक की पीड़ा को वाणी मिली है। साथ ही सामाजिक स्तरीकरण की पीड़ा को वाणी देने का कार्य किया गया है। आरक्षण नीति पर टिप्पणी की जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में पीलादास के अध्यापक आसना सर अम्बेडकरवादी विचारों के वाहक हैं। पीलादास के दादाजी अपनी परंपरागत जातीयता को ठुकराकर और परंपरागत व्यवसाय को नकारकर नया व्यवसाय शुरू करते हैं। जातीयता के दंश से छुटकारा पाने के लिए दूसरे गाँव आकर रहते हैं। वे गिरीष को उच्च शिक्षित बनाते हैं। इससे स्पष्ट है कि पीलादास के दादा के माध्यम से निम्नवर्ग में

बदलाव आ रहा है। वे विकास की ओर जा रहे हैं। गिरीष भी शिक्षित बनकर परिवर्तन की राह पर चल रहा है। वह लोकसेवा आयोग द्वारा पंजीयक पद पर चुनने पर 'कन्फ्लीक्ट पर्सनॉलिटी' का अनुभव करता है। वह दिल्ली में अपनी जाति छिपाता है। वह निम्न वर्ग को सहायता करना चाहता है। लेखक के शब्दों में, ''पीलादास चमार से गिरीषकुमार होते ही उसके भीतर एक प्रकार की 'कन्फ्लीक्ट पर्सनॉलिटी' का विकास होने लगा था। जिसके शिखर पर पहुँचकर उसके सामने झूठ बोलने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।''[14] इससे स्पष्ट है कि गिरीष शिक्षित बनकर परिवर्तन की राह पर चल रहा है। तेजिंदर ने इस उपन्यास से संदेश दिया है कि परंपरागत जीवन को नकारकर विकास की ओर बढ़ना चाहिए और इसके लिए शिक्षा जैसे शस्त्र का उपयोग होना चाहिए। शिक्षा ही समाज के विकास का मार्ग है।

2.6 गिरीराज किशोर– 'परिशिष्ट':

हिंदी के विख्यात उपन्यासकार के रुप में गिरीराज किशोर सामने आते हैं। उन्होंने समाज के अलग–अलग पहलुओं को लेकर उपन्यास लिखे हैं। उनका 'परिशिष्ट' हिंदी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। प्रस्तुत उपन्यास में कानपुर के आई.आई.टी. का चित्रण हुआ है। जो वहाँ के अनुसूचित जाति के छात्रों की वास्तविकता को उजागर करता है। यह पहला उपन्यास है जो अनुसूचित जाति के छात्रों की त्रासदी और संघर्ष को अभिव्यक्त करता है। यह उपन्यास अनुसूचित जाति के जीवन का सच्चा दस्तावेज है।

प्रस्तुत उपन्यास से स्पष्ट किया गया है कि कानपुर के आई.आई.टी. में जातीय छूआछूत का माहौल है। इन संस्थानों में उच्च जाति के छात्र और निम्न जाति के छात्र में छूआछूत नजर आती है। उच्च वर्ग के छात्र निम्न वर्ग के छात्रों का मानसिक शोषण करते हैं। इससे परेशान होकर निम्नवर्ग के एक–दो छात्र आत्महत्या कर लेते हैं। फिर संस्था उसपर रोक नहीं लगा पाती, बल्कि उस ओर अनदेखी करती है।

इस उपन्यास का नायक अनुकूल है। उसके पिताजी बावनराम निम्नवर्ग के है, फिर भी महत्त्वकांक्षी है। वह अपने बेटे को परंपरागत गुलामी में जकड़ा हुआ देखना नहीं चाहते हैं। वह अनेक कोशिशों के फलस्वरुप अपने बेटे अनुकूल को इंजीनियर बनाना चाहते हैं। अनुकूल भी एक संकल्पशील और होनहार लड़का है। वह आई.आई.टी. में दाखिला प्राप्त करता है। वह अनेक संघर्ष

एवं अवरोधों के बावजूद आत्मविश्वास के साथ पढ़ाई पूरी करता है। उसे हर संकट में वहाँ का छात्र रामउजागर सहायता करता है। अनुकूल और रामउजागर अनुसूचित जाति के होने के बावजूद जे.ई.ई. (Joint Entrance Examination) में अव्वल नंबर प्राप्त करके प्रवेश लेते हैं। लेकिन उन्हें उच्च वर्ग द्वारा सताया जाता हैं। उच्च वर्ग के छात्र निम्न वर्ग के छात्रों का शोषण करते थे। प्रस्तुत उपन्यास से स्पष्ट होता है कि रामउजागर को मानसिक द्वंद्व का सामना करता पड़ता है।

रामउजागर संघर्षशील युवक है। वह निम्नवर्ग के छात्रों को सहायता करता है। उच्चवर्ग के छात्रों द्वारा होनेवाले मानसिक शोषण के खिलाफ प्रशासन को आगाह करता है, फिर भी प्रशासन उस ओर अनदेखा करती है। ऐसे ही मानसिक शोषण से एक छात्र निराश होकर आत्महत्या करता है। उसकी लाश उतारने के लिए सिपाही और रामउजागर चले जाते हैं। लेकिन वह भयानक दृश्य देखकर हाथ–पैर लड़खड़ाने लगते हैं। उसका गला सूखकर चीख निकल जाती है। ''उसे अजीब–अजीब अनुभूतियाँ होने लगी। उसे लगा कि मोहन के दाँत खुल गए हैं और वह हँस रहा है।.....उसे लगा, उसका शरीर बेकाबू होता जा रहा है। काबू में रखने की सारी कोशिशें नाकाम होती जा रहीं हैं। फिर लगा, उसका शरीर भी ऊपर उठने लगा और फिर.....एकाएक वह नीचे आ गिरा।''[15] वह दृश्य देखकर उसके दिमाग पर गहरा असर पड़ता जाता है। अंत में उसे मेंटल हॉस्पिटल में भरती किया जाता है।

अनुकूल को भी परेशान किया जाता है। फिर भी वह संघर्ष करता है। उसे मारपीट की जाती है। उसकी टाँग तोड़ दी गई है। फिर भी वह न्याय के लिए लड़ता है। अनुकूल को जान से मारने की धमकी दी जाती है। फिर भी वह अपने इरादों पर अटल रहता है। उसके संघर्ष में एक पीएच. डी. की छात्रा निलम्मा सहयोग देती है। अनुकूल और निलम्मा रामउजागर को आधार देने का कार्य करते हैं। रामउजागर संभलने का प्रयास करता है। उसे एक सेमिस्टर देना संभव नहीं होता है। वह संभलने के बाद वापस आना चाहता है, पर वरिष्ठ अधिकारी उसे अनुमति नहीं देते हैं, वह उसपर अन्याय करते हैं। तब रामउजागार अनुकूल को कहता है, ''निरर्थकता का बोध अब और गहरा होता जा रहा है। मैं न किसी के काम आ सकता हूँ और न किसी के सुख–दुख में ही खड़ा हो सकता हूँ। अपने ही दुख को संसार का सबसे बड़ा दुख बनाए घूम रहा हूँ। कोई न कोई रास्ता निकालने की कोशिश करुँगा।''[16] इसप्रकार वह संभलने का प्रयास करता है। अंत में संभलने में नाकाम रहता है। वह मजबूर होकर आत्महत्या करता है।

रामउजागर आत्महत्या करने पर निम्नवर्ग के छात्रों में हल–चल मच जाती है। अनुकूल, निलम्मा तथा अन्य छात्र आंदोलन छेड़ देते हैं। आंदोलन छिड़ जाने के बाद जाँच समिति गठित की जाती है और छात्रों को शांत किया जाता है। उस पर जाँच के नाम पर समिति अपना नौटंकी का काम करके चली जाती है और छह महीने बाद अपनी रिपोर्ट पेश करती है। छह महीने इसलिए लगाए जाते हैं कि उसमें छात्र तारीफ थी। अनुसूचित जातियों के छात्रों को मद्द करने पर बधाई दी गई थी। इसप्रकार जाँच समिति एक फार्स बनकर रह जाती है।

उपन्यास के अंत में जाँच अधिकारी को रामउजागर के पिताजी पत्र लिखते हैं कि आई.आई.टी. के अध्यापक वर्ग और बड़े–बडे. घर के ऊँची जाति के लड़कों ने रामउजागर को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया था, लेकिन जाँच समिति कोई भूमिका नहीं निभाती है। रामउजागर के पिताजी को लगता है कि हम गुलाम ही ठीक थे। इस जागृति ने मेरे बेटे की जान ली है। वे कहते हैं कि, ''..... कभी–कभी लगता है कि गाँधी बाबा न आए होते तो अच्छा था। उन्होंने ही हमें सोते से जगा दिया....आशाएँ बढ़ा दी..... नफरत और दमन ने अब यह रुप ले लिया।''[17] इसप्रकार रामउजागर के पिताजी निराश नजर आते हैं।

गिरीराज किशोर ने 'परिशिष्ट' उपन्यास के माध्यम से अनुसूचित जाति के छात्रों की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। उच्च शिक्षा प्रदान करनेवाली महान शिक्षा संस्थानों में हो रहे दुर्व्यवहार को लेखक ने उद्घाटित किया है। इस भयानक मानसिकता के कारण निम्नवर्ग के छात्रों का नुकसान हो रहा है। इसलिए लेखक कहते हैं, ''अनुसूचित कोई जाति नहीं मानसिकता है, जिसे अभिजात वर्ग पर ढ़केल देता है और वह अनुसूचित हो जाता है।''[18] इसप्रकार की भयानक मानसिकता को प्रस्तुत उपन्यास उजागर करता है।

2.7 सत्यप्रकाश: 'जस तस भई सवेर':

साहित्यकार सत्यप्रकाश हिंदी साहित्य जगत का एक शीर्षस्थ नाम हैं। उनके द्वारा रचित 'जस तस भई सवेर' उपन्यास हिंदी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। भारतीय संविधान में प्रावधान रखने से दलित वर्ग में चेतना निर्माण हो गई है। वे शिक्षा के माध्यम से परिवर्तित हो रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा शिक्षा, संगठन और संघर्ष करने के संदेश को अपनाकर आगे बढ़ रहे हैं। वे अपने अधिकार के लिए लड़ रहे हैं और अपना अधिकार प्राप्त कर रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में शिवदास,

रुपलाल, मंगलदास और सरवन जागृत पात्र हैं। उनमें शिक्षा के द्वारा जागृति आ गई है। इस उपन्यास में चौधरी और भगत को खलनायक के रुप में सामने लाया गया है। इस उपन्यास से स्पष्ट होता है कि शिक्षा ही परंपरागत अंधेरा नष्ट कर करते हुए सामाजिक चेतना का उजाला हो सकती है। इस उपन्यास की रामरती, सुनहरी और घुसिया आदि नारी पात्र अन्याय के खिलाफ संघर्ष करती है और न्याय प्राप्त करती है।

इस उपन्यास से स्पष्ट होता है कि ठाकुर चौधरी देवीपाल जैसे प्रस्थापित लोग आम जनता पर अन्याय करते हैं। इस उपन्यास में सरवन जागृत और शिक्षित पात्र है। वह अपने बड़े भाई हंसा को सदैव सलाह देता रहता है, क्योंकि शिक्षा के माध्यम से उसमें परिवर्तन आ गया था। सही–गलत की पहचान हो गई थी, लेकिन हंसा अनपढ़ है। वह उसकी बात नहीं मानता है। इसलिए हंसा सदैव चौधरी और भगत के चंगुल में फसता जाता है। चौधरी उसका आर्थिक शोषण करते हैं। भगत भी उसे लूटता रहता है। वह हंसा को कहता है, कि तुझपर जहारवीर गोगा बाबा का कोप हो गया है। इसलिए पाँच हजार रुपए खर्च होंगा। इसप्रकार भगत हंसा जैसे लोगों को लूटते रहते हैं, लेकिन सरवन भगत और चौधरी की स्वार्थी मानसिकता से परिचित है क्योंकि वह शिक्षित है। वह इसका खुलेआम विरोध करता है। वह हंसा को कहता है, '' अरे हंसा, मूर्ख मत बनो, दिमाग से काम लो, पूजापाठ में कुछ नहीं रखा। इससे पुजारियों, भगतों और शोषकों को छोड़कर और किसी व्यक्ति को कोई लाभ आज तक नहीं हुआ है और न कभी होगा।''[19] इसप्रकार सरवन शिक्षित होने के कारण अंधविश्वास का विरोध करता है।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक शिवदास है। वह उच्च शिक्षा विभूषित है। वह अम्बेडकरवादी विचारों से प्रेरित है। वह शिक्षा प्राप्त करके एक बैंक में नौकरी करता है। वह शिक्षित होने के कारण अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है। लेकिन समाज का शोषण करनेवाले चौधरी और भगत उसकी आवाज दबाने का काम करते हैं। फिर भी शिवदास हार न मानते हुए संघर्ष करता रहता है।

भगत और चौधरी हंसा की पत्नी पर अत्याचार करने का प्रयास करते हैं। इससे क्रोधित होकर मंगल पहलवान जो हंसा के पिता है, भगत और चौधरी को मारता हुआ पुलिस के हवाले करता है। मंगल पहलवान सामाजिक चेतना निर्माण करने का प्रयास करता है। वह अन्याय का खुलेआम विरोध करने का आवाहन करता है। उस समय मंगल पहलवान के समधी रुपलाल आए थे। वह शिक्षित और जागृत पात्र है। वह इन परंपरागत गुलामी, शोषण से मुक्त होने का आवाहन करता है।

वह समाज में व्याप्त मिथकों का विरोध करता है और समस्त समाज के कल्याण का विचार करने हेतु आवाहन करते हुए कहता है कि, ''हमें समाज में व्याप्त मिथकों को तोडना होगा। कोरे बुद्धिवादी से निपटना होगा। संकीर्णताओं एवं कलुश भावों को त्यागना होगा। कल्याणमित्र बनना होगा और इसके लिए हमें सर्वप्रथम तमसभरी रात्रि को चीरकर प्रकाश की ओर बढ़ना होगा। आप को प्रज्ञा और शक्ति को पहचानना होगा। अपनों की परिभाषा को बदलना होगा। तभी हम सबका और समस्त समाज का कल्याण संभव है।''[20] इसप्रकार समाज में जागृति लाने का काम रुपलाल करता है।

अत: स्पष्ट है कि लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज में जागृति लाने का काम किया है। सामाजिक और आर्थिक शोषण करनेवाले खलनायक के रुप में चौधरी और भगत को प्रस्तुत किया है। सरवन, शिवदास, रुपलाल सुशिक्षित पात्र हैं। वे शिक्षा ग्रहण करके समाज में चेतना निर्माण करने का प्रयास करते हैं। उन पर डॉ. अम्बेडकर के विचारों का प्रभाव है। इन सभी कारणों से यह उपन्यास हिंदी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है।

2.8 रामधारीसिंह दिवाकर–'आग, पानी, आकाश':

रामधारीसिंह दिवाकर वर्तमान काल के श्रेष्ठ उपन्यासकार है। उनके द्वारा लिखित 'आग, पानी आकाश' उपन्यास बहुचर्चित है। प्रस्तुत उपन्यास में आजादी के उपरांत बदलते सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थिति, आधुनिकीकरण आदि को प्रधानता देकर उपन्यास का ताना–बाना बुना है। आजादी के बाद संविधान का निर्माण होकर शिक्षा के अधिकार सभी को प्राप्त हुए। साथ ही सरकार की विकासोन्मुख नीतियों से समाज में परिवर्तन हो रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में दलित वर्ग का भी चित्रण आया है। जो संविधान में प्रावधान से शिक्षित बनकर भौतिक सुविधा प्राप्त कर रहा है। इस उपन्यास से भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार, गलत राजनीति, बेरोजगारी एवं शिक्षा के महत्त्व पर बल दिया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास डॉ. अम्बेडकर के विचारों की पहल करता है। आज दलित डॉ. अम्बेडकर से प्रेरणा लेकर शिक्षित बने रहे हैं, लेकिन डॉ. अम्बेडकर के उपरांत सही और अच्छे नेतृत्व की नितांत कमी आ रही है। आज के नेता समाज का शोषण करके स्वार्थ साधने पर बल देते हैं। इस उपन्यास में भागवत बाबू इसका सार्थक उदाहरण है। वह दलित वर्ग को शिक्षित बनाकर परिवर्तन और विकास होने के पक्ष में नहीं है। वह उनके प्रति सहानुभूति न रखते हुए घृणा भाव रखता है। भागवत

बाबू का कथन प्रस्तुत है, ''मैंने हरिजनों का ठेका नहीं ले रखा है, हरिजन! ये साले हरिजन कभी क्या सुधरेंगे?''[21] इसप्रकार वर्तमान नेता विकास और जनकल्याण के पक्ष में न होकर लूटने और घृणा करने के पक्ष में नजर आते हैं। जिससे समाज का विकास न होकर समाज दिशाहीन हो रहा है। वह उनका विकास और विचार करने के बजाए गुलाम बनाकर रखने में ही भलाई मानते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में बब्बन धोबी के परिवार का चित्रण आया है। बब्बन धोबी एक जागृत पात्र है। वह शिक्षा का महत्त्व समझता है। वह अपने बेटों को पढ़ाना चाहता है। वह परंपरागत व्यवसाय को अपने बेटों को लाने के पक्ष में नहीं है। इसलिए जमींदार बाबू भूपति नारायणसिंह के हाथ–पैर पकड़कर अपने दोनों बेटों को स्कूल में दाखिला करवाता है। बब्बन धोबी के दोनों बेटे युगेश्वर और भागवत होनहार है। लेकिन धोबी के बेटे स्कूल जाने से सवर्ण समाज को अच्छा नहीं लगता है। वह उनका मजाक उड़ाते हैं। कर्मकांडी पंडित बटेशनाथ झा तो कहता है कि, ''बाप का नाम लत्तीकत्ती, बेटे का नाम दुर्गादत्ता देखो ई धोबिया को बेटे को स्कूल भेजने लगा लगता है, पढ़ा–लिखाकर हाकिम बना देंगे।''[22] इसप्रकार गलत मानसिकता रखनेवाले लोग नजर आते हैं।

बब्बन धोबी से प्रेरणा लेकर अन्य लोगों के बेटे स्कूल जाने लगते हैं। उनके गाँव में ग्रामसेवक के रुप में उरांवजी आते हैं। वह प्रगतिशील विचारों का व्यक्ति है। वह गाँव के सभी बच्चों को स्कूल जाकर पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। बब्बन धोबी को आगे बच्चों को पढ़ाने के लिए उरांवजी प्रेरित करता है। इसलिए युगेश्वर और भागवत पढ़ने के लिए आगे चले जाते हैं। दोनों शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रावास में रहने के लिए जाते हैं। जिसप्रकार गाँव में जाति–व्यवस्था ने परेशान किया था, उसीप्रकार छात्रावास में दोनों को परेशान किया जाता है। उन्हें जाति के नामपर जलील किया जाता है। अंत में दोनों मजबूरन छात्रावास छोड़कर हरिजन लॉज पर रहने के लिए आते हैं। वहाँ पर दोनों बहुत अध्ययन करते हैं। दोनों को अच्छे अंक मिलते हैं। युगेश्वर तो प्रथम आकर सब को चकित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि अध्ययन करने पर कोई भी अच्छे अंक प्राप्त कर सकता है। उसमें कोई जातीयता आड़ नहीं आती है। बुद्धि किसी जाति की गुलाम नहीं होती; यह युगेश्वर अपनी लगन से बता देता है। युगेश्वर आगे चलकर अर्थशास्त्र में एम.ए. करता है। वह स्पर्धा परीक्षा का अध्ययन करके वित्त विभाग के सचिवालय में वरिष्ठ अफसर बन जाता है। भागवत आगे चलकर राजनीति में प्रवेश करता है।

प्रस्तुत उपन्यास से स्पष्ट होता है कि जब एकाध व्यक्ति संघर्ष करके शिक्षित बनता है तब उसे समाज की ओर ध्यान देना चाहिए। लेकिन उसीप्रकार नहीं होता है। युगेश्वर उच्च पद पर विराजमान होने पर उसके मानसिकता में परिवर्तन आ जाता है। वह लोगों को भूल जाता है और सरकारी कार्यालय आम लोगों को लूटता है। वह अपने को श्रेष्ठ मानकर दूसरों को निम्न दर्जा देता है। भागवत बाबू समाज से वोट प्राप्त करते हैं और नेता बन जाते हैं, पर समाज का विकास करने को महत्त्व नहीं देते। परिणामस्वरुप ऐसे नेताओं से समाज दिशाहीन होकर विकास से वंचित रहता है। वह समाज का विकास करने के बजाए समाज पर अन्याय करके लूटता रहता है। लेखक का कहना है, '' गाँव के बड़े लोग और भागवत बाबू जैसे नये सामंत कभी आदमी की तरह जीने नहीं देंगे।''[23] इसप्रकार भागवत जैसे नेता जनता को लूटते रहते हैं। लेखक इस उपन्यास से यर्थाथता को उजागर करके परिवर्तन लाना चाहते हैं।

2.9 मोहनदास नैमिशराय : 'मुक्तिपर्व':

मोहनदास नैमिशराय हिंदी के प्रसिद्ध लेखक है। उन्होंने 'मुक्तिपर्व' उपन्यास के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर के 'शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो' का मूलमंत्र समाज के सामने रखने का काम किया है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रमुख पात्र बंसी संघर्षशील है। बंसी की शिक्षा अधिक नहीं हो गई थी। पर वह हर हालत को भली–भांति जानता था। परंपरा से दलितों को शिक्षा से दूर रखा गया है, क्योंकि वे आजादी के सपने न देख पाए। देश आजाद होने पर और दलितों को संविधान में प्रावधान मिलने पर जागृत हो गए हैं। प्रस्तुत उपन्यास का बंसी परंपरागत अन्यायी और गुलामी को ठुकरा देता है। अनेक संकटों के बावजूद संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करता है।

तत्कालीन काल में शहर में स्कूल बहुत कम थे और वहां पर सवर्णो की बस्तियों में स्कूल थे। उन स्कूलों में सिर्फ सवर्ण अध्यापक ही अध्यापन का कार्य करते थे। देश आजाद होने के उपरांत अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में रामलाल को सुधारवादी रुप में दर्शाया है। रामलाल जाति से सवर्ण थे, पर आर्य समाज को अपना लिया था। वे निम्नवर्ग के साथ अच्छी तरह से पेश आते हैं। वे हर बस्ती में जाकर शिक्षा के महत्त्व को बताते हैं। रामलाल चमार के बस्ती में स्कूल खुलवाना चाहते हैं। एक साल की भागदौड़ के उपरांत कलाल की खाली इमारत में स्कूल शुरू करते हैं। बस्ती में बच्चे पढ़ सकेंगे, इससे सभी लोग खुश थे। पहले दिन बच्चों की संख्या थी, लेकिन

बाद में संख्या कम होती गई। क्योंकि छात्र गरीब परिवार से थे और माँ–बाप को सहायता किए बिना पेट नहीं भरता था। फिर भी शिक्षा देना बरकरार रख गया।

बंसी ने थोड़ी–बहुत शिक्षा ली थी, पर वह शिक्षा का महत्त्व समझता था। बंसी में स्कूल शुरू होने पर बंसी बहुत खुश था। क्योंकि उसका बेटा सुनीत अब उस स्कूल में पढेगा। वह सुनीत को खूब पढ़ाने की ख्वाहिश रखता था। लेकिन सुनीत स्कूल जाने पर समाज का यथार्थ जीवन सामने आने लगा। फिर भी वह लगन से पढ़ाई करता हैं। घर में बिजली न होने के कारण दिन में ही पढ़ाई पूरी करता हैं। या रास्ते के बिजली के खंबे के नीचे बैठकर पढ़ाई करता हैं। उसके उपरांत बस्ती के तीन बच्चों ने पाँचवी को बोर्ड की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। सुनीत को सबसे अधिक नंबर मिले थे। सुनीत छोटा होने के उपरांत भी अपना अध्ययन पूरा करके बस्ती के बच्चों को पढ़ाता था। जो बच्चे घर की मजबूरी के कारण स्कूल नहीं जाते थे। इससे बंसी बहुत खुश था।

पाँचवी बोर्ड की परीक्षा उत्तीर्ण होनेपर आगे की ज्यूनियर हाईस्कूल की शिक्षा के लिए बनिया पाड़ा जाना पड़ता था। सुनीत बनिया पाड़ा चला जाता है। वह कहता है कि मैं निकेतन प्राइमरी स्कूल से आया हूँ। तब एडमीशन करनेवाला व्यक्ति कहता है,'' समझ गया बच्चू समझ गया, चमारों के स्कूल से आए हो यही ना।''[24] इसप्रकार निम्न जाति के नामपर सुनीत का अपमान किया जाता है। फिर भी सुनीत धैर्य के साथ सामना करता है। सुनीत को उसकी सहपाठी सुमित्रा सहायता करती है। वह सुधारवादी विचारों के व्यक्ति की बेटी थी। सुनीत उस स्कूल में भी बड़ी लगन से अध्ययन करता है। नैमिशराय इस संदर्भ में लिखते हैं,''सुनीत मेहनत इसलिए कर रहा था कि उनकी जाति का सिर ऊँचा हो, उनके मान–सम्मान को जो अब तक आघात लगे हैं, उनसे उबरकर वे आगे आएँ।''[25] सुनीत के स्कूल में अध्यापक पांडे जाति से ब्राह्मण है। वह सुनीत से नफरत करता है। सुनीत मेरिट के आधार पर छात्रवृत्ति पाना चाहता है, लेकिन अध्यापक पांडे को लगता है कि सुनीत जाति के आधार पर वजीफा ले। सुनीत इन्कार करने पर गुस्से से पांडे फॉर्म पर हस्ताक्षर नहीं करते हैं। परिणामस्वरुप सुनीत और सुम्मा हेडमास्टर के पास जाते हैं। वास्तविकता जानकर हस्ताक्षर करने के लिए फार्म अपने पास रखते हैं। अंत में उस परीक्षा में सुनीत प्रथम आता है।

सुनीत के प्रगति से सभी लोग शिक्षा का महत्त्व समझते है और अपने बच्चों को स्कूल भेजना शुरू कर देते हैं। सुनीत का प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर पांडे को बुरा लगता है। बंसी अपने बेटे का सदैव प्रोत्साहित करता रहता है। वह सुनीत को कहता है, '' सवर्ण कभी भी नहीं चाहते कि

हमारे बच्चे पढ़े–लिखे। क्योंकि अगर वे पढ़–लिख गए तो उन्हें गुलामों की फौज कहाँ से मिलेगी? उनकी सेवा–टहल फिर कौन करेगा? उनके जानवरों को चारा कौन खिलाएगा?पानी कौन पिलाएगा? उनके बदन की मालिश कौन करेगा? उनकी मक्कारी से हमें बच कर रहना है। पर उनके कुछ अच्छी बातों से कुछ सीखना है। उनमें सभी बूरे नहीं, अच्छे भी है।''[26] इसप्रकार बंसी सुनीत को सही रास्ता दिखाने का प्रयास करता है। सुनीत दिन–ब–दिन प्रगति करता रहता है। इसलिए बस्ती के लोग बंसी और सुंदरी के सामने बंसी की प्रशंसा करते हैं। अन्य लोग सुनीत से प्रेरणा लेकर शिक्षा का महत्त्व समझकर पढ़ाई को प्रधानता देते हैं। करतारा भंगी अपने बेटे उछालसिंह को पढ़ाना चाहता है। लेकिन स्कूल अध्यापक पांडे उछालसिंह भंगी होने के कारण दाखिला नहीं करते हैं। सुनीत को पता चलने पर हेडमास्टर से मिलकर दाखिला करवाता है। साथ ही उछालसिंह की बहन भूरी को भी पढ़ाने के लिए तैयार करता है। बोर्ड की परीक्षा में सुनीत को प्रथम श्रेणी मिलती है। लेकिन पांडे जान–बूझकर उसे दूसरे नंबर पर रखता है। उसे लगता है कि, ''अगर ससुरे ढेढ़े–चमार के बच्चे ने हमारे स्कूल में टॉप किया तो नाक नहीं कट जाएगी हमारी। क्या ब्राह्मणों के बच्चे मारे गए अव्वल आने के लिए। ये ससूरे जूते गाँठने वाले कैसे आगे ही बढ़ते जा रहे है।''[27] इसप्रकार रुढ़ीवादी अध्यापक सुनीत पर अन्याय करते हैं। फिर भी सुनीत रुकता नहीं हैं। वह संघर्ष करता रहता है।

'गंगाराम हाईस्कूल' बड़ा था। नौवीं के लिए सुनीत गंगाराम हाईस्कूल में एडमिशन लेता है। इतना बड़ा स्कूल होने के उपरांत भी रुढ़ीवादी, परंपरावादी और जातीयवादी लोग वहाँ थे। वहाँ के अध्यापक शिवानंद शर्मा तो मास्टर कम पुजारी अधिक दिखाई देते हैं। लेखक कहते हैं, ''वे मास्टर कम और पुजारी अधिक थे। स्कूल में ही उन्होंने मंदिर बनवा लिया था।.....वे स्कूल के नजदीक ही प्रधानाचार्य निवास में रहते थे। नजदीक रहने में उन्हें दो तरह की सुविधाएं थी। पहली मंदिर में आई दान–दक्षिणा वे स्वयं ही लेते थे और दूसरी मंदिर उनका बैठक खाना भी था। वहीं वे ट्यूशन भी पढ़ाते थे। मंदिर से उन्हें लाभ ही लाभ थे।''[28] इसप्रकार धर्म के ठेकेदार स्वार्थपूर्ति करते थे और जातिभेद को बढ़ावा देकर अमानवीय व्यवहार करते थे।

सुनीत के साथ शिवानंद शर्मा जातिभेद और अन्याय करता है। फिर भी सुनीत बड़ी लगन से अध्ययन कर अच्छे अंक पाता है। उसके उपरांत सुनीत और सुमित्रा 'टीचर्स ट्रेनिंग' में आते हैं। टीचर्स ट्रेनिंग में अच्छे अंक प्राप्त करके सुनीत अपनी बस्ती में पुन: अध्यापक बनकर लौटता है। जिस समाज ने उनका पढ़ने का अधिकार छीन लिया था। वहाँ पर सुनीत पढ़ाने के लिए अध्यापक

बनकर आता है। इसप्रकार प्रस्तुत उपन्यास एक प्रेरणादायी रुप में हमारे सामने आता है। युगों–युगों से जिस विषम समाज व्यवस्था ने सुनीत और उसके बिरादरी को शिक्षा से वंचित एवं महरुम किया है, उसी विषमतावादी वर्णव्यवस्था को चुनौती देकर सुनीत का अध्यापक बनना एक तरह से इस व्यवस्था पर गहरा तमाचा ही है। जो वर्णव्यवस्था दलितों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखती है, उसी वर्णव्यवस्था में एक दलित का शिक्षक बन जाना एक महत्त्वपूर्ण पहल है जिसे दिखाने में लेखक मोहनदास सफल हुए हैं।

निष्कर्ष:

आज हिंदी के अनेक उपन्यासकार शिक्षा प्रणाली पर लेखनी उठा रहे हैं। देवेश ठाकुर द्वारा लिखित 'भ्रमभंग' उपन्यास में शिक्षा संस्थाओं की दयनीय स्थिति को उजागर किया है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक चंदन पारिवारिक दायित्व निभाते हुए संघर्ष करके अध्यापन का कार्य करता है। यह युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणादायी है। इस उपन्यास से शिक्षा व्यवस्था के शोषण और स्वार्थ की बुनियाद को उजागर किया है। ऐसी व्यवस्था से चंदन जैसे युवकों का भ्रमभंग होता है। इस उपन्यास से शिक्षा जगत की भ्रष्ट, स्वार्थी, आत्मकेंद्रीत एवं अवसरवादी मानसिकता को स्पष्ट किया है। जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में परंपरागत शिक्षा व्यवस्था की पोल खोल दी है। इस उपन्यास का नायक चंदन अनेक संघर्षों के बावजूद शिक्षा प्राप्त करता है। वह शिक्षित बनकर गरीब जनता में जागृति लाना चाहता है। वह लोगों को अज्ञान, अशिक्षा एवं अंधविश्वास से दूर रहने की सलाह देकर शिक्षित बनकर उन्नति करने का संदेश देता है।

मदन दीक्षित द्वारा लिखित 'मोरी की ईंट' उपन्यास में जैकब और फ्लोरा में मानवतावादी गुण नजर आते हैं। वह सोहम जैसे गरीब परिवार से आने वाले छात्रों को पढ़ाते हैं। वह छात्रों को अपने बेटे की तरह पालते हैं। वे शिक्षा के माध्यम से छात्रों के जीवन में आनंद के रंग भर देते हैं। चंद्रमोहन प्रधान द्वारा लिखित 'एकलव्य' उपन्यास में रुढ़ी, प्रथा, परंपरा का विरोध करके परंपरागत शिक्षा व्यवस्था पर करारा व्यंग्य कसा है। इस उपन्यास में शिक्षा का महत्त्व, स्वअध्ययन का महत्त्व आदि को प्राथमिकता देकर परंपरागत भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर करारी चोट की गई है। अन्यायी आचार्य द्रोण द्वारा गुरू दक्षिणा के रुप में अँगुठे की मांग करके शोषण का शिकार बनाया जाता है। इसप्रकार लेखक ने परंपरागत शिक्षा व्यवस्था की पोल खोलने का काम किया है। तेजिंदर

कृत 'उस शहर तक' उपन्यास में एक उच्च शिक्षित युवक की पीड़ा को वाणी मिली है। इस उपन्यास का नायक गिरीशकुमार शिक्षित बनकर परिवर्तन की राह पर चल रहा है। वह परंपरागत जीवन को नकारकर विकास की राह पर आगे बढ़ रहा है। लेखक ने शिक्षा के माध्यम से समाज में परिवर्तन दिखाया है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर राजनीति का बहुत गहरा प्रभाव दिखाई देता है। कॉलेज–विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे और राजनीतिक गतिविधियों से जुड़े नवयुवकों की बहुत–सी गतिविधियों को उपन्यासकारों ने अभिव्यक्त किया है। गिरीराज किशोर का 'परिशिष्ट' उपन्यास इसकी पहल करता है। आज शिक्षा जगत में अनुचित मानसिकता के कारण व्यक्ति उच्च पद पर विराजमान है। उच्च पद पर बैठे लोग अपनी जात–बिरादरी के लोगों का समर्थन करके योग्य व्यक्तियों पर अन्याय करते हैं। इस उपन्यास में अनुसूचित जाति के छात्रों की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। उच्च शिक्षा प्रदान करने वाली महान शिक्षा संस्थानों में हो रहे दुर्व्यवहार को लेखक ने उद्घाटित किया है। इस भयानक मानसिकता के कारण निम्नवर्ग के छात्रों का नुकसान हो रहा है। सत्यप्रकाश के 'जस तस भई सवेर' उपन्यास का शिवदास उच्च शिक्षित है। वह अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है। वह शिक्षा के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाना चाहता है।

रामधारी सिंह दिवाकर कृत 'आग,पानी,आकाश' उपन्यास में आजादी के उपरांत बदलते सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थिति, आधुनिकीकरण, शिक्षा आदि को प्रधानता दी है। 'शिक्षा का अधिकार' आजादी के बाद सभी को प्राप्त होने से विकासोन्मुख नीतियों से समाज में परिवर्तन हो रहा है। इस उपन्यास से भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार, गलत राजनीति, बेरोजगारी एवं शिक्षा के महत्त्व पर बल दिया गया हैं। मोहनदास नैमिशराय लिखित 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में डॉ. अम्बेडकर के 'शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो' के मूलमंत्र को दर्शाया है। लेखक ने परंपरागत शिक्षा प्रणाली के प्रति विद्रोह करके समतावादी विचार लाने का कार्य किया है। सुनीत इस विचारधारा की पहल करता है। वह अनेक संघर्षों के बावजूद शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक बनता है और समाज में परिवर्तनवादी विचार प्रवाहित करने का प्रयास करता है। इन उपन्यासकारों ने विषमतावादी शिक्षा प्रणाली को नकारकर आधुनिक एवं समतावादी शिक्षा प्रणाली की पहल की है। वे शिक्षा प्रणाली की समस्याओं पर गौर करके समाधान ढूँढ रहे हैं। वे अपनी लेखनी से शिक्षा प्रणाली और समाज को सही दिशा देने का प्रयास कर रहे हैं।

संदर्भ संकेत

1. ठाकुर देवेश, 'भ्रमभंग', संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं:1992, पृ.क्र. 145.
2. वहीं, पृ.क्र.,54.
3. कर्दम जयप्रकाश, 'छप्पर', संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं:1994,पृ.क्र.32.
4. वहीं, पृ.क्र.,18.
5. वहीं, पृ.क्र.,64.
6. दीक्षित मदन, 'मोरी की ईंट', शब्दाकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं:1996,पृ.क्र.33.
7. वहीं, पृ.क्र.,99.
8. प्रधान चंद्रमोहन, 'एकलव्य', अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1997, पृ.क्र.39.
9. वहीं, पृ.क्र.91.
10. वहीं, पृ.क्र.120.
11. वहीं, पृ.क्र.77.
12. वहीं, पृ.क्र.187.
13. 'उस शहर तक': एक उच्च शिक्षित दलित की छटपटाहट, जर्नल ऑफ शिवाजी युनिवर्सिटी, कोल्हापुर, वाल्यूम नं.35 प्र.सं:2000,पृ.क्र.111.
14. तेजिंदर, 'उस शहर तक', ज्ञानभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1997, पृ.क्र.40.
15. किशोर गिरिराज, 'परिशिष्ट', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1998, पृ.क्र.124.
16. वहीं, पृ.क्र.279.
17. वहीं, पृ.क्र.295.
18. वहीं, पृ.क्र.....
19. सत्यप्रकाश, 'जस तस भई सवेर', कामना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1998, पृ.क्र.10.
20. वहीं, पृ.क्र.128.
21. दिवाकर रामधारीसिंह, 'आग पानी आकाश' नैशनल पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, प्र.सं.1999, पृ.क्र.136.
22. वहीं, पृ.क्र.03.

23. वहीं, पृ.क्र.13.

24. नैमिशराय मोहनदास, 'मुक्तिपर्व', अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2002, पृ.क्र.46.

25. वहीं, पृ.क्र.61.

26. वहीं, पृ.क्र.71.

27. वहीं, पृ.क्र.77.

28. वहीं, पृ.क्र.79.

तृतीय अध्याय

हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली

तृतीय अध्याय

हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली

प्रस्तावना :

हिंदी उपन्यासकारों ने शिक्षा प्रणाली को उजागर किया है। मनुष्य अपने जीवन अनुभवों का परिमार्जन जिससे करता है, वह शिक्षा है। शिक्षा औपचारिक या अनौपचारिक साधनों द्वारा प्राप्त होती है। यह प्रक्रिया परंपरा से चली आ रही है। इसकी शुरुआत मानव निर्मिति से हो गई है और निरंतर है। व्यक्ति का व्यक्तिगत पारिवारिक और सामाजिक जीवन शिक्षा पर पूरी तरह से निर्भर है। मनुष्य के जीवन में शिक्षा एक ऐसी शक्ति है कि जो मनुष्य की व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक आदि शक्तियों का सामंजस्य निर्माण करके उसका जीवन योग्य दिशा की ओर ले जाती है। मनुष्य के जीवन में अनेक समस्याएँ होती हैं। उन समस्याओं का हल ढूँढने का काम शिक्षा करती है। जिससे मनुष्य का जीवन सफल बन जाता है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''शिक्षा से व्यक्ति जीवन के प्रति उचित दृष्टिकोण बनाता है। जीवन की गुत्थियों को सुलझाने का मार्ग शिक्षा ही प्रशस्त करती है। जीवन संघर्षमय होता है। अत: व्यक्ति समुचित शिक्षा–दीक्षा से ही अपना जीवन सफल बना सकता है।''[1] इसप्रकार शिक्षा मनुष्य जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

शिक्षा निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है। शिक्षा के माध्यम से करूणा, प्रेम, एकता, सहानुभूति आदि सद्गुणों का विकास होता है। शिक्षा के माध्यम से पुरानी पीढ़ी का ज्ञान नई पीढ़ी को मिल जाता है। स्कूली जीवन में दी जानेवाली शिक्षा को ही शिक्षा प्राप्त करना माना जाता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि स्कूली शिक्षा के साथ–साथ सामाजिक जीवन में हम अनेक अनुभव लेते हैं जिससे हमें ज्ञान मिलता है। शिक्षा शब्द को बहुअर्थी मानना पड़ेगा। वह प्रक्रिया सदैव गतिशील होती है। जिससे मानव का विकास होता है। शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन होते रहते हैं। शिक्षा से मनुष्य वैचारिकता, नैतिकता को अपनाकर समाज के विकास में सहायक बनता है। इस संदर्भ में नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''शिक्षा अपने वास्तविक अर्थ में एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य में

नैतिक चरित्र और मुक्त विचार उत्पन्न कर उसकी रुचि और प्रतिभा के अनुसार उसके समाजोपयोगी चरम विकास में सहायक होती है।''[2] इसप्रकार शिक्षा समाज को नई दिशा देती है।

शिक्षा प्रणाली के अध्ययन से ज्ञात होता है कि समाज आदर्शोन्मुख बनने के लिए एवं मनुष्य के विकास के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण है। इसी उद्देश्य को लेकर शिक्षा दी जाती है। सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति के अनुरुप शिक्षा के उद्देश्य सामने आ जाते हैं। मानव को जिन शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति होती है, उसका प्रमुख साधन शिक्षा है। शिक्षा के माध्यम से समाज में प्रेम, करुणा, अहिंसा, सत्य आदि मूल्यों को स्थापित किया जाता है। समाज में जो समस्या है उसका हल करने के लिए शिक्षा का प्रयोग किया जाता है। उसमें समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा की प्रधानता है। शिक्षा के माध्यम से समाज में सामंजस्य निर्माण किया जाता है।

सामाजिक विकास के लिए व्यक्ति का विकास होना आवश्यक है। वह विकास शिक्षा द्वारा प्राप्त होता है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य का बौद्धिक विकास होता है। साथ ही परंपरागत सांस्कृतिक विरासत को वह शिक्षा के माध्यम से प्राप्त करता है। वह जीविकोपार्जन के लिए शिक्षा को महत्त्वपूर्ण मानता है। आज मनुष्य हर क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है, खोज कर रहा है , वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपना रहा है। इसके लिए साधन के रुप में शिक्षा को अपना रहा है। शिक्षा व्यापक अर्थ को अपनाकर आगे बढ़ती है। जिसमें मनुष्य व्यक्तिगत जीवन के साथ–साथ सामाजिक जीवन को अपनाता है। शिक्षा ही मनुष्य व्यवहार कर्तव्य, विचारों को सही दिशा की ओर ले जाती है। इस संदर्भ में डॉ. रामपाल सिंह का मत अवलोकनीय है, ''शिक्षा एक ऐसी सामाजिक एवं गतिशील प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्मजात गुणों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को निखारती है और सामाजिक पर्यावरण के साथ अनुकूल करने के योग्य बनाती है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराते हुए उसके विचार एवं व्यवहार में समाज के लिए हितकर परिवर्तन करती है।''[3] इसप्रकार शिक्षा व्यक्ति के जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भारत में परंपरागत शिक्षा कुछ वर्णों तक ही सीमित थी जिससे शिक्षा का विकास नहीं हो सका । साथ ही समाज विकसित नहीं हो सका । लेकिन भारत में अंग्रेजो के आगमन से शिक्षा के द्वार सभी वर्गों के लिए खोले गए। साथ ही अनेक समाजसुधारकों ने योगदान देकर शिक्षा जनसामान्य तक फैलाने का प्रयास किया है। आधुनिक काल में शिक्षा ने व्यापक रुप धारण कर लिया है। आज शिक्षा ग्रामीण क्षेत्र के साथ पूरी तरह से जुड गई है। शहरों में तो आधुनिक शिक्षा ने उन्नती

के अनेक द्वार खोले दिए हैं। सरकार आज शिक्षा पर सर्वाधिक खर्च कर रही है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक सरकार खर्च करके विकास कर रही है। फिर हम देखते हैं कि जिस शिक्षा से उदात्त दृष्टि की अपेक्षा करते हैं वह पूरी नहीं हो रही है। हमे उदात्त दृष्टि का अभाव नजर आता है। जो शिक्षा क्षेत्र समाज के विकास के लिए है उसमें हमे विसंगतियाँ दिखाई देती है। इसे हिंदी के उपन्यासकारों ने रेखांकित करने का प्रयास किया है।

3.1 परंपरागत शिक्षा प्रणाली :

भारत में परंपरा से शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था है। शिक्षा के माध्यम से परंपरा से मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयास किया गया है। भारत में वैदिक काल से गुरूकुल शिक्षा व्यवस्था दिखाई देती है। उस काल में शिक्षा के माध्यम से समाज का विकास करने का प्रयास किया गया है। मनुष्य के मानसिक, शारीरिक, सामाजिक विकास के लिए शिक्षा को प्रधानता दी गई है। इस काल में ज्ञान का प्रयोग ज्यादातर ईश्वर भक्ति के लिए किया गया है। इस काल में ज्यादातर धार्मिक शिक्षा पर बल दिया जाता था। शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व के विकास पर बल दिया जाता था। शिक्षा के माध्यम से गलत धारणाओं को खारिज किया जाता था। साथ ही शिक्षा –आश्रम में छात्रों का चरित्र–निर्माण किया जाता था। जिससे आगे चलकर सामाजिक दायित्व का पालन करनेवाला समाज और नागरिकों का निर्माण किया जाता था। इसप्रकार छात्र निर्माण करके राष्ट्रीय भावना को प्रधानता देकर राष्ट्रसंरक्षण एवं राष्ट्रहित का पालन किया जाता था। फिर भी हम देखते है कि वैदिक काल में कुछ दोष भी दिखाई देते है। उस काल में धर्म को अत्याधिक महत्त्व दिया गया था। धार्मिक शिक्षा से आगे प्रगति नहीं हो सकी। वैदिक काल में छात्र धार्मिक कर्मकाण्ड में अधिक व्यस्त रहता था। समाज में चातुर्वण्य व्यवस्था होने के कारण दलितों को शिक्षा के द्वार बंद थे। इसकारण उनपर अन्याय होता था। साथ ही धार्मिक साहित्य एवं धार्मिक विषयों को प्रधानता देकर वैज्ञानिक विषयों की उपेक्षा की गई थी। परिणामस्वरुप इतिहास, भूगोल, गणित, अर्थशास्त्र, विज्ञान आदि धर्म–निरपेक्ष विषयों की उपेक्षा की गई और इन विषयों का विकास नहीं हो गया था। इसप्रकार संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाने के कारण गलत धारणाओं को बढ़ावा मिलता गया और विचार स्वतंत्रता पर अंकुश लग गया। इस संदर्भ में डॉ . नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली में कई अच्छाइयाँ थीं, लेकिन

उनके साथ ही कुछ कमियाँ भी थी, जैसे – धर्म का अत्यधिक प्रभाव, शूद्रों की शिक्षा के प्रति उदासीनता, वैज्ञानिक विषयों की उपेक्षा, विचार स्वातंत्र्य का अभाव, सांसारिक जीवन की उपेक्षा इत्यादि।''[4] इसप्रकार वैदिक काल में शिक्षा प्रणाली कुछ अच्छाइयाँ नजर आती है तो कुछ दोष दिखाई देते हैं।

वैदिककाल के उपरांत बौद्ध काल में शिक्षा का स्वरुप बदल गया। महात्मा बुद्ध ने परंपरागत वैदिक काल के शिक्षा व्यवस्था में बदलाव लाया। उन्होंने वैदिक काल के अच्छे गुणों का स्वीकार करके दोषों का निराकरण किया। उन्होंने शिक्षा को समयानुकूल बनाने का प्रयास किया। इस काल की शिक्षा व्यवस्था पर मत प्रकट होते हुए डॉ. एफ. ई. केई कहते है, ''बौद्ध शिक्षा 1500 वर्ष से अधिक प्रचलित रही और उसने ऐसी शिक्षा पद्धति का विकास किया जो ब्राह्मणीय शिक्षा–पद्धति की प्रतिद्वंदवी थी, पर अनेक बातों में उसके सदृश्य थी।''[5] इसप्रकार इस काल में समयानुकूल शिक्षा को अपनाया गया। जो शिक्षा सैद्धातिक होने के साथ–साथ व्यावहारिक भी थी।

बौद्धकाल में सभी वर्गो के छात्रों को शिक्षा मिलती थी। वहाँ गुरु–शिष्य का संबंध समानता पर आधारित था। उस काल में सामूहिक शिक्षा पर बल दिया जाता था। उस समय में सामान्य विद्यालयों की व्यवस्था की गई थी। इसके माध्यम से व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया जाता था। फिर भी इस काल के अनेक दोष दिखाई देते हैं। इस काल में शिक्षा के माध्यम से धार्मिक कट्टरता के विचारों को अपनाया गया। इस काल में स्वेच्छाचार को प्रधानता दी गई और लौकिक जीवन की उपेक्षा की गई। इसप्रकार बौद्ध कालखंड में शिक्षा व्यवस्था में कुछ गुण–दोष दिखाई देते है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का मत अवलोकनीय है, ''बौद्धकालीन शिक्षा देश की दुर्बलता का कारण बनी। फिर भी आधुनिक भारतीय शिक्षा को बौद्ध –शिक्षा का अत्यंत व्यापक योगदान रहा है। हमारा देश आज भी अहिंसा, शांति, प्रेम के सिद्धांतो का उपासक माना जाता है जो बौद्धों की ही देन है।''[6] इसप्रकार बौद्धकाल की शिक्षा प्रणाली में पाठ्यक्रम में सन्निहित विषयानुसार शिक्षा विधियाँ अपनाते हुए मौखिक पाठ्यवस्तु विधी, विचार विमर्श, प्रयोगविधी, परिभ्रमणविधी दिखाई देती है।

बौद्धकाल के उपरांत मुस्लिम शासन काल नजर आता है। इस कालखण्ड में लड़कों को शिक्षा कालखण्ड अनिवार्य बना गयी। इस काल में शिक्षा व्यवस्था में धार्मिक मूल्य और भौतिक मूल्य में समन्वय दिखाई देता है। इस संदर्भ मे प्रा. एल. जी. देशमुख लिखते हैं, ''या शिक्षणातील धार्मिक

मूल्ये आणि भौतिक किंवा वैश्विक गरजा आणि सुखसमृद्धी यांच्यामध्ये योग्य तो समन्वय होता.''[7] इस शिक्षा में धार्मिक मूल्य और भौतिक या वैश्विक आवश्यकता और सुख–समृद्धि इसमें सुयोग्य समन्वय था। इस शिक्षा प्रणाली में मनुष्य चारित्र्य के निर्माण पर भर दिया गया था। साथ ही गुरु–शिष्य में समानता थी। इस काल में शिक्षा केंद्रो का निर्माण किया गया था। साथ ही अनेक विषयों को लेकर अध्यापन का काम होता था। उस काल में लेखन प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलने के कारण उस काल की जानकारी अभी भी लिखित रुप से विदयमान है। उस काल में शिक्षा मुक्त देकर व्यावहारिक शिक्षा पर बल दिया गया। फिर उस काल के शिक्षा–व्यवस्था में दोष नजर आता है। इसकाल में मुस्लिम समाज की शिक्षा पर अधिक बल देने से हिंदू शिक्षा से दूर होते गए। इस कारण समाज में असमानता आ गई। साथ ही अरबी और फारसी भाषाओं को अधिक प्रधानता दी गई है। साथ ही छात्र के व्यक्तित्त्व के विकास को प्रधानता नहीं दी गई है। लौकिक शिक्षा पर अधिक बल देने के कारण जनसाधारण शिक्षा से वंचित रहे। स्त्री शिक्षा, उच्च आदर्शों का अभाव रटने पर अधिक बल देने के कारण पढ़ने और लिखने में अंतर मौखिक पद्धति पर बल होने के कारण स्वाध्याय की उपेक्षा होती रही।

विवेच्य उपन्यासकारों ने परंपरागत शिक्षा प्रणाली को अपने उपन्यासों में उजागर करने का प्रयास किया है। 'एकलव्य' उपन्यास चंद्रमोहन प्रधान द्वारा लिखित है। यह उपन्यास मिथकीय चेतना से युक्त है। प्रधान जी ने इसे ऐतिहासिक आधार बनाकर दलितों को चेतित करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत उपन्यास में रुढि, प्रथा, परंपरा आदि का विरोध करके शिक्षा के माध्यम से समाज में जागृति लाने का कार्य किया है। इसमें स्वअध्ययन का महत्त्व, गुरु का महत्त्व, शिक्षा का महत्त्व आदि पर बल दिया गया है। आचार्य द्रोण द्वारा अंगूठे की माँग करना शोषण की परिसीमा है। महाभारत की कथा को आधार बनाकर आधुनिक भारतीय समाजव्यवस्था में दलितों को जागृत किया है। इस उपन्यास से स्पष्ट होता है कि, एकलव्य को शिक्षा से दूर रखा जाता है। परंपरागत शिक्षा प्रणाली को अपनाने वाले आचार्य द्रोण एकलव्य से कहते हैं, ''तुम अपेक्षाकृत हीन कुल में उत्पन्न हुए है। यहाँ पर कोई गुरुकुल नहीं है। मैं उच्च कुलस्थ लड़कों के साथ तुम्हे शिक्षा नहीं दे सकता और बात यह भी है कि तुम निषाद वंशी होकर उन राजकुमार के साथ कैसे सीख सकोगे।''[8] इसप्रकार परंपरागत शिक्षा प्रणाली में भेदभाव नजर आता है।

रामधारीसिंह दिवाकर के 'आग पानी आकाश' में परंपरागत शिक्षा प्रणाली को उजागर किया है । दिवाकर जी ने भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति को उजागर करके उसका शिक्षा पर प्रभाव दिखाया है । परंपरागत उच्च वर्ग शिक्षा पर अपना अधिकार रखने का प्रयास करता है । वह अन्य वर्ग को शिक्षा से दूर रखने का प्रयास करता है। प्रस्तुत उपन्यास में बब्बन धोबी अपने बच्चों को पढ़ाना चाहता है । वह बच्चों को स्कूल में भेजने पर सभी उनका मजाक उड़ाते हैं। कर्मकांडी पंडित बटेशनाथ झा तो कहता है कि, ''बाप का नाम लत्तीकत्ती, बेटे का नाम दुर्गादत्त। देखो ई धोबिया को !' बेटे को स्कूल भेजने लगा। लगता है, पढ़ा–लिखाकर हाकिम बना देंगे।''[9] इसप्रकार परंपरागत गलत मानसिकता रखकर शोषण होता हुआ नजर आता है।

3.2 आधुनिक शिक्षा प्रणाली :

16 वी शतीं के आरंभ में पाश्चात्य देशों में आधुनिकता की शुरुआत हो गई। भारत में नवजागरण हुआ जिसमें दयानंद सरस्वती, राजाराममोहन राय, म. फुले, लोकहितवादी, आगरकर, लोकमान्य तिलक, रानडे म. गो., फिरोजशाह मेहता, आदि नाम महत्त्वपूर्ण है । रवींद्रनाथ, स्वामी विवेकानंद, सय्यद अहमद खान, महमंद इक्बाल आदि का योगदान भी प्रशंसनीय है । भारत में मिशनरीयों के आगमन से शिक्षा–व्यवस्था में बदलाव आ गया। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनीने 1813 में शिक्षा सबंधी चार्टर ॲक्ट तैयार किया। इससे आधुनिक शिक्षा की शुरुआत हो गई। इससे उपरांत सन 1833 में शिक्षा विषयक कानून बनाया गया। सन 1835 में लॉर्ड मेकॉले का विवरणपत्र प्रकाशित हो गया। उसमें पर्क्युलेशन थिअरी को स्पष्ट करके शिक्षा को प्रधानता दी गई। उसके बाद सन 1854 में वूड का शैक्षणिक खलिता को पेश किया गया। उसमें ब्रिटिश सरकार ने भारत की शैक्षणिक जिम्मेदारी का स्वीकार किया है । उन्होंने शैक्षणिक ध्येय को स्पष्ट किया है , पाठ्यक्रम का निर्माण किया है । साथ ही शैक्षणिक माध्यम बहुमुखी बन गया है । उन्होंने इस खलिता के माध्यम से लोकशिक्षण पर बल दिया है । इस संदर्भ में प्रा. एल. जी. देशमुख का कहना है , ''लॉर्ड मैकालेचा पाझर सिद्धांत (पर्क्युलेशन थिअरी) अपयशी ठरला म्हणून वूडने सामान्य जनतेच्या शिक्षणासाठी प्रयत्न करण्यावर भर दिला. वूडच्या खलित्यामध्ये सामान्य जनतेच्या शिक्षणासाठी कृतिशील विचार केल्याचे दिसून येते. सर्वसामान्य जनतेला उपयुक्त ठरणारे व्यवहारी व कृतिशील शिक्षण देण्यावर

वूडने भर दिला.''[10] इसप्रकार लॉर्ड मेकाले का शिक्षा में योगदान रहा है। लॉर्ड मेकॉले का पर्क्युलेशन सिद्धांत अयशस्वी होने के उपरांत वूड ने आम जनता के शिक्षा पर बल दिया। वूड के खलिता में आम जनता के शिक्षा के लिए कृतिशील विचार दिखाया देता है। आम आदमी को उपयुक्त होनेवाले व्यवहारी व कृतिशील शिक्षा देने पर वूड ने बल दिया।

1882 में हंटर कमिशन, 1902 में विदयापीठ आयोग, 1907 सैडलर आयोग (कलकत्ता आयोग), 1929 में हस्टाँग समिती, 1936 में वूड रिपोर्ट, 1948 वर्धा शिक्षा योजना (बुनियादी शिक्षा), वर्धा शिक्षा योजना (बुनियादी विश्वविदयालय शिक्षा आयोग 1948) (डॉ. राधाकृष्णन आयोग) 1944 में सार्जेट आदि समिती ने आधुनिक शिक्षा प्रणाली को विकसित करने का प्रयास किया है। उसके उपरान्त मुदलियार आयोग (माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952–53) ने अनेक सूचनाएँ देकर शिक्षा प्रणाली को मजबूत किया है। सन 1964 में कोठारी आयोग ने अनेक सिफारिशे देकर आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सुधार लाया है। उन्होंने राष्ट्रीय जीवन के सभी कार्यक्षेत्र में सशक्त योगदान देनेवाली समतुल्य, एकात्मिक और पूरी शिक्षण योजना का निर्माण किया। उन्होंने सभी स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण सुधारना लाने का कार्य किया है। साथ ही राष्ट्रीय समृद्धि, कल्याण और उत्पादन निवेश के रूप में शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। उन्होंने संपूर्ण शिक्षा क्षेत्र का सर्वेक्षण करके सुधार के लिए प्रयास किया गया और अध्यापक के कल्याण पर ध्यान दिया। शिक्षा मनोवृत्ति और मूल्यों के द्वारा कौशल विकास करते हुए समाज का आधुनिकीकरण करने पर ध्यान दिया।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक शिक्षा के अंमल हेतु अनिवार्य एवं विनाशुल्क (मुफ्त) शिक्षा पर बल दिया गया। उनके अध्यापकीय विकास के लिए और उनका दर्जा बढाने के लिए व्यावसायिक और कौशलधिष्टित प्रशिक्षण का आयोजन किया गया था। सभी वर्ग के छात्रों को समाज अधिकार एवं अवसर पर बल दिया गया था। साथ ही ज्ञान, विज्ञान, संस्कार एवं संशोधन को प्रधानता देकर शिक्षा व्यवस्था से मानव विकास पर बल दिया था। आधुनिक काल में शिक्षा का सार्वत्रिकरण किया था। साथ ही व्यवसाय शिक्षा को प्रधानता दी गयी थी। आज सरकार शिक्षा पर 4.2 प्रतिशत खर्च कर रही है। आज देश में शिक्षा क्षेत्र में संशोधन और प्रशासकीय संस्थाओं का सक्रिय किया जा रहा है। आज शिक्षा तज्ज्ञ लोगों को सरकार शिक्षा के क्षेत्र में अवसर प्रदान कर रही है। इस संदर्भ में प्रा. एल. जी. देशमुख लिखते हैं, ''केंद्र आणि राज्य सरकारच्या शैक्षणिक नियोजनात आणि

प्रशासनात बहुतांशी सनदी अधिकारीच काम करीत असत. अशा शासकीय अधिकाऱ्यांच्या वारंवार बदल्या होतात. त्यामुळे नियोजन केलेल्या बाबींची प्रभावी अंमलबजावणी करण्याच्या वेळी संबंधित अधिकारी बदलून गेलेले असतात. म्हणून शिक्षण सचिव शिक्षण संचालक अशा महत्त्वाच्या पदावर शिक्षणतज्ञांची नेमणूक करावी. त्यांना शैक्षणिक नियोजनात व प्रशासनात काम करण्याची संधी देवून शैक्षणिक कार्यक्रम अधिक यशस्वी करावेत. ज्यामुळे शिक्षणतज्ञाचे मनोधैर्य उंचावेल व कामात आपलेपणाची भावना निर्माण होईल. बदलीची अडचण राहणार नाही त्यामुळे स्थैर्य निर्माण होईल.''[11] केंद्र और राज्य सरकार के शैक्षणिक नियोजन में और प्रशासन में अधिकतर सनदी अधिकारी कार्य करते थे। ऐसे प्रशासकीय अधिकारीयों बार–बार तबादला होता है। इसलिए नियोजन क्रिया कार्य की अंमलबजावणी करते समय अधिकारीयों का होता है। इसलिए शिक्षण सचिव, शिक्षण आयुक्त, शिक्षण संचालक इन महत्त्वपूर्ण पद पर शिक्षा तज्ञों की भर्ती होनी चाहिए। उन्हें शैक्षणिक नियोजन और प्रशासन में कार्य करने का अवसर देकर शैक्षणिक कार्यक्रम अधिक सफल करना चाहिए। इससे शिक्षा तज्ञों का मनोधैर्य बढ़कर कार्य में अपनापन रहेंगा। तबादले की दिक्कत न रहकर स्थैर्य निर्माण हो जाएगा। इसप्रकार सरकार विकास के लिए प्रयास कर रही है । जिसे आलोच्च उपन्यासकारों ने रेखांकित किया है ।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में आधुनिक शिक्षा प्रणाली को उजागर किया है। प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिक शिक्षा के लिए किया संघर्ष चंदन द्वारा सामने आता है । चंदन अनेक समस्याओं के बावजूद एम.ए. की शिक्षा प्राप्त करता है । उसके पास मुम्बई को साक्षात्कार के लिए जाने के लिए पैसे नहीं थे। वह मित्रों से पैसे लेकर मुम्बई जाता है । वहाँ पर लेक्चरर बन जाता है । लेकिन लेक्चरर बनने पर आधुनिक शिक्षा का खोखलापन उसके सामने आ जाता है । कॉलेज की राजनीति, अनुशासनहीन छात्र, मूल्यहीनतावादी अध्यापक आदि से वह परेशान होता है । इसप्रकार आधुनिक शिक्षा–प्रणाली का चित्रण करने में देवेश ठाकुर सफल हो गए हैं । उनके संदर्भ में डॉ. वंदना प्रदीप का कहना है , ''देवेश ठाकुर स्वयं शिक्षाजगत से जुड़े रहे हैं । अत: शिक्षा जगत की विसंगतियों से वे भलीभॉति परिचित हैं । चेतना के विकास में शिक्षा के योगदान से भी वे भलीभाँति परिचित हैं । शिक्षाजगत में निरंतर हो रहा अवमूल्यन तथा आकंठ भ्रष्टाचार में डूबी शिक्षा व्यवस्था के प्रति उपन्यासकार की चिंता स्वाभाविक है।''[12] इसप्रकार आधुनिक शिक्षा प्रणाली में अराजकता फैली हुई है ।

मदन दीक्षित के 'मोरी की ईंट' उपन्यास में आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अभिव्यक्त किया है । भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की शुरुआत ईसाई मिशनरियों के द्वारा हो गई है । प्रस्तुत उपन्यास में ईसापुर के मिशनरी स्कूल का वर्णन आ गया है । वहाँ पढ़ाई–लिखाई, रहन–सहन आदि का सारा खर्च मिशन उठाता है । वहाँ पर मिशन स्कूल में बड़े पादरी जैकब और उसकी पत्नी फ्लोरा की कोई संतान न होने से स्कूल के बच्चों को बड़े प्यार से संभालते हैं। समाजसेवा और शिक्षाप्रसार के नाम पर धर्मप्रसार का कार्य भी ईसाई करते है । इस स्कूल में जैकब और फ्लोरा के पास मंगिया सोहन को रखती है । अत: सोहन को वे डॉक्टर बनाते है। कहने का तात्पर्य है कि परंपरागत भंगी का काम करनेवालों के बेटे आधुनिक शिक्षा प्रणाली से उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं ।

गिरिराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में आधुनिक शिक्षा प्रणाली को दर्शाया है । प्रस्तुत उपन्यास में आई. आई.टी. कानपुर का वर्णन है । इसमें उच्च जाति और निम्न जाति के छात्रों का संघर्ष एवं मतभेद दिखाया है । इस संस्था में उच्च वर्ग के अपमानकारक बर्ताव से निम्नवर्ग का छात्र आत्महत्या का शिकार बनता है । इसप्रकार तथाकथित निम्न जाति के छात्रों के साथ महान शिक्षा संस्थाओं में भी हो रहे दूर्व्यवहार को दर्शाया है । इस भयावह मानसिकता को दर्शाते हुए लेखक गिरीराज किशोर कहते है ''अनुसूचित कोई जाति नहीं मानसिकता है जिसे अभिजात वर्ग परे ढेकेल देता है और वह अनुसूचित हो जाता है ।''[13] इसप्रकार आधुनिक शिक्षा प्रणाली में हो रहे दुर्व्यवहार को इस उपन्यास में चित्रित किया है। कोई भी व्यक्ति अपने समाज का विकास चाहता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली से शिक्षित समाज ही अन्याय का ड़टकर विरोध कर सकता है, 'छप्पर' में चंदन सामाजिक चेतना से और आधुनिक शिक्षा से ओत–प्रोत होकर अपने समाज का उत्थान चाहता है। ''मैं अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दीन–हीन समाज के उत्थान के लिए करूँगा। स्कूल खोलूँगा और इन गरीबों के रेत–मिट्टी में खेलते फिर रहे बच्चों को पढाऊँगा।''[14] इस प्रकार अपने उत्थान के साथ–साथ समाज भी प्रगति पथ पर अग्रेसर बनाने के लिए आधुनिक शिक्षा से प्राप्त ज्ञान, अनुभूतियों के सहारे आगे चलने का प्रयास कर रहा है।

3.3 ग्रामीण शिक्षा प्रणाली :

आज ग्रामीण शिक्षा की ओर ध्यान देना आवश्यक है। शिक्षा बच्चों की अंर्तनिहित शक्तियों का पूर्ण विकास करने के लिए विदयालयीन शिक्षा पर अधिक महत्व देते हैं । हमारी ग्रामीण शिक्षा–व्यवस्था में अनेक समस्याएँ है । आज हम उसे संरचनात्मक दृष्टी से देखकर विभिन्न घटकों पर आधारित संरचनाओं, अध्यापक, छात्रों पाठ्यक्रम, निरिक्षणतंत्र शासन और अभिभावकों से संबंधित विचार करना आवश्यक है। ग्रामीण शिक्षा के लिए अनेक विद्वानों ने योगदान दिया है । इस संदर्भ में सुभाष शर्मा का कहना है , ''ब्रिटिश उपनिवेशवादी शिक्षा मिलने के बावजूद राजा राममोहन राय से लेकर जवाहरलाल नेहरु तक ने समाज की आंतरिक प्रथाओं और बाहरी ताकतों की साजिशों के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजाया था तो ग्रामीण शिक्षा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक या आध्यात्मिक रुप से वंचितों को शक्ति–संपन्न करने का कार्य कई प्रकार से करती है ।''[15] इस प्रकार ग्रामीण शिक्षा के विकास हेतु अनेक विद्वानों ने कार्य किया है ।

ग्रामीण जीवन के विकास में अनेक समस्याएँ हैं। परिणामस्वरूप इससे शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है। आज ग्रामीण भाग के विद्यालय में शौचालय नही होता तो सबसे जादा कठिनाई विदयार्थीनी और शिक्षिकाओं को सहनी पड़ती है । कई महाविदयालयों में बिजली नही होती। पीने के पानी की सुविधा नही होती। कई विद्यालयों में बच्चों को निचे बैठना पड़ता है। विद्यालय में बहुत से बच्चे गरीबी के कारण स्कूल के बाहर होते हैं। रुचि में कमी या घरेलू तनाव के कारण वह पढ़ाई नहीं कर सकते। घर की मजबूरी में पढ़ाई छोड़नी पड़ती है। बडे परिवार के कारण घर के काम करने पड़ते हैं । कई परिवार मे नशा करनेवाले लोग होते हैं। इसके कारण बच्चे गंदी आदतों के शिकार हो जाते हैं ।कई विदयालयों में अधिकारियों द्वारा नियमित निरीक्षण नहीं किया जाता है। पढ़ाई में गुणवत्ता न देखना, आदर्श शिक्षण पाठ प्रस्तुत न करना, विद्यालयों में सुविधाओं का अभाव होता है। इस प्रकार ग्रामीण भाग में छात्रों को शिक्षा प्राप्त करते समय अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

रामधारीसिंह दिवाकर ने 'आग पानी आकाश' उपन्यास में ग्रामीण शिक्षा प्रणाली का चित्रण किया है । इसमें ग्रामीण निम्न वर्ग शिक्षित बनकर विकास की ओर अग्रेसर हो रहा है । लेकिन जब निम्नवर्ग शिक्षित बनकर आगे बढ़ने का प्रयास करता है , तब उच्च वर्ग उनका मजाक उड़ाता है । उन्हें रोकने का प्रयास होता है। उच्च वर्ग की परंपरागत मानसिकता में बदलाव नहीं आ रहा है ।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में चमार बस्ती में स्कूल खुलने का वर्णन है। इससे सब लोग खुश हो जाते हैं। लेकिन ग्रामीण परिवेश के बच्चे अधिकतर काम करके स्कूल जाते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति उन्हें मजबूर करती है। स्कूल की अपेक्षा छात्र कामधंधे में और रोजगार में अधिक ध्यान देते हैं। लेकिन उपन्यास का नायक सुनीत अनेक संकटों के बावजूद पढ़ता है। वह शिक्षा के महत्त्व को समझता है। वह छुट्टियों में बस्ती के बच्चों को पढ़ाता है, जो किसी–न–किसी मजबूरी के कारण स्कूल नहीं जा पाते थे। इसप्रकार आज की ग्रामीण शिक्षा प्रणाली का लेखक ने वर्णन किया है।

जयप्रकाश कर्दम ने 'छप्पर' उपन्यास में ग्रामीण शिक्षा प्रणाली को दर्शाया है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक चंदन पढ़ने के लिए शहर चला जाता है। लेकिन गाँव के परंपरागत शिक्षा पंडित इससे नाराज होते हैं। गाँव में एक भूचाल–सा आ जाता है। परंपरागत ग्रामीण शिक्षा को अपनानेवाले, ब्राह्मण, सेठ, साहुकारों के कान खडे हो जाते हैं। वह चंदन के पिता का अपमान करते हैं। काना, पंडित कहता है, ''तू कितना भी बड़ा हो जा सुक्खा, लेकिन धर्मशास्त्रों से बड़ा नहीं हो सकता। तू अपमान करता है धर्मशास्त्रों का, वेद–वेदांतों का नास्तिक।''[16] इसप्रकार ग्रामीण परंपरागत शिक्षा को अपनाने वाले पंडित निराश होते हैं।

जयप्रकाश कर्दम ने 'छप्पर' उपन्यास में चंदन नामक युवक उच्च शिक्षा के लिए शहर चला जाता है। चंदन निम्न वर्ण के सुक्खा चमार का लड़का है। गाँव के जमींदार हरनाम सिंह ठाकुर की चौपाल पर भरे पंचायत में सुक्खा के लिए अन्यायकारक फैसला लिया जाता है। चंदन की पढ़ाई में बाधा निर्मित करने का प्रयास किया जाता है, ''फैसला हुआ है कि सुक्खा को खेत–क्यार में घुसने न दिया जाये, न उसे किसी डौले–चकंरोड से घास खोदने दी जाये और न उसे लाई–पताई या मजदूरी के लिए बुलाया जाये। अब देखते है कैसे पढाता है सुक्खा अपने बेटे को। ठाकुर हरनाम सिंह और पंडित ने अपनी–अपनी मूछों पर ताव दिया।''[17] इस प्रकार ग्रामीण शिक्षा प्रणाली में जातीयता की उच्च नीच की भावना दिखाई देती है।

3.4 शहरी शिक्षा प्रणाली:

भारत में होनेवाले सामाजिक, राजनितिक और आर्थिक परिवर्तनों में देश की शिक्षा प्रणाली महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है । आज शिक्षा प्रणाली का केंद्रीकरण अधिकतर शहरों में नजर आता है । लेकिन शहरों में शिक्षा व्यवस्था में अधिकतर राजनीतिक हस्तक्षेप नजर आ रहा है । शिक्षा से हर क्षेत्र एवं वर्ग का विकास हुआ, पर छात्र वर्ग में अवांछनीय अनुशासनहीनता नजर आ रही है । आजादी के उपरान्त शिक्षा प्रणाली को विकसित करने का प्रयास किया गया, पर दुर्भाग्य से राजनीतिक लोगों ने शिक्षा का अपने फायदो के लिए उपयोग किया। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह तथ्य स्पष्ट रुप से सामने आ रहा है कि राजनीतिज्ञ शैक्षिक मामलों में भी दखलन्दाजी कर रहे हैं । शिक्षण संस्थाएँ आज राजनीति के अखाडे बने हुए हैं, जहाँ तीन प्रकार की राजनीति चल रही है। एक तो राजनीतिक दलों की राजनीति दूसरे कुछ प्रभावशाली अध्यापकों की अपनी स्वार्थ पूर्ति तथा अपने चेलों भाई–भतीजों को प्रतिष्ठित करने की राजनीति और तीसरे विदयालयों के प्रबन्ध समिति की राजनीति। विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ती में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप रहता है जिससे कैम्पस का वातावरण अनिवार्य रुप से दूषित होता है ।''[18] इसप्रकार शिक्षा प्रणाली में राजनीतिक हस्तक्षेप होकर अराजकता फैली हुई है ।

शिक्षा समाज के लिए उपादेश होती है। समाज की अपेक्षित माँगों की पूर्ति शिक्षा द्वारा ही पूरा किया जा सकता है । आज शहरों में ज्यादातर उच्च शिक्षा दिखाई देती है । उसमें ज्यादातर उच्चवर्ग के लोग शिक्षा प्राप्त करके विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक विषमता को जन्म देते हैं। उच्च शिक्षा ज्यादातर महँगी होने के कारण धनवान व्यक्ति ही उस तक पहुँच सकते हैं । अनेक लोग पैसे के अभाव के कारण योग्यता होनेपर भी शिक्षा लेने से वंचित रह जाते हैं । आज हमारे देश में मुख्यत: शहरों में छात्रों में बढ़ती अनुशासनहीनता अध्यापक वर्ग के लिए ही नहीं बल्कि संपूर्ण देश के लिए सिरदर्द बन गया है । वह प्रवृत्ति निरंतर बढ़ती जा रही है । आज हमारे देश में त्रुटिपूर्ण शिक्षा प्रणाली तक प्रमुख समस्या बन गई है, जिससे छात्रों में असंतोष फैल रहा है । साथ ही आज शहरों में अध्यापक–छात्र सम्बन्ध अमधुर बनते जा रहे हैं । अध्यापक छात्रों पर प्रभाव तभी डाल सकते हैं जब वे उनसे निकट सम्पर्क स्थापित करते है । सम्पर्क होने के उपरांत वे गुण–दोषों से परिचित होते है लेकिन वर्तमानकाल में उनमें एक औपचारिक संबंध ही बाकी होते हैं । इसलिए उनमें मधुर संबंध नहीं

होते हैं। साथ ही आज अध्यापक अपना दायित्त्व पूरी तरह से नहीं निभाते है । वे छात्रों को उचित मार्गदर्शन नहीं करते है । इस कारण शिक्षा–व्यवस्था, दिशाहीन हो गई है । इससे आदर्श छात्र का निर्माण नहीं हो रहा है और वह छात्र बेकारी खाई में गिर रहा है । आज देश की आबादी बढ़ती जा रही है। इस कारण कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक बढ़ रही है। इससे वे अनुशासनहीनता का व्यवहार कर रहे हैं । शिक्षा प्रणाली के लिए 'अर्थ' महत्त्वपूर्ण है। वित्त के बिना शिक्षा का विकास संभव नहीं हैं। उस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''शिक्षा जगत् में उपस्थित विभिन्न समस्याओं का एक कारण आर्थिक भी है । आज के युग में वित्त ही शिक्षा का आधार है। वित्त के बिना शिक्षा का प्रचार, प्रसार एवं विकास असंभव है। प्रजातंत्र की स्थापना के बाद भी हमारे शासकों और नेताओं ने शिक्षा को वह महत्त्व नहीं प्रदान किया है जो प्रजातंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है । यही कारण है कि पंचवार्षिक योजनाओं में आज भी केवल 4.2 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया जा रहा है, जो नगण्य–सा है ।''[19] इसप्रकार आर्थिक कारण से शिक्षा का विकास अधिक मात्रा में नहीं हुआ है । फिर भी शहरों में आधुनिक शिक्षा नीति को अपनाया जा रहा है । जिससे शिक्षा–प्रणाली में सुधार आ रहा है । आज सरकार सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, आर. टी. ई. कानून, सतत सर्वंकष मूल्यांकन जैसे योजनाओं का निर्माण करके छात्रों के विकास के लिए प्रयास कर रही है । अध्यापकों के लिए कार्यशालाओं का, परिसंवादों का आयोजन किया जा रहा है । छात्रों में नैतिक मूल्यों के बढ़ोतरी के लिए प्रयास किए जा रहे हैं । कहना गलत न होगा कि शहरों में शिक्षा प्रणाली अधिक विकसित होती नजर आ रही है ।

तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में शहर के परिवेश में घटित घटनाओं को चित्रित किया है। प्रस्तुत उपन्यास में एक उच्च शिक्षित दलित पीलादास की व्यथा और पीड़ा की कथा है । मध्यप्रदेश लोकसेवा आयोग द्वारा पंजीयक के पद पर चुना गया पीलादास एक साल की सेवांतर्गत ट्रेनिंग के लिए दिल्ली पहुँचता है । वहाँ पर उच्चशिक्षित होने के बावजूद सेठी साहब जैसे शहरी लोग दलितों की घृणा करते हैं। इस उपन्यास से लेखक ने शहरों में अभिव्यक्त व्याप्त सामाजिक स्तरीकरण की पीड़ा को स्पष्ट किया है । उच्च शिक्षित होने के बावजूद और नाम परिवर्तन से जातीय विद्ग्धता नष्ट न होकर अधिक पीड़ादायक बनती है । इस संदर्भ में डॉ. क्षितिज धुमाळ का कहना है , ''उस शहर तक' तेजिंदर का नवीनतम उपन्यास है , जिसमें लेखक ने सामाजिक स्तरीकरण की पीड़ा को मुखरित किया है । नाम परिवर्तन से जातीय विदग्धता की पीडा कम नहीं होती है । लेखक की

मान्यता है कि भारत के लोग यदि अपनी जाति को भूलना भी चाहें तो भी उन्हें भूलने नहीं दिया जाता। बार–बार उन्हें आरक्षण पर आधारित पदों का लालच दिखाकर उन्हें उनकी जाति का स्मरण करा दिया जाता है । निम्न जाति में पैदा हुए उच्च शिक्षित गिरीश कुमार जैसे मेधावी युवक शहरों में अपनी जाति के कारण हीन भावना का शिकार होते है ।''[20] इसप्रकार शहरों की शिक्षा प्रणाली में एवं शहरी व्यवस्था में भेदभाव नजर आता है।

देवेश ठाकुर कृत 'भ्रमभंग' उपन्यास में मुम्बई का चित्रण हुआ है । प्रस्तुत उपन्यास में शहरी छात्रों को पढ़ाई में रुचि नहीं है । वे पाठ्यक्रम की ओर आकृष्ठ नहीं होते है । वे कक्षा में आते नहीं हैं । आते है तो पूरी कक्षा के और अध्यापक को तंग करते हैं । इस वातावरण से अध्यापक निराश हो जाते हैं। साथ ही उपर से ट्रान्सफर की लटकती तलवार सदैव होती है । इन्हें वेतन सही रुप से मिलता नहीं है। लेखक अध्यापकों के बारे में कहते हैं कि, ''जहाँ पाँच साल सर्विस के बाद एक प्रोफेसर को साढे तीन सौ रुपये मिलते हैं वहाँ किसी प्राइवेट कम्पनी में मामूली से क्लर्क को पाँच सौ।''[21] इसप्रकार आज शहरों में शिक्षा प्रणाली का माहौल नजर आता है ।

गिरिराज किशोर द्वारा लिखित'परिशिष्ट' उपन्यास में शहरी शिक्षा प्रणाली को उजागर किया है। प्रस्तुत उपन्यास में कानपूर के आई.आई.टी. का चित्रण आ गया है । शहरों में व्याप्त आई.आई.टी. के अंतर्गत अनुसूचित जाति के संघर्षशील जीवन की त्रासदी को लेखक ने उजागर किया है । इस उपन्यास के पात्र रामउजागर, अनुकूल, निलम्मा आदि शहरों में पढ़ने आते हैं । लेकिन शहरों का उच्च शिक्षित वर्ग उनपर अन्याय करता है। वे छात्र संघर्ष करके आगे बढ़ना चाहते हैं। परंतु परंपरागत शिक्षा व्यवस्था के सम्राट दुर्व्यवहार करते हैं। जिसे उपन्यासकार ने रेखांकित किया है।

3.5 सरकारी शिक्षा प्रणाली:

शिक्षा राज्य का विषय है। संविधान निर्माण समितीने राज्य को उसके क्षेत्र में शिक्षा व्यवस्था करने पर जोर दिया है। हर एक राज्यों ने केंद्र सरकार की शिक्षा योजनाओं का अंमल करने के लिए समन्वय करके अपनी राज्य की समाज की आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए शिक्षा प्रणाली को अपनाया है।

आज सरकार शिक्षा प्रणाली पर बल दे रही है, पर आज अधिक शिक्षा प्रणाली पर अधिक खर्च होना आवश्यक है। 20 दिसम्बर 1977 में सर्वे–भारती की नई तालीम सन्मानित करके राष्ट्रीय शिक्षा कान्फ्रेंस बुलाई गई। उसमें कर्मचारी से लेकर प्रधानमंत्री ने सहभाग लिया। उस क्रान्फ्रेस में निर्णय लिया कि सामाजिक, लाभदायक, उत्पादक कार्यों के द्वारा शिक्षा दी जाए।, 8 साल तक की अनिवार्य शिक्षा हो। सरकारी पब्लिक स्कूलों मे सुधार किया जाए।, सभी अवस्थाओं में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए। भारत में 1977 में प्राइमरी शिक्षा की सर्वव्यापकता के लिए कार्यात्मक समूह स्थापित अनुमान लगाया कि 6 से14 साल के आयु के 432 लाख अतिरिक्त बच्चों को शिक्षा देने की आवश्यकता है । इस उद्देश्य के लिए पाँच साल की वार्षिक योजना में 90 लाख रुपयों की माँग रखने की सिफारिश करके उसमें कमजोर तथा निर्धन परिवारों के बच्चों की शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाने पर बल दिया गया है।

आज एक आदर्श और सक्षम नागरिक बनाने के लिए सरकार को ठोस कदम उठाने होंगे, तभी देश प्रगति की राह पर चल सकता है। भारत में एक राष्ट्रीय सेवा स्वयंसेवक योजना (N.S.S.)1977 में आरम्भ की गई। उसके माध्यम से शिक्षा कार्यक्रम की कार्यशीलता पर बहुत जोर दिया गया। शिक्षा राष्ट्रीय सेवा स्वयंसेवक चेतना संघ के रुप में अपना संगठन बना कर काम कर रहे हैं। यह संघ विद्यार्थियों को ज्ञान, विकास, वाद, विवाद, विचार, विमर्शन और कार्यशीलता के अवसर प्रदान कर रहे हैं।

गिरिराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास में सरकारी शिक्षा प्रणाली नजर आती है । सरकार बुद्धिमान युवक निर्माण होने के लिए आई.आई.टी. का निर्माण करती है । प्रस्तुत उपन्यास में कानपुर के आई.आई.टी. का चित्रण हुआ है । सरकार विकास के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करती है । पर इस आई.आई.टी. में अध्यापक एवं प्रशासन वर्ग भेदाभेद करता है । दलित वर्ग का शोषण करते है उनपर अन्याय करते है । प्रस्तुत उपन्यास का राम उजागर इसका शिकार बनता है । इसप्रकार सरकारी शिक्षा प्रणाली में अराजकता फैली हुई है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में शहरी शिक्षा प्रणाली नजर आती है। मेरठ शहर के रामलाल नेता है । वह सरकारी सभी सुविधा अपने इलाके में देने का प्रयास करता है। वह बस्ती में स्कूल शुरु कर देता है। वह लोगों में जागृति लाता है। छात्रों को स्कूल जाने के लिए प्रेरित

करता है। अध्यापक को छात्रों के साथ अच्छा व्यवहार करने एवं सहानुभूति दिखाने की सलाह देता है। इसप्रकार सरकारी शिक्षा प्रणाली भारत में दिखाई देती है ।

तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में शहरी माहौल को दर्शाया है । प्रस्तुत उपन्यास में दिल्ली के वातावरण का चित्रण आ गया है । गिरीशकुमार उच्च शिक्षा प्राप्त करके लोकसेवा आयोग के माध्यम से अधिकारी बनता है । लेकिन दिल्ली जैसे शहर में उसे अपमान का सामना करना पड़ता है । डॉ. क्षितिज धुमाळ इस संदर्भ में कहते है, ''तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में एक उच्च शिक्षित दलित युवक पीलादास चमार की व्यथा कथावस्तु के केंद्र में है । मध्यप्रदेश लोकसेवा आयोग द्वारा पंजीयक पद के लिए चुने गए पीलादास (गिरीशकुमार) को एक साल की ट्रेनिंग के दौरान दिल्ली में जातीय भेदाभेद के कारण आए अनुभवों पर आधारित इस उपन्यास की कथावस्तु की नींव खड़ी है ।''[22] इसप्रकार शहरी एवं सरकारी वास्तविकता को लेखक ने उजागर किया है ।

3.6 प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्रणाली :

आज सरकार के प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर बल देना आवश्यक है , उसके और देश का विकास संभव नहीं है। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में बालकों की समस्याओं को महत्त्व दिया है । सबसे बड़ी समस्या यह है कि, पाठशालाओं मे बच्चों के प्राथमिक सामग्री का अभाव है। उदा. खेल मैदान, बैंच, पानी व्यवस्था आदि। छोटे बच्चों का खेलकूद के प्रति रुचि स्वाभाविक है। खेलकूद की वजह से बालकों को पाठशाला में नियमित रुप से उपस्थित रहने की प्रेरणा मिलती है। इसलिए मैदान होना आवश्यक है। खेलकूद के बाद साथ मनोरंजन का स्थान आता है। उन्हें चरित्र की शिक्षा रंगमंच के माध्यम से ही दी जानी चाहिए, पर अब पाठशालाओं मे रंगमंच तो क्या ट्रांजिस्टर भी उपलब्ध नहीं होता है । इसी वजह से छोटे बच्चों को पाठशाला के प्रति आकर्षण नहीं होता। पाठ्यक्रम उनके लिए नीरस और बोझिल है। इस पाठ्यक्रम को आकर्षक बनाने के लिए अध्यापक को अपनी कलात्मकता से नीरस विषय को सरस बनाना चाहिए।

आज अनेक जगहों पर बालकों को रोजगार करना पड़ रहा है। इसलिए अनेक समस्याओं का निर्माण हो गया है। आज माता–पिता बच्चों को पढ़ाने के बजाय मजदूरी के लिए भी भेजते हैं । जिससे वे बच्चें अक्षर–ज्ञान से भी वंचित हो जाते हैं। माता–पिता, बच्चों के भी कई समस्याएँ रहती हैं।

मँहगाई के जमाने में घर का खर्च उठाने के साथ बालकों के लिए आवश्यक पुस्तकें, पाठ्य–सामग्री, पोषाख और फीस जमा करना मुश्कील हो जाता है । आज अध्यापकों को भी बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है । ग्रामीण भागों में जाने पर आवास की समस्या सुलझानी पड़ती है । आवास की अच्छी व्यवस्था न होनेपर परिवार के सदस्यों की तबीयत बिगड़ जाती है । जब उन्हें स्वास्थ–सुविधा भी उपलब्ध नहीं होती है तब वे परेशान हो जाते है। उनके स्वास्थ, मनोरंजन के लिए लायब्ररी तक नहीं होती है। इसलिए वह शहर के नजदीक स्थानांन्तरण करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं । शाला और भवनों की तो कठीन परिस्थिति होती है । वहाँ अध्यापकों को ही मरम्मत और सफाई का काम करना पड़ता है । इसलिए आज प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर समस्याओं का सामना करना पड़ता है ।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए ठोस निर्णय लेने की आवश्यकता है। आज अनेक योजनाओं को कार्यान्वित करके विकास में योगदान देना आवश्यक है। शासन की भी अनेक समस्याएँ दिखाई देती हैं। वह शिक्षा के सार्वत्रिकीकरण के लिए कटिबद्ध होने पर भी धन के अभाव के कारण कही संख्या में अध्यापकों का पदांकन, शाला–भवनों का निर्माण, शिक्षा के लिए उपयुक्त उपकरणों का प्रयोग आदि महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर पाते हैं । आगमन की असुविधा के कारण ग्रामीण पाठशालाओं का निरीक्षण अत्यंत कठीन हो जाता है । छोटे–छोटे ग्रामीण भागों में आवश्यक उपकरण और अध्यापकों के अभाव में पचास–साठ छात्रों को पढ़ाने–लिखाने का काम एक ही अध्यापक करता है , जब वह विदयार्थी भिन्न–भिन्न कक्षा के होतें हैं । ऐसी स्थिति में पाठशालाओं में अध्ययन–अध्यापन को कार्य की कैसी अपेक्षा की जा सकती है । छात्रों के लिए खेल–कूद, मनोरंजन, स्वास्थ्य तथा अन्य उपकरणों की सुविधा का ठिकाणा नहीं होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है प्राथमिक शिक्षा की प्रचलित व्यवस्था द्वारा निश्चित लक्ष्य की प्राप्त करना मुश्कील है। इसलिए वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन करके जो सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, आर. टी. ई. कानून के द्वारा बताए गये योजनाओं का स्वीकार समाज और सरकार द्वारा होना जरूरी है। इस प्रकार मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्रणाली को दर्शाया है । प्रस्तुत उपन्यास में दलित समाज के अज्ञान का चित्रण किया है । परंपरा से इस समाज को शिक्षा से दूर रखा गया था। लेकिन वर्तमानकाल में शिक्षा के द्वार सबके लिए खोले गए। इस उपन्यास का पात्र रामलाल दलित बस्ती में प्राथमिक स्कूल शुरु करता है । ज्ञान

की गंगा उनतक पहुँचाने का प्रयास करता है । वह बस्ती में स्कूल की व्यवस्था करता है । अध्यापक को नियुक्त करके छात्रों को शिक्षा लेने के लिए प्रेरित करता है । रामलाल उपन्यास का नायक बंसी के बेटे सुमीत को कहता है , ''चल बेटे तेरे पिता ने इतना अच्छा नाम रख दिया अब तू भी पढ़–लिखकर अच्छा बनना।''[23] इसप्रकार रामलाल शिक्षा लेने के लिए प्रेरित करता है ।

रामधारीसिंह दिवाकर कृत 'आग पानी आकाश' उपन्यास में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्रणाली को दर्शाया है । इसमें आजादी के बाद बदली हुई शिक्षा प्रणाली का चित्रण आ गया है । साथ ही सरकार की विकासनीति से शिक्षा के प्रति जागृति निर्माण हो गई हैं। उस उपन्यास के युगेश्वर और भागवत बाबू शिक्षा के प्रति सजग दिखाई देते हैं । परंपरागत मानसिकता रखनेवाले उनकी शिक्षा का विरोध करते हैं , उनपर अन्याय करते हैं फिर भी दोनों शिक्षा के प्रति जागृत दिखाई देते हैं । वे प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा अच्छे अंकों से पास होते है। युगेश्वर तो उच्च शिक्षा भी लेता है और लोकसेवा आयोग के माध्यम से अधिकारी बनता है । इसप्रकार शिक्षा के प्रति जागरुकता नजर आती है ।

मदन दीक्षित द्वारा लिखित 'मोरी की ईंट' उपन्यास में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का चित्रण हुआ है । प्रस्तुत उपन्यास में ईसापूर के मिशनरी स्कूल का वर्णन आ गया है । मंगिया सोहन को लेकर ईसापूर के मिशनरी स्कूल में लेकर चली जाती है । वहाँ के स्कूल का वर्णन लेखक ने किया है । उस मिशनरी स्कूल में प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूल की शिक्षा दी जाती है । उस स्कूल में अध्यापक जैकब और फ्लोरा दोन्हों पति–पत्नी छात्रों को बेटे जैसे पालते हैं । साथ ही वहाँ मुफ्त में शिक्षा की व्यवस्था है और रहने, खाने के साथ–साथ कपड़े, पाठशाला सामग्री मुफ्त में मिलता है ।

3.7 उच्च शिक्षा प्रणाली :

आज उच्च शिक्षा–प्रणाली अज्ञात दिशा की ओर जाती हुई नजर आती है । वर्तमानकाल में भ्रष्टाचार ने शिक्षा क्षेत्र को दलदल में ढकेल दिया है । परिणामस्वरुप शिक्षा क्षेत्र में अराजक स्थिति निर्माण हो गई है । उच्च शिक्षा प्रणाली में अयोग्य व्यक्ति को प्रधानता मिल रही है । सिलेक्शन कमिटी में ही अयोग्य व्यक्ति होने के कारण शिक्षा क्षेत्र में अशांति फैली हुई है । सिलेक्शन करते समय अपना नजदिकी आदमी लिया जाता है । साथ ही 'अर्थ' पूर्ण घटनाएँ होती रहती हैं । आज

सरकार भी अध्यापकों का वेतन सही समय पर नहीं करती है । इस कारण उनके सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं । साथ ही उच्च अधिकारी, प्राचार्य, संस्था अध्यक्ष, अध्यापकों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं । अध्यापकों को अपमान सहना पड़ता है । अध्यापन का काम छोड़कर दूसरे काम करने पड़ते हैं । इस कारण अध्यापकों की स्थिति भयावह बन गई है । उनके प्रति आदर नहीं दिखाई देता है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''आज कतिपय विद्यालयों एवं कालेजों के अध्यापकों की स्थिति भयावह हो गई है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के कारण आज अध्यापक को कहीं भी वह आदर प्राप्त नहीं होता जो प्राचीन काल में होता था। आज का शिक्षक समाज का वह प्रताड़ित प्राणी है जो दर–दर भटक रहा है । अपनी स्थिति सुधारने तथा अपनी समस्याओं का सही समाधान पाने का उसे कोई रास्ता ही नजर नहीं आ रहा है । फलत: हो रहे दुर्व्यवहार, अन्याय, अत्याचार को सहकार भी कुछ नहीं कर पाना उसकी नियति है ।''[24] इसप्रकार शिक्षा प्रणाली में अराजकता फैली हुई है ।

वर्तमान परिवेश में हम देखते है कि अध्यापकों में आपसी संबंध ठिक नहीं होते हैं । एक–दूसरे के प्रति अनादर करते हैं और एक–दूसरे के व्यक्तित्व एवं चरित्र पर किचड़ उछालते रहते हैं । इसकारण अध्यापकों के साथ–साथ ऐसी बातें सुनकर छात्र भी उदासीन होता नजर आता है । लेकिन कुछ अध्यापक विद्वान, प्रतिभाशाली, मेहनती और अपने कर्तव्य के प्रति इमानदार नजर आता है । आज शिक्षा व्यवस्था में इन इमानदार अध्यापकों को अनेक समस्याओं सामना करना पड़ता है । कुछ अध्यापक इन ईमानदार अध्यापकों को परेशान करते हैं, उनके प्रति ईर्ष्या भाव रखते हैं, उसे हर समय परेशान करते रहते हैं। वे अपनी अयोग्यता को छुपाने के लिए प्रयास करते हैं । वे गलत बातों के लिए मोर्चा बाँधते हैं । इसलिए उच्च शिक्षा बदनाम होती जा रही है । उच्च शिक्षा अनियंत्रित होकर अराजकता फैली है ।

परंपरा से गुरु शिष्य का नाता आदर्शरत रहा है, लेकिन वर्तमान काल में अध्यापक एवं छात्रों में वह आत्मियता नहीं दिखाई देती है । इसमें कभी अध्यापक छात्रों के साथ दुर्व्यवहार करते नजर आते हैं तो कभी छात्र अध्यापकों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं। आज उच्च शिक्षा–व्यवस्था में अध्यापक पढ़ाने में उदासीन नजर आते हैं । वास्तव में अध्यापकों का दायित्व है कि समाज का निर्माण करना लेकिन अध्यापक अपना दायित्त्व न अपनाकर सदैव निराश, उदासीन नजर आता है । आज उच्च शिक्षा में छात्रवृत्ति और फीस माफी की व्यवस्था है लेकिन वह छात्रवृत्ति सही समय पर

और योग्य नहीं मिलती है । इस छात्रवृत्ति में दलित छात्रों पर अन्याय होता है। कॉलेज में उनके साथ भेदभाव किया जाता है। छात्रावास में उन पर अन्याय होता है।

आज उच्च शिक्षा प्रणाली में छात्र दिशाहीन होते नजर आते हैं । छात्र अध्यापन करने के बजाय मौज–मजा में समय गवाँ रहे हैं । इससे समाज दिशाहीन होकर उसका सांस्कृतिक पतन हो रहा है । छात्र नैतिकता का विरोध करके अनैतिकता, अनाचार, भ्रष्टाचार गलत बातों में उलझकर अपना जीवन नरकीय बना रहे है । इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''आज कई छात्र–छात्राएँ समाज के रीति–रिवाजों को नहीं मान रहे हैं । वे जीवन में हर चीज देखना चाहते हैं । उसका मजा लेना चाहते है । आज के कतिपय छात्र मादक द्रव्यों के सेवन का आनंद उठाना चाहते हैं। वे समाज के बंधनों को तोड़कर स्वच्छंद जीवन जीने की अभिलाषा रखते हैं । विदेशी सभ्यता अपनाने की इच्छा के कारण कुछ छात्र यह भूल जाते हैं कि वे अपनी जिंदगी बरबाद कर रहे हैं ।''[25] इसप्रकार उच्च शिक्षा प्रणाली अराजकता फैली हुई है ।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में उच्च शिक्षा प्रणाली का चित्रण आ गया है । आज उच्चशिक्षा प्रणाली में सच्चे, मेहनती, लगन और योग्य आदमी को कोई नहीं पूछता है । आज जो आदमी उच्च पदस्थ व्यक्ति की चापूलसी करके काम करता है , उसी का सिक्का आज चलता है । भले वह आदमी अयोग्य, कामचोर, झूठा हो लेकिन उसे महत्त्व आता है । प्रस्तुत उपन्यास में चंदन मुम्बई कॉलेज में नौकरी प्राप्त करता है । वहाँ देखता है कि अध्यापकों को पढ़ाई में रुचि नहीं है । वे सिर्फ समय काटकर तनखाह लेकर खुश हो जाते हैं । साथ ही जो अध्यापक अध्यक्ष की वाह–वाह करता है और उच्च अधिकारी का चमचा बनता है उसी को महत्त्व प्राप्त होता है । अध्यापक स्वाभिमानपूर्वक जी नहीं सकता है । इस संदर्भ में नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''यहाँ विभागाध्यक्षों की शान किसी राजा–महाराज' से कम नहीं है । उनके ज्युनियरों को कम–से–कम परमनन्ट होने तक बेगार ढोनी पड़ती है । अध्यक्ष महोदय का ग्रंथ छप रहा है – प्रूफ पढो। अध्यक्ष महोदय की किसी सेठ के साथ मित्रता है तो सेठजी का भाषण लिखकर दो। अपने आपको प्रतिभाशाली मानोगे तो पीट दिए जाओंगे। बस चमचे बने रहो। चमचे बनना ज्यूनियरों की नियति है । इस व्यवस्था में रहना है तो चमचा बनना ही पड़ेगा। अपनी सर्व्हिस बनाये रखने के लिए गलत और भद्दी बातों पर भी वाह–वाह करनी होगी।''[26] इसप्रकार उच्च शिक्षा व्यवस्था दिशाहीन हो गई है ।

गिरिराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में उच्चशिक्षा प्रणाली नजर आती है। प्रस्तुत उपन्यास में आई.आई.टी. कानपूर का वर्णन आ गया है। इस आई.आई.टी. में अनेक छात्र इंजिनियर बनने के लिए आते हैं। इसकी उच्च शिक्षा संस्था की वास्तविकता को लेखक ने उजागर किया है। इस संस्था में अनेक अपेक्षाएँ लेकर छात्र आते हैं। उनकी जे.ई.ई. (Joint Extrance Examination) पास होते हैं पर वहाँ आने पर छात्रों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यहाँ के अध्यापक वर्ग की मानसिकता अलग होती है। प्रशासन एवं अध्यापक भेदभाव करते नजर आते हैं। साथ ही उच्च जाति के छात्र निम्न जाति के छात्रों का शोषण करते हैं। इसका यथार्थ वर्णन लेखक ने किया है।

रामधारीसिंह दिवाकर के 'आग पानी आकाश' में उच्च शिक्षा प्रणाली का वर्णन आ गया है। प्रस्तुत उपन्यास में बब्बन धोबी के लड़के उच्च शिक्षा प्राप्त करने शहर जाते हैं। युगेश्वर छात्रावास में रहकर पढ़ाई करता है। लेकिन उच्च वर्ग के छात्र युगेश्वर को परेशान करते हैं। उसे अछूत मानकर सताया जाता है। अन्त में अध्ययन के लिए छात्रावास छोड़कर हरिजन लॉज पर रहने के लिए आता है। वह बडी के मेहनत करके अध्ययन करता है। वह परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करके उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। इसप्रकार उच्च शिक्षा प्रणाली में भेदाभेद नजर आता है, फिर छात्र मेहनत करके अच्छे अंक प्राप्त कर रहे हैं।

जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित 'छप्पर' उपन्यास में उच्च शिक्षा प्रणाली का वर्णन आ गया है। सुक्खा का इकलौता लड़का चंदन उच्च शिक्षा ग्रहण करने हेतू शहर चल जाता है। गाँव जमींदार को यह बात अच्छी नहीं लगती। चंदन को वापिस गाँव बुलाने के लिए सुक्खा को कहा जाता है। परंतु सुक्खा चंदन को उच्च शिक्षा देने की इच्छा रखता है। उसे बड़े अफसर के पेशे में देखना चाहता है। इसलिए जमींदार ठाकुर को विनयतापूर्वक कहता है, ''आप माई–बाप है मालिक! आपका दिया खाते हैं। आपका सलाम हर समय आपकी ताबेदारी में हाजिर है। पर बेटा नहीं माना जिद कर बैठा आगे पढ़ने को और शहर चला गया है।''[27] इससे स्पष्ट है कि दलित समाज में भी अब उच्च शिक्षा के प्रति आकर्षण दिखाई देता है।

3.8 वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उदात्त दृष्टि का अभाव :

प्राचीन भारत पर गौर करने पर तथ्य हमारे सामने आ जाते हैं कि तत्कालीन विश्व की अन्य देशों की तुलना में शिक्षा संदर्भ में भारत का ऊँचा स्थान था। लेकिन वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उदात्त दृष्टि का अभाव नजर आता है । दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली से छात्रों का चरित्र निर्माण नहीं हो रहा है और वे व्यावसायिक शिक्षा के साथ–साथ विकास में पिछड़ रहे हैं । इस संदर्भ में डॉ. गार्गीशरण मिश्रा का कहना है, ''ब्रिटिश काल का कक्षा 10 वीं का छात्र जो विषय ज्ञान रखता है या वह आज का बी.ए. पास छात्र नहीं रखता। सामान्यज्ञान में तो वह बहुत पीछे है । दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था के कारण हम न तो उसका चरित्र सुधार पाए और न उसे व्यावसायिक दृष्टि से कुशल बना पाए।''[28] इसप्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणली दिशाहीन हो गई है ।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में हमारे देश के सामने कोई स्पष्ट और निश्चित उद्देश्य नहीं दिखाई देता है । आज पदवी प्राप्त करने का उद्देश्य ज्ञानार्जन न होकर जीविकोपार्जन के लिए अधिक किया जाता है। भारत की एक प्रमुख समस्या जनसंख्या विस्फोट है। इसप्रकार शिक्षा जगत् पर इसका अधिक प्रभाव पड़ रहा है । कक्षा में अधिक संख्या के कारण छात्र शिक्षा पर ध्यान नहीं देते हैं और अध्यापक भी छात्रों पर ध्यान नहीं दे पाता है । साथ ही आज शिक्षा जगत में स्वार्थांध:, भष्टाचार, भाई–भतीजावाद, राजनैतिक दबाव आदि के कारण अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति की जाती है, परिणामस्वरुप शिक्षा स्तर में गिरावट आ रही है । आज शिक्षा क्षेत्र छात्रों के जीवनोपयोगी पाठ्यक्रम न हाकर बोझील एवं गलत पाठ्यक्रमों का प्रयोग किया जाता है । इस कारण इस बोझिल पाठ्यक्रम से छात्र शिक्षा लेने में अधिक रुचि नहीं ले रहे हैं । आज छात्र शिक्षा क्षेत्र में राजनीतिक लोग हस्तक्षेप कर रहे है, जिससे छात्रों में अनुशासनहीनता बढ़ रही है ।

आज महाविद्यालयों में हम देखते हैं कि छात्रों को उनकी क्षमता, रुचि एवं परिस्थिति के अनुरुप विषय न देकर अन्याय किया जाता है । आज छात्र सिर्फ परीक्षा उत्तीर्ण होने के लिए पढ़ते है । जिससे शिक्षा क्षेत्र में उदात्त दृष्टि निर्माण न होकर शिक्षा स्तर में गिरावट आ रही है । इस संदर्भ में डॉ. गार्गीशरण मिश्र का कहना है, ''हमारी शिक्षा व्यवस्था में छात्रों एवं शिक्षकों का मूल्यांकन वार्षिक परीक्षा में प्राप्तांकों के आधार पर किया जाता है । फलत: छात्र वर्ष भर पढ़ने के बजाय सत्र के अंतिम दो तीन महिनों में पढ़ाई करते हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षा के स्तर में गिरावट आना स्वाभाविक

है क्योंकि छात्र विषय को भलीभांति समझे बिना रटकर परीक्षा पास करने का प्रयास करते हैं । कुछ छात्र तो केवल नकल या अनुचित साधनों का सहारा लेकर वार्षिक परीक्षा पास करने हेतू प्रयत्नशील रहते हैं । शिक्षा के स्तर में गिरावट का यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारण है ।''[29] इसप्रकार उदात्त दृष्टि के अभाव के कारण शिक्षा क्षेत्र में गिरावट आ रही है ।

आज सरकार भी गुणात्मक सुधार की ओर ध्यान नहीं दे रही है । वह सिर्फ परिणामस्वरुप सुधार की ओर ध्यान दे रही है । साथ ही आज व्यावहारिक शिक्षा की अपेक्षा सैद्धांतिक शिक्षा पर अधिक बल दिया जा रहा है । आज शिक्षा जगत् की भर्ती प्रक्रिया में सही मापदंड लगाकर योग्य व्यक्ति की नियुक्ति होनी चाहिए। आज छात्र के सामने जीवन उपयोगी पाठ्यक्रम रखकर प्रभावशाली शिक्षा देना आवश्यक है । साथ ही उन्हें अनेक कार्यक्रमों के लिए प्रोत्साहित करके उनके गुणों को अवसर देना चाहिए। हम छात्रों के सामने उदात्त दृष्टि रखेंगे तो छात्र जीवन में यशस्वी हो सकता है । अन्यथा उनका विकास न होने पर देश पतनोन्मुख की ओर जाकर देश का विकास नहीं हो पाएगा। आज शिक्षा जगत् में उदात्त दृष्टि का अभाव यह चिंतन का ही नहीं, बल्कि चिंता का विषय बन गया है । इसे हिंदी उपन्यासकारों ने रेखांकित किया है।

चंद्रमोहन प्रधान द्वारा लिखित 'एकलव्य' उपन्यास में शिक्षा प्रणाली में उदात्त दृष्टि का अभाव नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास से स्पष्ट होता है कि शिक्षा प्रणाली में भेदाभेद है । शिक्षा की प्रणाली सिर्फ उच्च वर्ग के लिए थी। निम्न वर्ग शिक्षा प्रणाली से काफी दूर था। इस उपन्यास में आचार्य द्रोण भेदाभेद करता नजर आते है । वह एकलव्य को शिक्षा देने से इन्कार करते हैं । वह सिर्फ राजकुमारों को शिक्षा देते हैं । वह अर्जुन को श्रेष्ठ धनुर्धर बनाने चाहते हैं । जब एकलव्य स्वयंअध्ययन करके श्रेष्ठ धनुर्धर बनता है , तब आचार्य द्रोण षड़यंत्र करके एकलव्य का दाहिने हाथ का अंगुष्ठ काटकर लेते हैं । आचार्य द्रोण द्वारा एकलव्य को परंपरा का बली बनाया जाता है । इसप्रकार शिक्षा प्रणाली में भेदभाव करने से इसमें उदात्त दृष्टि का अभाव नजर आता है ।

देवेश ठाकुर रचित 'भ्रमभंग' उपन्यास में शिक्षा प्रणाली में उदात्त दृष्टि का अभाव नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास में मुम्बई के एक सरकारी कॉलेज का वर्णन आ गया है । कॉलेज में छात्रों को अच्छी पढ़ाई करके शिक्षा में रुचि लेनी चाहिए। अध्यापकों को छात्रों में उदात्त दृष्टि के लिए प्रेरित करना चाहिए। पर इस कॉलेज में छात्र पढ़ाई में रुचि नहीं लेते हैं। वे कॉलेज में असभ्य व्यवहार करते हैं । वे कॉलेज में कम और बाहर अधिक नजर आते हैं । अध्यापक छात्रों के साथ–

साथ समाज निर्माण का काम करते हैं । लेकिन इस कॉलेज में अध्यापक कामचोर हैं । लेक्चर नहीं लेते, छात्रों को दिशाहीन करते हैं । अध्यापकों में एक–दूसरे के प्रति भेदभाव है । वे कॉलेज में पढ़ाने के अपेक्षा मजा करते बैठते हैं । प्रस्तुत उपन्यास के प्रोफेसर बोरा, प्रोफेसर त्रिपाठी आदि इसके उदाहरण है । इस संदर्भ में देवेश ठाकुर का कहना है, ''प्रोफेसर बोरा जैसे अध्ययन–अध्यापन विरोधी अध्यापक फ्रेंच के प्रोफेसर हैं । कॉलेज में फ्रेंच नहीं है अत: अंग्रेजी पढ़ाते हैं । गुजराती, अंग्रेजी। सब चलता है । प्रोफेसर त्रिवेदी क्लास में जोक शूट करता है । यही उसकी योग्यता है । अंग्रेजी बोलता है – 'व्हेन एवर आई गोज टू दी क्लास देयर पिन्स ड्राप्स साइलेंस' क्यों न हो? लड़के उनके पीरियड मे एकॉनामिक्स पढ़ने नहीं गुजराती के जोक्स सुनने आते है।''[30] इसप्रकार शिक्षा प्रणाली में उदात्त दृष्टि का अभाव नजर आता है ।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में शिक्षा के प्रणाली में उदात्त दृष्टि का अभाव नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास से स्पष्ट होता है कि उपन्यास का नायक बंसी शिक्षा का महत्त्व समझता है । वह अपने बेटी सुनीत को पढ़ाना चाहता है । सुनीत जिस स्कूल में जाता है , वहाँ जातियता के दंश उसे भोगने पड़ते हैं । उसे जाति के नाम पर जलील किया जाता है । अध्यापक भी उस पर अन्याय करते हैं । अध्यापक पाण्डे भी जातियता के नाम पर जलील करता है । वह कहता है , ''समझ गया बच्चू समझ गया, चमारों के स्कूल से आए हो यही ना।''[31] इसप्रकार शिक्षा प्रणाली में उदात्त दृष्टि का अभाव नजर आता है ।

जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित 'छप्पर' उपन्यास में ठाकुर साहब और इकलौती पुत्री रजनी में शैक्षिक वैचारिक भिन्नता का चित्रण हुआ है। ठाकुर साहब की मान्यता है कि, '' यदि हरिजन लोग पढ़–लिखकर ऊँचे ओहदों तक पहुँचने लगेंगे तो हमारी श्रेष्ठता कहाँ रह जाएगी। यदि ये सब स्वावलम्बन और स्वाभिमान का जीवन जीने लगेंगे तो फिर हमारा वर्चस्व किस पर रहेंगे।''[32] इस प्रकार ठाकुर साहब में शिक्षा प्रणाली में उदात्य दृष्टि का अभाव नजर आता है।

जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित 'छप्पर' उपन्यासकार का ध्यान गया है जिसे उसने दलित–वर्ग के तीन युवकों की बातचीत के माध्यम से शिक्षा प्रणाली का उपयोग उदात्त दृष्टि से समाज के उत्थान के लिए करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में उदात्त दृष्टि का अभाव नजर नहीं आता है। चंदन का मत है कि संघर्ष करते हुए दलित–वर्ग के लोगों को शिक्षित लोगों से आर्थिक, प्रशासकीय और कानूनी मद्द की जरूरत होगी। इससे उसके वर्ग के सभी सहपाठी सहमत होते हुए अपना–अपना

दृष्टिकोण स्पष्ट करते हैं जो अपने आप में संकल्प है। रामहेत ने कहा, '' मैं बिजनेस करूँगा और अधिक से अधिक पैसा कमाऊँगा लेकिन अपने परिवार की आजीविका को छोड़कर सारा पैसा अपने समाज के उत्थान के कामों में लगाऊँगा।'' नंदलाल ने कहा, मैं वकालत ही करुँगा और अत्याचार के मुकदमें मुफ्त लडूँगा। '' रतन ने कहा, प्रशासनिक स्तर पर लोगों की जिस मद्द की जरूरत होगी उसके लिए मैं सदैव तत्पर रहुँगा। और चंदन ने कहा, मैं अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दीन–हीन समाज के उत्थान के लिए करूँगा, जो कीड़े–मकोड़ों की तरह जीते हैं– शेष समाज जिनके साथ पशुवत व्यवहार करता है, उनको पास नहीं बिठाता उनसे घृणा करता है।''[33] इस प्रकार उपन्यासकार शिक्षा का उपयोग सामाजिक न्याय तथा सत्ता और शासन में दलितों की भागीदारी सुनिश्चित करके शिक्षा प्रणाली का उदात्त दृष्टिकोण तीन युवकों के द्वारा समाज के सामने लाने का प्रयास दिखाई देता है।

3.9 शिक्षा प्रणाली में बढ़ती विसंगतियाँ :

वर्तमान काल में शिक्षा प्रणाली में विसंगति बढ़ रही है। इसलिए छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए आदर्श शिक्षा प्रणाली तैयार करना आवश्यक है। प्राचीन भारत में शिक्षा का स्तर विश्व के अन्य देशों की तुलना में बहुत ऊँचा था। उस काल में छात्र के सर्वांगीण विकास के साथ–साथ धर्म और दर्शन का विशेष ज्ञान एवं चरित्र निर्माण पर बल दिया जाता था। मध्यकाल में मुस्लिम शासकों ने शिक्षा की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। ब्रिटिश काल में शिक्षा का संख्यात्मक विकास के साथ गुणात्मक विकास हो सका। ब्रिटिश काल का 10 वी कक्षा पास लड़का जो विषय ज्ञान रखता है वह आज कल बी.ए. पास छात्र नहीं रखते है। आज हमारे देश में शिक्षा का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं दिखाई देता है । वार्षिक परीक्षा पास करना ही हमारी शिक्षा का उद्देश है । फिर कम परिश्रम में छात्र डिग्री प्राप्त करने में सफल होने से शिक्षा का स्तर लगातार गिर रहा है । आज डिग्रियाँ भी ज्ञानार्जन के लिए कम जीविकोपार्जन के लिए अधिक प्राप्त की जा रही है । हर कक्षा मे 25–30 छात्रों से अधिक छात्र नहीं होने चाहिए अन्यथा न छात्र पढ़ाई पर लक्ष्य केंद्रित करता है न तो अध्यापक व्यक्तिगत ध्यान दे पाते हैं । आज भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, राजनैतिक दबाव, अयोग्य नियुक्ति के कारण शिक्षा का स्तर गिरने लगा है । प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति हो जाने पर शिक्षा क्षेत्र का विकास हो

सकता है । आज पाठ्यक्रम बोझिल और जीवन में उपयुक्त नहीं है इसी कारण भी शिक्षा का स्तर गिर रहा है । बोझिल पाठ्यक्रम में छात्रों की रुचि, आवश्यकता आदि का ध्यान नहीं रखा जाता है।

आज छात्र गलत संस्कारों के कारण दिशाहीन हो गया है। परिणामस्वरूप गुणात्मक सुधार न होकर राष्ट्र का नुकसान हो रहा है। आज साथ ही राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक कारणों से शिक्षा क्षेत्र के छात्रों में असंतोष और अनुशासनहीनता कायम बढ़ने से शिक्षा का स्तर गिर रहा है । परिवार के अनुचित दबाव, संस्थाओं मे दोषपूर्ण चयन प्रक्रिया के कारण छात्रों को रुचि के विपरीत विषयों का चयन करने से शिक्षा का स्तर गिर रहा है। भाषा ज्ञान अन्य विषयों के ज्ञान का आधार बनता है। परंतु छात्र किसी भी भाषा पर प्रभुत्व करने में असफल हो रहे हैं। हमारे शिक्षा व्यवस्था में छात्रों का मूल्यांकन प्राप्त अंकों के आधार पर किया जाता है । परिणामस्वरूप छात्र वर्ष भर पढ़ने के बजाय सत्र के अंतिम दोन–तीन महिनों में पढ़ाई करते हैं। क्योंकि छात्र विषय को समझे बिना ही रटकर परीक्षा पास करने का प्रयास करता है । इसमें अधिकतर छात्र तो केवल नकल करके या अनुचित साधनों का सहारा लेकर वार्षिक परीक्षा पास करते हैं। शिक्षा के गुणात्मक सुधार के हेतु हमारी सरकार को ध्यान देना आवश्यक है। सैद्धांतिक और व्यावहारिक ज्ञान के साथ ही हमारी शिक्षा पूर्ण हो सकती है और शिक्षा का स्तर उँचा हो सकता है ।

छात्रों का सर्वांगीण विकास हमारी शिक्षा का उद्देश्य निश्चित किया जाना चाहिए। छात्रों को शारीरिक विकास, व्यायाम, मानसिक विकास, सांस्कृतिक /साहित्यिक गतिविधियाँ, बौध्दिक विकास व्यावहारिक विकास चरित्र निर्माण हेतु शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। और विशिष्ट क्षेत्र में विशिष्ट विकास करने के हेतु शिक्षा का स्पष्ट व्यावहारिक और जीवनोपयोगी उद्देश्य निश्चित किया जाना चाहिए। अध्ययन–अध्यापन प्रक्रिया में छात्रों के विकास हेतु पर ध्यान देना चाहिए। कक्षा में प्रवेश लेते समय छात्रों की रूचि और पूर्वज्ञान पर आधारीत बुनियादी कसौटी पर ध्यान देना आवश्यक है। क्योंकि ज्ञानसंरचनावाद में पाठ्यक्रम बालकेंद्रित बन गया है।

आज शिक्षा व्यवस्था में भ्रष्टाचार पनप रहा है उसे रोकना आवश्यक है। तभी स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकता है। अध्यापकों की चयन प्रक्रिया में भ्रष्टाचार, भाई, भतीजावाद, राजनैतिक दबाव से प्रभावित न होकर लिखित परीक्षा के द्वारा खेलकूद के प्रमाणपत्र, साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रमाणपत्र, शारीरिक शिक्षा, एन.सी.सी., एन.एस.एस. आदि के प्रमाणपत्रों को समुचित अधिभार दिया जाना चाहिए। इससे भ्रष्टाचार और भाई–भतीजावाद पर रोक लग सकती है । पाठ्यक्रम

में विषयों का समन्वय होना चाहिए। विषयों के अध्यापन हेतु मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावशाली शिक्षण विधियों का उपयोग होना चाहिए। शिक्षा केवल व्याख्यान विधि पर आश्रित न होकर छात्रों के पंचद्रियों को अनुभूती लेने के लिए ज्ञानसंरचनावादी अध्यापन पद्धती का प्रयोग होना चाहिए। आज अध्ययन अध्यापन में नई सोच, नई पद्धति, जीवन कौशल, आधुनिक तकनिक व्यावहारिक परिवर्तन, निरंतर सर्वांगीण क्रमिकमूल्यांकन के प्रयोगशील, प्रभावी और समयोजित स्वरूप को स्वीकारना चाहिए। सभी शिक्षा संस्थाओं में योग अध्यापकों और शिक्षण सामग्री, उपकरणों की व्यवस्था की जानी चाहिए। युवाओं में जो असंतोष होता है। उसे कम करना चाहिए। नयी शिक्षण संस्था प्रारंभ करते समय निर्धारित मानदंड के अनुरूप अध्यापक भौतिक संसाधन, शिक्षण सामग्री की सम्पूर्ण व्यवस्था की जानी चाहिए।

आज छात्र के रूचि के अनुरूप शिक्षा दी जानी चाहिए। तभी युवा वर्ग सही दिशा की ओर जा सकता है। परीक्षण के आधार पर छात्र का प्रवेश सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इसलिए माता–पिता एवं छात्रों को समुचित मार्गदर्शन किया जाना चाहिए। ताकि छात्रों को उनकी रुचि और क्षमता के अनुरुप विषयों का चयन करने की सुविधा मिल सके। जो संशोधन मे अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं। उन्हें ऐसी शिक्षा संस्था में प्रवेश दिया जाना चाहिए जहाँ उन्हें सामान्य विषयों की शिक्षा के साथ संशोधन का विशिष्ट प्रशिक्षण दिया जा सके। इसी प्रकार जो छात्र सांस्कृतिक क्षेत्र में उत्तम प्रदर्शन कर रहे हैं उन्हें ऐसा शिक्षण संस्था में प्रवेश दिया जाना चाहिए जहाँ उन्हें विभिन्न विषयों की सामान्य शिक्षा के साथ सांस्कृतिक कार्यक्रमों में विशिष्ट शिक्षण–प्रशिक्षण दिया जा सके। व्यावसायिक क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन करनेवाले छात्रों को अपने मन के व्यवसाय की विशिष्ट शिक्षा के साथ विभिन्न विषयों की सामान्य शिक्षा प्राप्त कर सके। हमें छात्रों की क्षमता और अभिरुचि अनुरुप पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए। उच्च शिक्षा छात्रों का मूल्यांकन सिर्फ वार्षिक परीक्षा के आधार पर न होकर छात्रों का सतत सर्वंकष मूल्यांकन करना चाहिए तभी छात्र शिक्षा संस्था में उपस्थित रहकर अच्छी तरह पढ़ाई कर सकेंगे। छात्रों का मूल्यमापन विषयगत ज्ञान के साथ–साथ खेलकूद, मानसिक शिक्षा, चरित्र निर्माण शिक्षा, साहित्यिक, कलात्मक गतिविधियाँ, नैतिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा आदि साधनों द्वारा किया जाना चाहिए। इन सभी गुणों से छात्रों का सर्वांगीण विकास होगा। और रटने, अनुचित साधनों का सहारा लेने की प्रवृत्ती भी समाप्त हो जाएगी। छात्रों के व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन होकर परीक्षा पद्धति अधिक सरल, सहज, सुगम एवं लचीली बन जाएगी। इसलिए सरकार को छात्रों के

शिक्षा स्तर को सुधारने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। हमारी शिक्षा में छात्रों को सैद्धांतिक पक्ष के साथ उनका व्यावहारिक पक्ष में सफल बनाने के लिए छात्रों में सर्जनशीलता, उपक्रमशीलता, शोधदृष्टि से व्यवसायोन्मुख बनाने के दृष्टि से प्रयास होना आवश्यक है। तभी देश महासत्ता बन सकता है। लेकीन देखा जाता है कि, छात्रों के सर्वांगिण विकास के लिए पाठशालों में मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ नहीं होता. अध्यापक नियुक्ति के सही मापदंड नहीं है और न ही बौद्धीक स्तर के अ्नुसार सामान्य शिक्षा व्यवस्था की सुविधा है। सरकार के पास आज शिक्षा स्तर सुधारने के लिए जो उपाय है; वह कम मात्रा में दिखाई देती है। यह विसंगतियाँ आज शिक्षा व्यवस्था में देखने को मिलती है।

रामधारीसिंह दिवाकर के 'आग पानी आकाश' उपन्यास में शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त विसंगति नजर आती है। प्रस्तुत उपन्यास में बब्बन धोबी का बेटा युगेश्वर अनेक संघर्षो के बावजूद शिक्षा प्राप्त करता है। उसे स्कूल में जातियता के नामपर अपमान सहना पड़ता है। उसने गरीबी को नजदीक से देखा और भोगा था। जब युगेश्वर शिक्षित बनकर स्पर्धा परीक्षा के माध्यम से वित्त विभाग में अफसर बनता है, तब उसके मनोवृत्ति में बदलाव आ जाता है। वह गरीब लोगों को लूटता है। गरीब लोगों का अपमान करता है। इसप्रकार शिक्षित लोगों के व्यवहारों में विसंगतियाँ नजर आती है।

चंद्रमोहन प्रधान द्वारा लिखित 'एकलव्य' उपन्यास में शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त विसंगति नजर आती है। आचार्य द्रोण गुरु के रूप में प्रसिद्ध थे। इसलिए एकलव्य उनके पास आकर शिष्य बनने की इच्छा रखता है। लेकिन एक ओर आदर्श गुरु के रूप में अपना नाम कमाकर दूसरी ओर जातियता से बर्बर व्यक्तित्व के कारण एकलव्य को शिष्य नहीं बनाते हैं। एकलव्य जंगल में जाकर स्वयंअध्ययन करके श्रेष्ठ धनुर्धर बनता है। जब आचार्य द्रोण को एकलव्य श्रेष्ठ धनुर्धर बन गया है, इसकी जानकारी मिलती है, तब वे परेशान हो जाते है। वे अर्जुन को श्रेष्ठ धनुर्धर बनाना चाहते थे। इसलिए षड्यंत्र करके एकलव्य को गुरुदक्षिणा की माँग करते है। वे कहते है, ''द्रव्य–आभूषण की अपेक्षा कुछ विशिष्ट चमत्कारी, लोकोत्तर दक्षिणा की माँग की और कहा, तुम देना ही चाहते हो तो मात्र अपने दाहिने हाथ का अंगुष्ठ काटकर मुझे दे दो।''[34] इसप्रकार शिक्षा न देकर गुरुदक्षिणा माँगनेवाला गुरु यहाँ नजर आता है। इस प्रकार शिक्षा प्रणाली में विसंगतियाँ नजर आती है।

निष्कर्ष:

हिंदी उपन्यासकारों ने शिक्षा प्रणाली के सभी अंगों पर अपने विचार रखे हैं। भारत में परंपरागत शिक्षा प्रणाली कुछ वर्गों तक सिमित थी। जिससे कुछ वर्ग शिक्षा प्राप्त कर सकते थे और अधिकत्तर लोग यानि निम्न वर्ग शिक्षा से दूर था। उनको शिक्षा के द्वार बंद थे। उनके जीवन में सिर्फ गुलामी थी। इसका चित्रण उपन्यासकारों ने किया है। 'एकलव्य' उपन्यास इस मानसिकता की पहल करता है। इसमें परंपरागत शिक्षा प्रणाली को अपनाया है । परंपरागत शिक्षा प्रणाली को अपनानेवाले आचार्य द्रोण एकलव्य को शिक्षा से दूर रखते है। सिर्फ हीन कुल में उत्पन्न होने से परंपरागत व्यवस्था एकलव्य को अधिकारों से दूर रखती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में अनेक परिवर्तन आ गए हैं। उसमें परंपरागत शिक्षा प्रणाली को नकारकर आधुनिकता को अपनाया है। जिसमें मनुष्य का विकास हो रहा है। मनुष्य शिक्षित बनकर, गतिमान होकर समानता का पैरवी करता है। मदन दिक्षित का 'मोरी की ईट' उपन्यास में मिशनरीयों द्वारा आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अपनाया है । इसमे जैकब और फ्लोरा आधुनिक विचारधारा की पहल करते हैं। वे अपने स्कूल में परंपरागत मान्यताओं और भेदभाव को नकारकर समानता और आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अपनाते हैं।

आज सरकारी शिक्षा प्रणाली ग्रामीण लोगों के हर घटक तक पहुँचाकर विकास करना चाहती है । भारत की अधिकतर आबादी ग्रामीण परिवेश में रहती है। जब उनका विकास होंगा, तब राष्ट्र की प्रगति हो सकती है। इसलिए सरकार इन लोगों पर सर्व शिक्षा अभियान के माध्यम से अधिक ध्यान दे रही है। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का रामलाल इसका सार्थक उदाहरण है । वह ग्रामीण जीवन के पिछड़े वर्ग को विकास की राह पर लाना चाहता है। इसलिए वह चमार बस्ती में स्कूल निर्माण करता है। अध्यापक की व्यवस्था करके लोगों को शिक्षित बनने का आवाहन करता है। शहरों में शिक्षा प्रणाली ने उच्च विकास किया है, परंतु उसके नकारात्मक पहलू भी सामने आ रहे है । शहरों में एकतरफ शिक्षा से विकास हो रहा है तो दूसरी तरफ शिक्षा क्षेत्र में विषमता नजर आ रही है । इससे समाज दिशाहीन होकर समाज में विषमता फैल रही है। इससे राष्ट्र का पतन होता हुए नजर आता है। गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' उपन्यास इस प्रवृत्ति की पहल करता है । इसमें कानपुर के आई. आई. टी. का चित्रण है। शहरी शिक्षा प्रणाली में विषमता और जातियता फैलने से राम उजागर जैसा छात्र इस व्यवस्था का शिकार बनता है।

सरकारी शिक्षा प्रणाली में हम देखते है कि सरकार बुद्धिमान युवक निर्माण करना चाहती है ,लेकिन समाजव्यवस्था में जो असमानता है उससे विकास नहीं हो रहा है । आज भी भारत में मनुवादी मानसिकता परंपरागत शिक्षा प्रणाली अपनाना चाहती है। साथ ही सरकार शिक्षा प्रणाली पर अधिक खर्च करती है , पर वह योजना छात्रों तक नहीं पहुँच पाती है। उसमे भ्रष्टाचार होता रहता है। भारत में आज भी उच्च शिक्षित दलितों पर अन्याय होता है। उसकी ओर हीन दृष्टि से देखा जाता है। तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में यह प्रणाली नजर आती है । गिरिशकुमार उच्च शिक्षित होने पर भी इस व्यवस्था का शिकार बनता है। उसे दिल्ली जैसे शहर में जातियता के नामपर अपमानित किया जाता है। यह विषमता आज प्राथमिक, माध्यमिक तक ही नहीं, बल्कि, उच्च शिक्षा में दिखाई देती है। जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' उपन्यास, मदन दीक्षित का 'मोरी की ईट' उपन्यास या गिरीराज किशोर का 'परिशिष्ट' उपन्यास इस विषमता को उजागर करता है। इसप्रकार उपन्यासकारों ने इस शिक्षा प्रणाली पर अध्ययन करके लेखनी चलाई है। उन्होंने गलत धारणाओं पर प्रहार करते हुए सही रास्ता दिखाने का प्रयास किया है ।

संदर्भ संकेत

1. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 17
2. वही, पृ.क्र. 19
3. डॉ. सिंह रामपाल, शिक्षा सिद्धांत, पुस्तक प्रकाशन, आगरा, प्र.सं. 1981,पृ.क्र. 4
4. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 30
5. Dr. F. E. Keay, Indian Education in Amaen and hater Times, p. 85
6. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 33
7. प्रा. देशमुख एल. जी., भारतातील शिक्षणाचा विकास, फडके प्रकाशन, कोल्हापुर, प्र.सं. 2014, पृ.क्र.97
8. प्रधान चंद्रमोहन, एकलव्य, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1997, पृ. क्र. 120
9. दिवाकर रामधारीसिंह, आग पानी आकाश, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्र.सं. 1999, पृ.क्र. 3
10. प्रा. देशमुख एल. जी., भारतातील शिक्षणाचा विकास, फडके प्रकाशन, कोल्हापुर, प्र.सं. 2014, पृ.क्र.97
11. वही, पृ. क्र. 170
12. डॉ. प्रदीप वंदना, देवेश ठाकुर के उपन्यासों में चरित्र–शिल्प, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2008, पृ.क्र. 198

13. गिरिराज किशोर, परिशिष्ट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1998, पृ.क्र. आरंभिक

14. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 43

15. शर्मा सुभाष, भारत में शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2004, पृ.क्र. 134.

16. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 32

17. वही, पृ. क्र. 38

18. डॉ. पांढारीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 170

19. वही, पृ. क्र. 176

20. डॉ. धुमाळ क्षितिज, हिंदी के प्रयोगशील उपन्यास, अन्नपूर्णा प्रकाशन, प्र.सं. 2011, पृ.क्र. 100

21. ठाकुर देवेश, भ्रमभंग, संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 1992, पृ.क्र. 145

22. डॉ. धुमाळ क्षितिज, हिंदी के प्रयोगशील उपन्यास, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कापनुर, प्र.सं. 2011, पृ.क्र. 93

23. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 35

24. डॉ. पांढरी पांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 147

25. वही, पृ. क्र. 147

26. वही, पृ. क्र. 95

27. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 36

28. डॉ. मिश्रा गार्गीशरण, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2003, पृ.क्र. 194

29. वही, पृ. क्र. 195

30. ठाकुर देवेश, भ्रमभंग, संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 1992, पृ.क्र. 51

31. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 54

32. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 68

33. वही, पृ. क्र. 10

34. प्रधान चंद्रमोहन, एकलव्य, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1997, पृ.क्र. 187

चतुर्थ अध्याय

हिंदी उपन्यासों में अध्यापक वर्ग का दृष्टिकोण

चतुर्थ अध्याय

हिंदी उपन्यासों में अध्यापक वर्ग का दृष्टिकोण

प्रस्तावना :

अध्यापक का पेशा आदर्श है। एक अध्यापक पर बहुमुखी दायित्व होता है और उसे कुशलतापूर्वक निभाने के लिए प्रशिक्षण अत्यंत आवश्यक है। पहले केवल विषय–विशेष की निपुणता अध्यापन–कार्य के लिए सीमित मानी जाती थी। परंतु बाल–मनोविज्ञान के बढ़ते हुए अनुसंधान तथा शिक्षण विज्ञान के विकास के कारण यह भी परिवर्तित हो चुकी है। अब यह अवधारणा दिन प्रतिदिन बल पकड़ती जा रही है कि प्रशिक्षण के बिना अध्यापक अपना कार्य कुशलतापूर्वक नहीं कर सकता है।

एक प्रशिक्षित अध्यापक बच्चे को अच्छी तरह से समझता है। शिक्षण कार्य इस बात की माँग करता है कि शिक्षक को अपने विषय के साथ–साथ अपने छात्रों का भी ज्ञान होना चाहिए। उसे बच्चे के विभिन्न विकास को समायोजन में सहायता प्रदान करनी चाहिए। उसे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि बच्चा किस प्रकार सीखता है? अप्रशिक्षित अध्यापकों के हाथ में शिक्षा एक औपचारिक क्रिया बन जाती है। प्रशिक्षित अध्यापक अपना कार्य योग्यतापूर्वक करता है। इस संदर्भ में के. के. भाटिया का कहना है, ''अप्रशिक्षित अध्यापकों के हाथ में शिक्षा एक औपचारिक क्रिया बन कर रह जाती है। वे अवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करते हैं जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा एक निरर्थक एवं शुष्क प्रक्रिया बन कर रह जाती है। प्रशिक्षित अध्यापक अपने कार्य को योग्यता प्रदान करता है जिससे शिक्षण में रोचकता एवं सार्थकता उत्पन्न होती है।''[1] अध्यापक सुनियोजित ढंग से शिक्षा देने का प्रयास करता है। इसलिए अध्यापक को विभिन्न गुणों से परिपक्व होना आवश्यक है। अध्यापक जिस विषय को पढ़ाता है उसका सैद्धांतिक और व्यावहारिक ज्ञान ग्रहण करके छात्रों के ज्ञान प्रदान करता है।

वह छात्रों की योग्यता के अनुसार विकास–प्रक्रिया का ज्ञान प्रदान करता है। किसी भी शासन–प्रणाली में अध्यापक का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि अध्यापक के बिना शिक्षा प्रणाली निरर्थक है। शिक्षा की समूची प्रक्रिया अध्यापकों के इर्द–गिर्द घुमती है। अध्यापक ही पाठ्यक्रम की व्याख्या

करते हैं और उपयोगी शिक्षा–विधियों का चुनाव करते हैं। वे ही अपने चरित्र और व्यवहार से लड़कों तथा लड़कियों को प्रभावित करते हैं। आज जब कि हमारे समाज का पुनर्निर्माण हो रहा है। अध्यापकों का दायित्त्व और भी अधिक बढ़ गया है।

समाज में अध्यापक का स्थान सशक्त एवं महत्त्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक बौद्धिक परंपराएँ तथा तकनिकी कौशल संचारित करने में केंद्रीय भूमिका निभाता है और सभ्यता की ज्योति को प्रज्ज्वलित करने में सहायता प्रदान करता है। भारतीय शिक्षा के आधुनिक ढाँचे के निर्माण में व्यापक विचार विमर्श का हाथ है। भारतीय शिक्षा के आधुनिक ढांचे के निर्माण में अनेक समितियों ने योगदान दिया है। इस संदर्भ में के. के. भाटिया का कहना है, ''भारतीय शिक्षा के आधुनिक ढांचे के निर्माण में कितनी समितियों ने समय समय पर अपनी विशिष्ट भूमिका निभाई है। एक–एक ईंट रखकर इस ढ़ांचे को बनाया है। परंतु अभी भी इसे पूर्णत: दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता। समय–समयपर इस में परिवर्तन भी हुए। कभी इस का पाठ्यक्रम बदला गया, कभी शिक्षण विधियों में परिवर्तन किये गए। कभी हाईस्कूल प्रणाली अपनाई गई, कभी इण्टर–प्रणाली को प्रचलित किया गया, कभी हायर सेकण्डरी पर बल दिया गया और अब 10+2+3 शिक्षा प्रणाली पर वाद–विवाद हो रहा है। अभी तक कोई एक निश्चित प्रणाली और नीति नहीं बन पाई।''[2] छात्र और अध्यापक में विचारों का आदान–प्रदान होना चाहिए। साथ ही किसी भी बातों के गुण–दोषों का विवेचन होना चाहिए। अध्यापक को गंभीरता और इमानदारी के साथ कार्य करना चाहिए। अध्यापक ही देश के विकास में योगदान दे सकता है। इसलिए समाज उसकी ओर अपेक्षा की दृष्टि से देखता है।

4.1 अध्यापक का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टीकोण:

भारत में परंपरा से अध्यापक का स्थान उँच्चा है। अध्यापक के बगैर छात्र का विकास असंभव है। परंपरा से अध्यापक शिक्षा प्रणाली की ओर व्यवस्था की दृष्टि से न देखकर सेवा की दृष्टि से देखता आया है। लेकिन वर्तमान समय में इसके संदर्भ बदल गए हैं। वर्तमान काल में अध्यापक अपना दायित्व भूल गया है। अध्ययन प्रक्रिया में अध्यापक का महत्व अनन्यसाधारण है। भारतीय संस्कृति में अध्यापक को एक अलग स्थान है। आज भी इक्कीसवीं सदी में विज्ञान ने कितनी भी

दौड की हो, अनेक अनुसंधान करके सारे ग्रहगोल अपने सफर की सिड़ी में लाये हो और सारे भौतिक सुखों के ऐश्वर्य का उपभोग लिया हो, वैसे ही अध्ययन में तंत्रज्ञान ने कितनी भी उन्नति की हो, तब भी अध्यापक का स्थान उपकरण नहीं ले सकता। अध्यापक का स्थान अनन्यसाधारण है । अध्यापक का दायित्त्व है कि किताबी ज्ञान के साथ जीवनज्ञान भी छात्रों को प्रदान करें। इस संदर्भ में डॉ. विजया वाड का कहना है, ''पुस्तकी विद्या देणाऱ्या व जीवनविद्या देणारा शिक्षक सहस्त्रपटींनी उत्तम असतो.''[3] (किताबी ज्ञान देने की अपेक्षा व जीवनविद्या देनेवाला अध्यापक सहस्त्रगुणा उत्तम है।)

अध्यापक परंपरा से समाज को दिशा देने का काम करता आया है। अध्यापक छात्र में नवीनता का ध्यास निर्माण करता है। अध्यापन यह एक अत्यंत प्राचीन व्यवसाय है । इस व्यवसाय की बहुत बड़ी सांस्कृतिक परंपरा है । महर्षी व्यास से लेकर वसिष्ठ, सांदिपनी, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि आचार्य हमे ज्ञात हैं। भारत के संत भी हमे परिचित हैं। संत ज्ञानदेव से लेकर संत तुकाराम तक और उसके बाद हुए संतों ने समाजप्रबोधन का कार्य किया है । अध्यापको को भारतीय संस्कृति में मातापिता के समान स्थान दिया गया है, 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भवं'। और 'आचार्य देवो भव' ऐसा अध्यापक का उल्लेख होता था। भारत में श्रेष्ठ गुरूओं की परंपरा थी। गुरू केवल ज्ञानी ही नहीं होना चाहिए, केवल तत्वज्ञ नहीं, तो तत्ववेता की तरह आचरण करनेवाला मातापिता की तरह प्यारा और दयालू हो ऐसी अपेक्षा थी। गुरू चरण में शिष्य को जीवन का उचित मार्ग दिखाने का सामर्थ्य होता था। इस प्रकार अध्यापक छात्र की राह दिखाते है।

अध्यापक समाज में छात्रोंद्वारा नैतिक मूल्यों की पैरवी करता है। आधुनिक काल में गुरू का स्थान अध्यापक ने लिया है । जीवनभर अध्यापक अध्ययन करता है, अध्यापन कर सकता है । आदि सही मायने में अध्यापक उसके व्यवसाय में कभी निवृत्त नहीं होता, वह हमेशा सेवारत होता है । सही अध्यापक छात्रपरायण होता है । सेवाभाव यह अध्ययन की आत्मा है । सही अध्यापक स्वयं के आचरण से जो आदर्श निर्माण करते हैं, उन्हीं आदर्शों से छात्र साकार होते हैं । अध्यापक पर भविष्य के सुजान नागरिक बनाने की जिम्मेदारी होती है । अध्यापक का रसपूर्ण अध्यापन नए सृजन की ओर ध्यान देता है । इस संदर्भ में डॉ. विजया वाड का कहना है, ''उत्तम शिक्षकाची दोन लक्षणे रसपूर्ण अध्ययनाची आस आणि नवीनतेचा ध्यास।''[4] (महान अध्यापक की दो लक्षण–रसपूर्ण अध्यापन की आस और नवीनता की आस) अध्यापक की शिक्षा व्यवसाय एक व्रत है । इस व्यवसाय में सिर्फ

ज्ञानदान की कल्पना है। भूदान, संपत्तीदान, रक्तदान, नेत्रदान, अन्नदान इन सब से बेहतर विद्यादान यह एक बहुत अलग दान है । विज्ञानदान छोड़कर बाकी सब दान किसी ना किसी भौतिक चीज से संबंधित है । विद्यादान का वैसा नहीं है । विद्यादान में दान देनेवाला और दान लेने वाला इन दोनों का भी मुनाफा होता है । दान करके बढ़नेवाला ऐसा एकमेव दान है विद्यादान।

अध्यापक कार्य कोई पैसा कमाने का साधन नहीं। जरूरत के हिसाब से इसे पैसे मिले वह काफी है । इसमें यह भावना होनी चाहिए। प्राचीन युग में गुरू शिष्य से दक्षिणा स्विकारते थे। वह कितनी लेनी चाहिए उसका बंधन नहीं था। वो कितनी भी कम अधिक हो तब भी ज्ञान देने में गुरू संकोच नहीं करते थे। वर्तमान काल में अध्यापक ज्ञानदान की अपेक्षा अधिक आर्थिक लाभ उठाने के पक्ष में है। आजकल के बदलती परिस्थिति में अध्यापक को मिलने वाली तनख्वाह जरूरत के हिसाब से है, लेकिन ज्यादा अपेक्षा से कुछ अध्यापक बाहर क्लास लेते हैं। इस व्यवसाय में अध्यापक ज्यादा अर्थार्जन करने के पीछे भागने लगेगा तो उसका व्यवसाय के प्रति अन्याय करना होगा। ऐसी स्थिति में अध्ययन अपने लक्ष्य से वंचित रहेगा। अध्यापकीय कार्य यह सेवा व्रत है और सेवा यह एक धर्म है । निष्काम कर्म में सुख समाया है । सेवाधर्म का मर्म जानके इस व्यवसाय में दाखिला करनेवाले अध्यापक इस देश का चेहरा बदल सकता है । अध्यापक यह देश का सेवक है । सेवाभाव से वह पाठशाला, महाविद्यालय में कार्यरत रहे तो भविष्यकाल में निर्माण होनेवाले समाज का चित्र बदल देगा। इसलिए अध्यापक को अपनी दायित्त्व बखूबी से निभाना है।

आज देश को महासत्ता बनाना है तो छात्र और अध्यापक मिलकर कार्य करना चाहिए। आज युवा वर्ग के पास ताकद है। उसे पहचानकर अध्यापक को निस्वार्थ भाव से योगदान देना है। अध्यापक इस प्रकार दायित्व निभाने पर देश की उन्नति हो सकती है और स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकता है। अध्ययन से समाज में अपेक्षित क्रांति होगी। अध्ययन में क्रांति होने के लिए पहले अध्यापक को बदलना चाहिए। अध्यापक बदलते ही अध्ययन बदलेगा। अध्ययन बदलते ही समाज में परिवर्तन होगा। समाज में बदल होते ही देश का विकास होगा। इसके लिए अध्ययन में गतिशीलता को आना आवश्यक है। अध्ययन को यह गतीशीलता अध्यापक ही दे सकता है । इसलिए अध्यापक ने अपना कार्य चिकित्सक रूप से करना चाहिए। साथ ही इस देश को खड़ा करने के लिए समर्पन कर देना चाहिए। शिक्षा ही परिवर्तन का साधन है । इस संदर्भ में लक्ष्मी भार्गव का कहना है, ''शिक्षा जो बौद्धिक विकास में सहायक हैं, किसी भी राष्ट्र के पुन:निर्माण का सर्वोत्तम साधन भी है ।''[5]

इसप्रकार शिक्षा समाज परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अध्यापकीय कार्य आत्मिक समाधान है । समाधान व्यक्ती के जीवन में बहुत जरूरी है । अध्यापक को छात्र के भविष्य निर्माण का समाधान इस कार्य से मिलता है ।

अध्यापक छात्रों को ज्ञानदान करते समय आनंद का अनुभव करता है। अध्यापन के समय छात्र अध्यापक में साधारनीकरण हो जाता है। जिससे छात्र ज्ञानग्रहण करके आनंद विभोर हो उठते है। अध्यापक छात्रों पर अच्छे संस्कार करके नैतिकता की पैरवी करता है। समाज की निर्मिति में अध्यापक का बहुत बड़ा सहभाग होता है । समाज में बदलाव लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस वर्ग का और एक महत्त्व है कि इस कार्य में काम करनेवाले लोग भी बार–बार छात्रों के सान्निध्य में आने से हमेशा उत्साहित रहते हैं । इस वर्ग में कार्यरत रहने वाले अध्यापक उस कार्य में तल्लीन रहते हैं । उत्साह, महत्वकांक्षा, प्यार, आशा–आकांक्षा आदि का सौभाग्य अध्यापक को मिलता है । अध्यापक एक वक्त शरीर से थक सकता है , पर मन से नहीं। छात्रों के सानिध्य में अध्यापक को प्रसन्नता मिलती है । प्रसन्न और आनंदी मन यह हमेशा अपनी मंजिल की ओर जाता है । भारतीय समाज में अध्यापकों को खुद में बदलाव लाना आवश्यक है । पुराने तरीकों में बहुत बदलाव लाना चाहिए। देश की प्रगति की नजर से छात्रों की मनोभूमिका तैयार करने की जिम्मेदारी आज के अध्यापकों की है । आज छात्रों को राष्ट्रविकास के मार्ग में लाने का काम अध्यापकों का है। अध्यापक को व्यावसायिक कार्यक्षमता बढ़ाने की दृष्टी से सेवांतर्गत प्रशिक्षण लेना पडता है। अध्यापक को इस तरह की जिम्मेदारियाँ निभानी पडती है। खुद में सही बदलाव लाते हुए मूल्यों का पोषण करते हुए छात्रों को सारी निगाहों से देखना होता है। इस तरह राष्ट्र विकास में अध्यापक का महत्वपूर्ण स्थान है। अध्यापक ही छात्र, समाज और देश को दिशा दे सकते है।

गिरीराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में अध्यापक का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास में आई.आई.टी. कानपुर का चित्रण हुआ है । इस संस्थान में अध्यापक, उच्च जाति के छात्र और निम्न जाति के छात्रों के साथ भेदभाव करते हैं । बिमारी के कारण रामउजागर का एक सेमिस्टर नहीं दे पाता है । जातिगत मानसिकता के कारण अध्यापक भी उसका नुकसान करते हैं। वे सदैव उच्च वर्ग के छात्रों को मद्द करते हैं। इसप्रकार महान संस्थाओं में भी जातिगत दुर्व्यवहार करते हुए अध्यापक नजर आते हैं।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में भी अध्यापक की शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास से स्पष्ट होता है कि चंदन मुंबई के एक सरकारी कॉलेज में पढ़ाने का काम करता है । वह एक स्वाभिमानी और प्रामाणिक अध्यापक है । वह छात्रों को मन लगाकर पढ़ाने का नैतिक कार्य करता है । लेकिन अन्य अध्यापक पढ़ाई में रूचि नहीं रखते हैं। वह सिर्फ पाठ्यक्रम को ऐसे वैसे पूरा करने में लगे रहते हैं। वह सिर्फ तनख्वाह लेने का काम करते हैं । इस उपन्यास के प्रोफेसर त्रिवेदी तो सदैव जोक मारते रहते हैं। वह खुद को मालिक समझकर आजाद घुमते रहते हैं। इस संदर्भ में देवेश ठाकुर का कहना है, ''आजाद देश है हमारा। हमारे आजाद देश की यही शिक्षा–नीति है । पब्लिक स्कूल और कान्वेन्टस। सत्ता के नियामक वहीं से निकलेंगे।''[6] इस प्रकार अध्यापक अपने कार्य से हटकर मुक्त जीवन जी रहा है । लेखक ने इस उपन्यास से आज के स्वार्थी, भ्रष्ट, आत्मकेंद्री और अवसरवादी अध्यापकों की पोल खोलने का प्रयास किया है तो दूसरी ओर चंदन जैसे अध्यापक की त्रासदी को सामने लाने का कार्य लिया है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में अध्यापक का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास में स्पष्ट होता है कि, अध्यापकों के मनपटल जातियता परंपरा से मैले है। इस उपन्यास में चमार बस्ती में स्कूल खोला जाता है। स्कूल का पूरा बजट पास हो जाता है। लेकिन उस स्कूल में अध्यापक पढ़ाने नहीं आते क्योंकि सभी अध्यापक सवर्ण होने से जातियता उनमे कूट–कूटकर भरी हुई है।

सुनीत पाँचवी बोर्ड की परीक्षा पास होने के उपरान्त ज्यूनियर हाईस्कूल में प्रवेश लेता है। उस स्कूल के अध्यापक पाण्डे जाति से ब्राह्मण होने से सुनीत का अपमान करता है। उसे जाति के नामपर जलील किया जाता है। सुनीत को मैरिट के आधारपर स्कॉलरशिप का फार्म भरने पर विरोध होता है। उसे जाति के नामपर स्कॉलरशिप फार्म भरने को कहा जाता है। वे कहते हैं, ''मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि जब सरकार ने तुम लोगों के लिए अलग से स्कॉलरशिप देने की योजना बनाई है तो तुम वही काम क्यों नहीं भर रहे है?''[7] इसप्रकार की मानसिकता अध्यापकों की नजर आती है।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का सकारात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। यहाँ का निम्नवर्ग समाज सदियों से पीड़ित है। उच्चवर्ण का प्रस्थापित वर्ग उसका निरंतर शोषण करता आया है। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकरजी से प्रेरणा पाकर अब निम्नवर्ग

का युवा वर्ग उच्च शिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ है। शिक्षा ग्रहण करने पर अपने समाज को शोषणमुक्त करने का प्रयास करने लगा है। चंदन जब अध्यापक बनकर अपने गाँव जाता है तब चंदन कहता है– ''मैं अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दीन–हीन समाज के उत्थान के लिए करूँगा। मैं उन पीडित, शोषित और उपेक्षित लोगों को उठाने के लिए काम करूँगा जो कीड़े–मकोड़ों की तरह जीते हैं। शेष समाज जिनके साथ पशुवत व्यवहार करता है उनके पास नहीं बिठाता और उनसे घृणा करता है। पढ़–लिखकर हमारे समाज के लोग ऊपर नहीं उठेंगे तो हमें ही कौन पूछेगा। हम थोडे से लोग चीख–चीख कर मर जायेंगे, कौन सुनेगा हमारी चीख को हमें समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लड़ाई लड़ती है, जुल्म और शोषण के विरूद्ध संघर्ष करता है।''[8]

इस प्रकार चंदन शिक्षा प्रणाली के माध्यम से निम्नवर्ग को उच्चवर्ण के उत्पीड़न से मुक्त करने के लिए शिक्षा यही एक अच्छा अनिवार्य मार्ग मानता है।

4.2 अध्यापक का सांस्कृतिक दृष्टिकोन :

अध्यापक समाज में सांस्कृतिक दृष्टि के पैरवी करते है। समाज और संस्कृति एक–दूसरे पर निर्भर है। हमारे नीतिमूल्य, रीतिपरंपरा, शिष्टाचार आदि सांस्कृतिक मूल्यों का जतन होने पर स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। आदर्श सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समाज में संतुलन बनता है। बोलचाल की भाषा में समूह के आदर्शों, विचारों, व्यवहारों, रीति–रिवाजों आदि व्यवहार को संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति एक समूह के समस्त रीतिरिवाजों, परम्पराओं और व्यवहार से बनती है। संस्कृति एक समूह के मूल्यों की ऐसी पूर्ववर्ती समष्टि है, जिसमें व्यक्ति पैदा होकर विकसित होता हैं। हमारी प्रवृत्तियाँ, विश्वास और विचार, हमारे निर्णय और मूल्य, हमारी संस्थाएँ–राजनैतिक और कानूनी, हमारी नैतिक संहिताएँ और शिष्टाचार के नियम, दर्शन आदि संस्कृति के अंदर आते हैं। संस्कृति और शिक्षा के संबंध में लक्षता गुप्ता का कहना है, ''शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य बालक को उसकी सामाजिक विरासत, उसकी संस्कृति प्रदान करता है।''[9] इस प्रकार सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक विरासत का संबंध है।

संस्कृति और समाज का गहरा रिश्ता है। मनुष्य को संस्कृति विरासत से मिलती है। संस्कार होने पर ही मनुष्य का जीवन समृद्ध बनता है। संस्कृति से मनुष्य में नैतिकता, विचार,

शिष्टाचार, व्यवहार आदि की पैरवी होती है। संस्कृति में वह शामिल है , जो मनुष्य समाज में सीखता है , उदा– ज्ञान, विश्वास, कला, कानून, नैतिकता, व्यवहार के तौर–तरीके, साहित्य, संगीत, भाषा आदि। समाजशास्त्रियों के अनुसार संस्कृति के दो प्रकार माने हैं – भौतिक संस्कृति और अभौतिक संस्कृति । भौतिक संस्कृति में पार्थिव वस्तुएँ आती हैं , जो कि मनुष्य के व्यवहार के लिए उपयुक्त एवं समूर्त हैं। उदा. रहने के मकान, विविध प्रकार के उपकरण, औजार, हथियार, बर्तन, आवागमन के साधन आदि। अभौतिक संस्कृति में अमूर्त वस्तूएँ शामिल हैं , उदा. समाज के विभिन्न रीति–रिवाज, रूढ़ियाँ, विधियाँ, कलाएँ, ज्ञान और दर्शन, संगीत, कानून आदि। मानव जाति के प्रत्येक समूह की संस्कृति में सार्वभौम तत्त्व है – बोली, पार्थिव उपकरण, कलाएँ, पौराणिक और वैज्ञानिक ज्ञान, धार्मिक रीतियाँ, कुटुम्ब , सम्पत्ति, मूल्य, विनिमय और व्यापार, संगीत, दर्शन आदि। इस प्रकार स्वस्थ समाज के लिए उपयुक्त तत्व है।

विश्व में अनेक संस्कृतियाँ है। संस्कृतियाँ ही समाज को दिशा देती है। जिससे समाज का सतत विकास और संतुलन बनकर रहता है। जिसके अलग–अलग तत्व नजर आते है लेकिन हर एक संस्कृति का प्रमुख उद्देश्य समाज का संतुलन बनाए रखने का है। समाज में मनुष्य अपने विचार, संस्कार अगली पिढ़ी को सुपुर्द करता है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य संस्कारशील बनता है। इससे व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्र का विकास होता है। संस्कृति और शिक्षा में घनिष्ट सम्बन्ध है कि शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य बालक को उसकी सामाजिक विरासत, उसकी संस्कृति प्रदान करना है । मानव समूह में विरासत के रूप में संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास दिखाई देता है । यह संस्कृति प्रत्येक पीढ़ी द्वारा नई पीढ़ी को विरासत के रूप में मिलता है । प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति में जन्म लेता है । इस सांस्कृतिक विरासत से उसे निश्चित मूल्य मिल जाते हैं। संस्कृति का मनुष्य के जीवन में अत्याधिक महत्त्व है । विवेचन से यह स्पष्ट होगा कि संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा से मनुष्य को लाभ होता है । शिक्षा से मनुष्य में संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता दिखाती है । इस संदर्भ में लक्षता गुप्ता का कहना है , ''संस्कृति की शिक्षा में जहाँ प्रत्येक बालक को उसके समूह की विशिष्ट संस्कृति की शिक्षा दी जानी चाहिए वहाँ साथ ही अन्य संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता की भावना रखने की भी शिक्षा दी जानी चाहिए।''[10] इस प्रकार शिक्षा संस्कृति की पैरवी करती है।

बालक को सबसे पहले परिवार से संस्कार मिलते हैं। फिर स्कूल और समाज में उसपर संस्कार होते हैं। इन संस्कार से उसका व्यक्तित्व बनता है। परिणामस्वरूप आदर्श व्यक्तित्व बनने

पर समाज और राष्ट्र का विकास होता है। संस्कृति के अंगों में भाग लेने के वैकल्पिक रूप से मनुष्यों में अन्तर देखा जा सकता है । संस्कृति को अपनाने में मनुष्य को तीन अवस्थाओं से गुजरना होता है जो कि वास्तव में शिक्षा की अवस्थाएँ कही जा सकती हैं। पहली अवस्था में व्यक्ति अपने चारों ओर के व्यक्तियों का अनुकरण करता है । उदा. दूसरों को देखकर मुस्कारना, हँसना अथवा अन्य कार्य करना है । बाल्यावस्था में मनुष्य अनुकरण के द्वारा समूह की संस्कृति को ग्रहण करता है । दूसरी अवस्था में बालक विभिन्न प्रकार के खेलों के द्वारा समाज के भिन्न-भिन्न सदस्यों के कार्यों का अनुकरण करते हैं। खेलों से उनके व्यक्तित्वों में विभिन्न प्रकार के गुणों का समावेश होता है । तीसरी अवस्था खेल है, जिसमें व्यक्ति अपने व्यवहार पर संयम करना सीखता है । उसे समूह की मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करना पड़ता है ।

संस्कृति की शिक्षा सबसे पहले परिवार में प्रारम्भ होती है । परिवार में ही वह सबसे पहले से संस्कृति में भाग लेता है। परिवार में ही वह भीड़ के संस्कृति ग्रहण की अवस्थाओं से गुजरता है । परिवार में अन्य सम्बन्धी बालक को संस्कृति के रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मूल्यों, विचारों आदि की शिक्षा देते है । इस प्रकार परिवार से संस्कार का प्रारंभ होता है।

वर्तमानकाल में सामाजिक अध:पतन हो गया है। इसके पीछे असांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ काम कर रही हैं। इसलिए आज सांस्कृतिक मूल्यों की पैरवी होनी चाहिए। आज व्यक्तिगत स्कूल में शासनस्तर तक हर एक को इस दृष्टि से परिवार में बालक पहले उचित, अनुचित में अन्तर करना सीखता है। परिवार में अनेक प्रकार के संस्कारों के द्वारा उसको सुसंस्कृत बनाया जाता है । परिवार में व्यक्ति नैतिक मूल्यों और धार्मिक व्यवहार को सीखता है। परिवार में उसे शिष्टाचार सिखाया जाता है। परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहार करने के तरीके सीखता है। प्रत्येक देश की संस्कृति में महत्त्वपूर्ण योगदान देनेवाले महापुरूषों पर उनके बाल्यकाल में पड़नेवाला परिवार का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। परिवार में संस्कृति की शिक्षा कुछ तो अचेतन अनुकरण के द्वारा होती है और बहुत कुछ वयस्क सम्बन्धियों द्वारा दी गई प्रत्यक्ष शिक्षा के रूप में होती है। आज संस्कृति की शिक्षा देने का कार्य परिवार के साथ विद्यालय में होता है।

विश्व में अनेक देशों की अलग-अलग संस्कृति है। उनके अलग-अलग नियम है। पर हर संस्कृति समाज को सही दिशा देन का काम करती है। आज परिवार, स्कूल के साथ-साथ समाज के हर एक पहलू पर सांस्कृतिक मूल्यों की पैरवी होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न देशों में विद्यालयों में देश की

संस्कृति के अनुरूप बालकों को शिक्षा भी प्रदान की जाती है। पाठ्य–पुस्तकों द्वारा उनको समूह के विचारों, आदर्शों और मूल्यों आदि से परिचित कराया जाता है। अनेक प्रकार के पाठ्यक्रमेत्तर कार्यक्रमों के द्वारा संस्कृति के विभिन्न अंगों से परिचित किया जाता है। पाठ्यक्रमेत्तर कार्यक्रमों में नाना प्रकार के खेलों, नाटकों, सामूहिक गान और नृत्य, वाद–विवाद प्रतियोगिताओं, देश–विदेश का भ्रमण आदि के द्वारा संस्कृति से परिचित कराया जाता है। संस्कृति की शिक्षा में जहाँ विशिष्ट संस्कृति की शिक्षा के साथ अन्य संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता की भावना रखने की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। ऐसा न होने पर भी विभिन्न संस्कृतियों के सदस्य एक–दूसरें से सांस्कृतिक अन्तर के कारण अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को पिछ़ड़ा हुआ समझ बैठते है, जिसके परिणामस्वरूप परस्पर तनाव बढ़ता है, इससे हिंसात्मक व्यवहार हो सकता है। भारतवर्ष में साम्प्रदायिक हिंसा के मूल में एक कारण सांस्कृतिक तनाव भी है। संसार में शांति बनाने रखने के लिए अपनी संस्कृति की शिक्षा के साथ–साथ अन्य संस्कृतियों की भी शिक्षा दी जाए। इसके लिए सभी संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। उदा. बालक को समझाया जाना चाहिए की किसी भी देश की संस्कृति उसने प्राकृतिक परिवेश से प्रभावित होती है। इसलिए भिन्न–भिन्न देशों में भिन्न–भिन्न प्राकृतिक परिवेश दिखाई देता है। इसलिए सांस्कृतिक अन्तर भी दिखाई देता है।

सांस्कृतिक शिक्षा की आज आवश्यकता है। क्योंकि समाज आज सांस्कृतिक पतन से दिशाहीन हो गया है। इसलिए आज सांस्कृतिक मूल्यों को समाज में प्रवाहीत करना आवश्यक है। जिससे आज भी नवसमाज निर्माण होने में मद्द होगी। प्रत्येक मानव समूह को अपनी संस्कृति के अनुसार जीवनयापन करना अधिक श्रेष्ठ लगता है। इसलिए किसी भी अन्य समूहों को दूसरों पर अपनी संस्कृति थोंपने का प्रयास नहीं करना चाहिए। इस प्रकार विद्यार्थियों को सांस्कृतिक अन्तर से परिचित करा देने से उनमें सहिष्णुता निर्माण होगी। सांस्कृतिक शिक्षा अवकाश के समय का सदुपयोग सिखना है। शिक्षा के द्वारा बालकों को अवकाश के समय को सांस्कृतिक कार्यों जैसे– साहित्य, संगीत, कला, आत्मविकास आदि के कार्यों में बिताने की शिक्षा दी जानी चाहिए। वर्तमान काल में वैश्वीकरण में विभिन्न संस्कृतियों का मिलन दिखाई देता है। दूसरी समाज में विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने वाले लोगों ने एक–दूसरे की संस्कृति में आदान–प्रदान किया है। इस प्रकार आज वैश्वीकरण से सांस्कृतिक आदान–प्रदान होकर सहिष्णूता निर्माण हो गई है। मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में अध्यापक का संस्कृतिविषयक दृष्टिकोण नजर आता है।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक चंदन गंगाराम हाईस्कूल में पढ़ता है। उस स्कूल के मास्टर शिवानंद शर्मा अध्यापक का कार्य कम करते थे और पुजारी का अधिक वह स्कूल हो या मंदिर, वहाँ पर भारतीय संस्कृति का गुणगान करता रहता है। हमारी भारतीय संस्कृति आदर्श है। विश्व की संस्कृतियाँ भारतीय संस्कृति पर टिकी हुई है। इसप्रकार वह सदैव छात्र और जनता को उपदेश देता रहता है, पर स्वयं उसका कार्य आदर्श नहीं है। उसमें जातियता कुट–कुटकर भरी हुई है। वह जनता को उपदेश देकर आर्थिक लूट करता है। इस संदर्भ में लेखक लिखते हैं, ''वे मास्टर कम और पुजारी अधिक थे। स्कूल में ही उन्होंने मंदिर बनवा लिया था.... वे स्कूल के नजदीक ही प्रधानाचार्य निवास में रहते थे। नजदीक रहने में उन्हें दो तरह की सुविधाएँ थीं। पहली मंदिर में आई दान–दक्षिणा वे स्वयं ही लेते थे और दूसरी मंदिर उनका बैठकखाना भी था। वहीं वे ट्यूशन भी पढ़ाते थे। मंदिर से उन्हें लाभ ही लाभ थे।''[11] इसप्रकार संस्कृति के नाम पर जनता को लूटने का काम शिवानंद शर्मा करते है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में अध्यापक का संस्कृति विषयक दृष्टिकोण सामने आता है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक चंदन के आदर्श सांस्कृतिक विचार है। वह मुम्बई के सरकारी कॉलेज में अध्यापन का काम करता है। उसपर अच्छे संस्कार है। वह परिवार की जिम्मेदारी बखुबी से निभाता है। चंदन देखता है कि कॉलेज के छात्र दिशाहीन हो गए है। उन्हें कोई रोकता नहीं था। छात्रों की पढ़ने में रूचि नहीं है। अध्यापक सिर्फ टाईम–पास करने और तनख्वाह लेने आते हैं। इसपर चंदन बेचैन हो जाता है। वह अध्यापकों को उनके कर्तव्य का एहसास दिलाता है। वह छात्रों को सही दिशा देने का प्रयास करता है। उनपर अच्छे संस्कार करने के लिए तत्पर रहता है।

चंद्रमोहन प्रधान के 'एकलव्य' उपन्यास में अध्यापक के संस्कृति विषयक विचार सामने आ गए है। प्रस्तुत उपन्यास से स्पष्ट होता है कि हस्तिनापुर में आचार्य द्रोण राजपुत्रों पर संस्कार करते नजर आते हैं। वे राजपुत्रों को विचारों के साथ–साथ धनुर्विद्या भी सिखाते हैं। लेकिन यह उनके विचार, विद्या जातिय मानसिकता से जर्जर है। वह सिर्फ उच्च कुलस्थ राजकुमारों को शिक्षा देते है। जब एकलव्य उनका शिष्य बनने की अभिलाषा रखता है, तब उसकी इच्छा को ठुकरा देते हैं। वे कहते हैं, ''तुम अपेक्षाकृत हीन कुल में उत्पन्न हुए हो। यहाँ पर गुरूकुल में उच्च कुलस्थ लडकों के साथ तुम्हे शिक्षा नहीं दे सकता और बात यह भी है कि तुम निषाद वंशी होकर उन राजकुमारों के

साथ कैसे सीख सकोंगे।''[12] इसप्रकार स्वयं को भारतीय संस्कृति का वाहक समझनेवाले आचार्य द्रोण मतभेद करते हुए नजर आते है।

4.3 अध्यापक का सामाजिक दृष्टिकोण :

समाज में परिवर्तन लाने और दिशा देने का काम अध्यापक करता है। प्रत्येक समाज अपनी आकांक्षाओं, आवश्यकताओं एवं आदर्शों को सामने रखते हुए शिक्षा की प्रक्रिया को इस प्रकार से नियोजित करता है कि इससे आदर्श नागरिक निर्माण हो जाए। यह महान कार्य तब पूरा हो सकता है जब समाज के सभी व्यक्ति उसके आदर्शों के अनुसार अपने व्यवहार कर सकें। शिक्षा इस सम्बन्ध में सहायता करके उपयोगी और श्रेष्ठ सदस्य बनाकर समाज को सबल, सदृढ तथा शक्तिशाली बना सकती है। समाज विकास के लिए शिक्षा का महत्त्वपूर्ण साधन है। समाज अपनी आवश्यकताओं तथा आदर्शों के अनुसार शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करता है। समाज परिवर्तन में अध्यापक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इस संदर्भ में स्वामी रंगनाथानंद का कहना है, ''शिक्षक हा केवळ शिक्षक नव्हे, शिक्षक म्हणजे प्रेरक शक्तीचा अखंड स्त्रोत आहे.''[13] (अध्यापक केवल अध्यापक नहीं, अध्यापक यानि प्रेरक शक्ति का अखंड़ स्त्रोत है।) इसप्रकार अध्यापक प्रेरक शक्ती के रूप में कार्य करता है। शिक्षा तथा समाज का अटूट सम्बन्ध है। जैसा समाज होगा वैसी ही शिक्षा होगी। समाज में जैसे आदर्श होंगे वहाँ की शिक्षा भी उन्हीं आदर्शों के अनुरूप होती है। परिणामस्वरूप यदि किसी समाज के आदर्श किसी कारण से बदल जाते हैं आधुनिक समाज पर विज्ञान का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। आज शिक्षा के द्वारा इस बात पर बल दिया जाता है कि व्यक्ति की चिन्तन, तर्क तथा निर्णय आदि मानसिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हो जाएँ।

वर्तमान समाज अपने–अपने सिद्धान्तों तथा आदर्शों के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करता है। आदर्शवादी समाज में विचार और बुद्धि को विशेष महत्त्व देते हुए अध्यात्मिक विकास के आदर्श को ध्यान में रखकर शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। अत: ऐसी शिक्षा में चरित्र गठन तथा नैतिक विकास पर बल दिया जाता है। अध्यापक नैतिक और आदर्श समाज निर्माण पर बल देता है। इस संदर्भ में डॉ. विजया वाड का कहना है, ''मनाचा कप्पा उघडणं कठीण। पण तो उघडून सत्याला

आवाहन करणं हेच तर उत्तम शिक्षकाचं लक्षण आहे.''[14] (मन का द्वार खोलना कठीन है पर वह खोलकर सत्य को आवाहन करना यहीं उत्तम अध्यापक का लक्षण है।)

भौतिकवादी समाज में भौतिक सम्पन्नता पर बल दिया जाता है। उसमें नैतिक आदर्शों, अध्यात्मिक मूल्यों, रचनात्मक कार्यों तथा विवेक आदि के विकास को कोई स्थान नहीं होता है। शिक्षा की व्यवस्था केवल भौतिक सुखों की उन्नति के लिए की जाती है। जिससे समाज परिपूर्ण हो जाए। इस प्रकार भौतिकवाद के पीछे पड़कर मनुष्य सुख के पीछे दौड़ रहा है। पर वह सुखी नहीं है।

समाज सत्य सदैव देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है । उसके अनुसार सत्य की कसौटी उसका पुनर्निरीक्षण है। अत: यदि कोई सत्य यदि किसी परिस्थिति में सत्य सिद्ध नहीं होता, तो वह असत्य है। सत्य परिवर्तनशील है, इसलिए समाज में विचार की अपेक्षा क्रिया तथा बुद्धि की अपेक्षा परिस्थिति को अधिक महत्त्व दिया जाता है और शिक्षा की व्यवस्था नवीन मूल्यों के निर्माण हेतू की जाती है । अनेक देशों में राज्य को मुख्य तथा व्यक्ति को गौण स्थान दिया जाता है। ऐसे देश में व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह राज्य के हित में अपने जीवन की आहुति देने में भी संकोच न करे। इस दृष्टि से ऐसे देश में शिक्षा की व्यवस्था केवल ऐसे व्यक्तियों के लिए ही की जाती है जो अपने हित को त्याग कर देश की सेवा करते रहे। ऐसे देश पर एक ही व्यक्ति अपनी शक्ति के बल पर शासन करता है। इस प्रकार के व्यवहार से देश का नुकसान होता है।

हुकूमशाही देश में जन–साधारण की अपेक्षा केवल प्रतिभाशाली व्यक्तियों को ही मान्यता दी जाती है और केवल प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। हुकूमशाही देशों के अन्तर्गत प्रत्येक बालक को शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर नहीं मिलता। शासक को पूर्ण अधिकार होता है कि वह शिक्षा का स्वरूप अपनी इच्छानुसार जैसा चाहे वैसा निर्धारित कर सकते है। विरोध करनेवालों को कठोर दण्ड अथवा मौत के घाट उतार दिया जाता है। इस प्रकार के देशों में शिक्षा बल तथा आदेश द्वारा प्रदान की जाती है। इस प्रकार हर एक को शिक्षा प्राप्त का अधिकार लोकतंत्र के अंतर्गत मिलता है।

लोकतंत्र के अंतर्गत व्यक्तित्व को विशेष महत्त्व दिया जाता है। लोकतंत्र वह आदर्श है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को एक सुखी, सम्पन्न तथा समृद्ध जीवन व्यतित करने के समान अवसर प्राप्त होते हैं, इसलिए लोकतंत्र समाज में प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। प्रत्येक

व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह ऐसे कार्य करे जिससे सबका भला हो। ऐसे माहौल में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का आदर करके मेल–जोल के साथ रहते हुए कन्धे से कन्धा मिलाकर चलता है जिससे देश और समाज दिन–प्रतिदिन उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहे।

लोकतंत्र समाज में प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समान अधिकार, वैयक्तिकता और सामूहिक जीवन में विश्वास आदि आदर्श को प्राप्त करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती है इससे प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रूचियों, योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार विकसित होने के अवसर मिलते हैं। उसमें अच्छी आदतें, सामाजिक गुण, प्रेम, सद्भावना, सहयोग, सहनशीलता, सहानुभूति, आत्म–अनुशासन तथा कर्तव्य परायणता आदि लोकतंत्र गुणों का विकास हो जाता है। प्रत्येक देश की शिक्षा प्रणाली उसके आदर्शों, आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं एवं विचारधाराओं के अनुसार होती है। राजनीतिक विचारधारा का शिक्षा पर गहरा प्रभाव होता है। जिस देश में जैसी राजनीतिक विचारधारा है वहाँ की शिक्षा व्यवस्था भी उसी के अनुरूप हो जाती है। उदा. अमेरिका, चीन, रूस तथा भारत आदि देशों में शिक्षा की व्यवस्था अपनी– अपनी राजनीतिक विचारधारा के अनुसार है।

समाज विकास के लिए और राष्ट्र उन्नती के लिए विज्ञान–शिक्षा महत्त्वपूर्ण है। इस संदर्भ में लक्षता गुप्ता का कहना है, '' विज्ञान–शिक्षण के उद्देश्य विज्ञान की विषय–वस्तु एवं उसके जीवन में उपयोग से होने चाहिए, जिससे हमारे राष्ट्रीय विकास में गति आए।''[15] जैसे समाज के आदर्श होंगे वैसे ही शिक्षा भी उन्हीं आदर्शों के अनुरूप होती है। शिक्षा में स्वतन्त्रता, समानता, सहकारिता तथा सहयोग आदि पर बल देकर व्यक्तिगत सामाजिक जीवन के आदर्शों को महत्त्व दिया जाएगा। उदा. भारत तथा इंग्लैण्ड, अमेरिका में लोकतंत्र है। सभी देशों में आदर्शों को प्रधानता देकर शिक्षा को विभिन्न अंगो की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।

देश की आर्थिक दशा शिक्षा को प्रभावित करती है। जिन देशों की आर्थिक दशा प्रशंसनीय देश है वहाँ की शिक्षा भी प्रशंसनीय होती है। आर्थिक दृष्टि से प्रगत देशों अधिक स्कूल खोले जाते हैं। उनके भवन में वायु, प्रकाश, धूप आदि को आने की व्यवस्था होती है। स्कूलों के पास फर्नीचर, प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय, वाचनालय, शिक्षण की सामग्री, खुले हुए खेल के मैदान होते हैं। साथ ही पाठ्यक्रम में विषयों को सम्मिलित होते है। जिससे देश आर्थिक दृष्टि से प्रगत बनता है। जिन देशों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं होती वहाँ की शिक्षा में आवश्यक परिवर्तन किया जाता है, जिससे देश की आर्थिक स्थिति में सुधार आ जाए।

भारत में वैज्ञानिक, व्यावसायिक, प्राविधिक, कृषि शिक्षा की व्यवस्था है जिससे देश की आर्थिक दृष्टि से विकास करें। धार्मिक विचारों तथा मान्यताओं का शिक्षा पर गहरा प्रभाव होता है। समाज धार्मिक दृष्टि से कट्टर होने पर बालकों के दिलों में अपने धर्म के प्रति श्रद्धा तथा अन्य धर्मों के प्रति घृणा उत्पन्न की शिक्षा दी जाएगी। जिस देश में विभिन्न धर्म पाए जाते हैं अथवा जो समाज विभिन्न धर्मो में विश्वास करते हैं, वे बालकों को बहुधर्मी सिद्धातों की शिक्षा देते हैं। भारत बहुधर्मिय देश है। अत: यहाँ पर किसी अमुक धर्म की कट्टरता के साथ शिक्षा न देते हुए भारत में बहुधर्मिय सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती है। सामाजिक दृष्टिकोण शिक्षा को प्रभावित करता है। समाज में रूढ़िवादी दृष्टिकोण करता है, तो केवल परम्परागत शिक्षा पर बल दिया जाता है। वहाँ पर नवीन सिद्धान्तों तथा नवीन प्रवृत्तियों को लागू किया जाता है। समाज का दृष्टिकोण प्रगतिशील है तो वहाँ पर शिक्षा में नवीन प्रवृत्तियों नवीन सिद्धान्तों नवीन शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है जिससे देश प्रगतिशील बन सके। सामाजिक आदर्शों प्रविधियों का विकास होता है, वैसे समाज में परिवर्तन होते हैं।

सामाजिक परिवर्तनों से शिक्षा में भी परिवर्तन होते रहते हैं। समाज की दशा बदलने पर शिक्षा के स्वरूप में भी तुरन्त परिवर्तन होता है। भारतीय समाज में परंपरा से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार केवल उच्च वर्ग के लोगों को ही था। सही अर्थ में अंग्रेजों के आगमन के बाद ही यहाँ की शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन हुआ और सर्वहारा वर्ग के लिए शिक्षा के द्वार खुल गए। आजादी के बाद इसमें और भी इजाफा हुआ लेकिन नवजागरण के बाद ही यह सब संभव हुआ। इन बदली हुई परिस्थिति के अनुसार शिक्षा भी बदल गई। समाज का शिक्षा पर प्रभाव होता है उसी प्रकार शिक्षा का समाज पर प्रभाव होता है। शिक्षा सामाजिक विरासत को सुरक्षित रखती है। प्रत्येक समाज के रीति–रिवाज, परम्पराएँ, ज्ञान–रूढ़ियाँ, नैतिकता ने परंपरा से लेकर आज तक ग्रहण किया है। प्रत्येक समाज को अपनी संस्कृति तथा सभ्यता पर इतना गर्व होता है वे अपनी संस्कृति को किसी भी मूल्य पर नष्ट नहीं होने देना चाहते है। शिक्षा वह बरकरा रखने में सहायता करती है। शिक्षा समाज की संस्कृति में है। विभिन्न साधनों के द्वारा सुरक्षित रखते हुए समाज के अस्तित्व में सहायता करती है। शिक्षा इस कार्य में सहायता न करने पर समाज पतन की ओर चला जाएगा।

व्यक्ति का समाज में रहते हुए अपनी उन्नति के साथ दूसरे व्यक्तियों की भी उन्नति कर सकता है। इसलिए व्यक्ति में सामाजिक भावना का विकसित होना आवश्यक है। और सामाजिक,

भावनिक विकास शिक्षा के द्वारा ही संभव है। यह कार्य स्कूल की सहायता से ही हो सकता है। मानव सामाजिक परिवेश में रहता हैं, सामाजिक क्रियाओं में भाग लेता है, जिसकी सहायता से उसमे सामाजिक भावना निर्माण होती है। सामाजिक भावना से समाजहित कर सकता है। जीवन में समाजहित के कार्यों को करते हुए समाज की भलाई को ही अपनी भलाई समझने लगते हैं। शिक्षा राजनीतिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संसार की विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं का ज्ञान हम शिक्षा के ही द्वारा मिल सकता है।

शिक्षा सामाजिक कुप्रथाओं को स्पष्ट करके इनके विरोध में जनमत तैयार करके नष्ट करने का प्रयास करती है। सामाजिक नियन्त्रण के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा सामाजिक नियन्त्रण न करने पर समाज की प्रगति नहीं हो सकती है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। हम देखते हैं कि आधुनिक विज्ञान तथा प्रविधियों के क्षेत्र में विभिन्न अनुसंधानों के परिणामस्वरूप आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है। शिक्षा इन अनुसंधानों का ज्ञान कराती है तथा इनके द्वारा होनेवाले लाभों पर प्रकाश डालकर इनका प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है । शिक्षा से समाज के विचारों, आदर्शों, मूल्यों तथा लक्ष्यों में परिवर्तन होता है ।

शिक्षा सामाजिक को बल देती है । व्यक्ति शिक्षित होकर वे सामाजिक कुरीतियों का ज्ञान प्राप्त करके उनमें आवश्यक सुधार भी करके समाज को उचित दिशा की ओर ले जाता है। शिक्षा समाज की प्रचलित कुरीतियों में आवश्यक सुधार करने पर बल देती है । शिक्षा का सामाजिकरण करके बालक समाज की संस्कृति को अपनाता है। शिक्षा और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है । स्पष्ट है की जैसी शिक्षा होती है वैसा समाज बनता है । शिक्षा के माध्यम से समाज अपनी विचारधाराओं, आकांक्षाओं, आदर्शों तथा आवश्यकताओं की प्राप्ति करता है। समाज का विकास व्यक्तियों के निरन्तर विकास पर निर्भर होता है। व्यक्तियों का विकास केवल शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है, इसीलिए व्यक्तियों का प्रथम कर्तव्य है कि वह उचित शिक्षा को प्राप्त करें।

समाज और देश विकास के लिए बालकों को उचित शिक्षा दी जाए और प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की जाए। इन्हें हर प्रकार की आर्थिक सहायता देने से बालको का सर्वांगीण विकास हो सकता है। दूसरे शब्दों में, स्कूलों को आर्थिक सहायता देना समाज का प्रथम कर्तव्य है। समाज और देश के विकास के लिए व्यावसायिक, औद्योगिक तथा तकनीकी स्कूलों को स्थापित करके प्रत्येक व्यक्ति को स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करके सामाजिक आर्थिक विकास में सहयोग देना चाहिए । ध्यान

देने की बात है कि, आज के वैज्ञानिक युग में जिस देश के अन्दर व्यावसायिक, औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था होगी वह देश उन्नति की दौड में आगे जाएगा। समाज का व्यक्तियों के मानसिक विकास हेतु अधिक से अधिक सार्वजनिक वाचनालयों तथा पुस्तकालयों की स्थापना करना चाहिए। साथ ही इनमें आवश्यक पुस्तकों, समाचार–पत्रों तथा पत्रिकाओं की उचित व्यवस्था करके जिससे जन–साधारण को देश–विदेश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।

समाज और देश के विकास के लिए वह विभिन्न इकाइयों का शिक्षा के कार्य में सहयोग लेकर परिवार, स्कूल, समुदाय तथा सामाजिक संस्थाएँ आदि शिक्षा के सभी साधनों को जागरूक करके उन्हें प्रेरणा प्रदान करे। समाज की संस्कृति तथा सभ्यता का संरक्षण करना आवश्यक है। समाज के रीति–रिवाज, परम्पराएँ, नैतिकता तथा आदर्श एवं भाषा आदि शिक्षा तथा संस्कृति के आधार होते हैं । इसलिए उनका संरक्षण करना। समाज की संस्कृति तथा सभ्यता का पोषण करना आवश्यक है। उसमें व्यक्तियों को समाज की संस्कृति तथा सभ्यता का सैद्धान्तिक ज्ञान देकर उन्हें इस प्रकार से तैयार करे कि वे इसे अपने जीवन में उतारकर आचरण करते रहे । वह समाज की संस्कृति तथा सभ्यता का विकास करे। यदि शिक्षा समाज की संस्कृति तथा सभ्यता का विकास करती है तो सामाजिक प्रगति हो जाएगी। व्यक्ति को प्रगती के पथ पर अग्रसर हो जाएगे । समाज की आवश्यकताओं को पूरा करना है । पर ध्यान देना आवश्यक है कि समाज की आवश्यकताएँ अलग–अलग होती हैं। देश, काल तथा परिस्थिती के अनुसार आवश्यकताएँ बदलती हैं। शिक्षा को समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं को पहचान कर उसको पूरा कर दे।

वह समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप सार पाठ्यक्रम में सुधार करना चाहिए। पाठ्यक्रम में सुधार करने पर तो वह व्यक्तियों को इस योग्य बना सकेगी कि वे चुनौतियों का मुकाबला करते हुए समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। बालकों की रचनात्मक कौशल्याधिष्टित शक्तियों का विकास करनेपर बल देता है । शिक्षा बालकों की रचनात्मक शक्तियों को विकसित करेगी तब समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण योग मिल सकता है। इस प्रकार शिक्षा से युवकों का रचनात्मक कौशल्याधिष्ठित शक्तियों का विकास हो सकता है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में अध्यापक का सामाजिक दृष्टिकोण इस प्रकार नजर आता है। आर्य समाजी रामलाल गाँव में स्कूल खोलने की व्यवस्था करते हैं। और वंशी

से कहते हैं कि वह अपने बच्चे को स्कूल भेजेगा। रामलाल के प्रयास से बस्ती में स्कूल तो खुल जाता है। लेकिन स्कूल में पढ़ाने के लिए कोई सवर्ण अध्यापक तैयार नहीं होता – ''वे सभी अध्यापक सवर्ण थे। जो सरस्वती वंदना करते थे। माथे पर तिलक लगाते थे। जनेऊ पहनते थे, चोटी रखते थे, गाय को माता कहते थे, सर्प को दूध पिलाते थे, कुत्तों को अपनी गोद में बिठाते थे, पर दलितों की परछाई से दूर भागते थे, उन्हे जानवरों, कीड़ों–मकोड़ों से प्रेम था, पर वे दलितों से घृणा करते थे। उनकी मानवता का दर्शन क्या था? कुछ समझ में नहीं आता था, वे ढोंगी थे, पाखंड की केंचुली पहन समाज में अपना कारोबार चलाते थे।''[16] इस प्रकार सवर्ण अध्यापकों का सामाजिक दृष्टिकोण दलितों के प्रति हीन था।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में सामाजिक दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास में शिक्षा के महत्त्व को बंसी ने जान लिया था, इसलिए बंसी अपने बेटे को पढ़ाना चाहता है , सुनीत भी हर साल अपनी कक्षा में नंबर एक से पास हो जाता है । वह अपनी कामयाबी की ओर बढ़ता था, इसके लिए सुनीत ने न जाने कितनी मुश्किलों का सामना किया था। लगता है जिस समाज को दूर रखा गया था उसी समाज से सुनीत पढ़ रहा है । स्कूल में सुनीत को अपमानित किया जाता है । सुनीत ने कक्षा में अपने स्कूल का नाम बताया था। उससे सुनीत के जाति का पता चला था। एक लड़के ने कहा था, ''भई यह स्कूल है कहाँ पर?''[17] सुनीत का कक्षा में अपमान हुआ था। जाति के कथन से बच्चों की हँसी ने सुनीत को जरूर अपमानित किया था, मगर समाज व्यवस्था से जातीय भावना को जड़ से उखाड़ने की योजना को बोया गया यही बीज आगे वटवृक्ष बना जाता है ।

सुनीत कक्षा में मेरिट के आधार पर स्कॉलरशिप का फार्म भरना चाहता था। अध्यापकों का कहना है, सुनीत के कुछ करने से पांडे उखड़ गया था। अब सुनीत और ब्राह्मण समाज की लड़की दोस्त सुमित्रा एक दूसरे के बगैर नहीं रह पाते थे। दोनों का मिलना सामाजिक बदलाव का प्रतीक है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था जाति–पाति से अभिशप्त हुई है। अगर इस जाति–पाति के दीवारों को तोड़ना है तो आज समाज में अंतर्जातीय विवाह की जरूरत है , जिससे 'जाति तोड़ो, समाज जोड़ो' यह आंदोलन आगे बढ़ेगा। लेखक कहते हैं, ''सुमित्रा पर स्वतंत्रता, समता, बन्धुता, न्याय के संस्कार थे। उनका परिवार खुशहाल था। जातियों के भयानक जंगल की सीमाओं मे केंद्र नहीं थे। वे उनके पिता काफी प्रगतिशील थे।''[18] इससे सामाजिक दृष्टिकोण नजर आता है ।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में सामाजिक दृष्टिकोण नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास का अध्यापक चंदन के माध्यम से सामाजिक दृष्टिकोण को लेखक ने उजागर किया है । चंदन अनेक आदर्श लेकर, पढ़ाने के लिए कॉलेज में आता है । उसे अनेक संकटों का सामना करना पड़ता हैं। वह छात्रों को सही राह दिखाकर समाज में बदलाव लाना चाहता है । वह स्वार्थी और भ्रष्ट अध्यापकों को सही–गलत की पहचान कराता है । गलत दृष्टिकोण के कारण समाज का नुकसान हो रहा है , इसे रूबरू कर देता है। वह छात्रों को अपनी ओर आकृष्ट करता है । इसप्रकार चंदन का सामाजिक दृष्टिकोण सकारात्मक नजर आता है ।

मदन दीक्षित द्वारा लिखित 'मोरी की ईंट' उपन्यास में अध्यापकों का सामाजिक दृष्टिकोण नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास में मिशनरी स्कूल का वर्णन आ गया है । अँग्रेजी साहित्य में फर्स्ट पोजीशन पाने के बाद जैकब शिक्षा की लाइन में आने की इच्छा व्यक्त करते हुए कहते है – ''मलिन बस्तियों कें तरफ जैसे रूप–रंग और उसमें बसने वालों की गरीबी, अशिक्षा, अज्ञान और आर्थिक–सामाजिक शोषण और उत्पड़ित की स्थिति दूर करने का विचार है।''[19] इस प्रकार सामाजिक यथार्थ यहाँ दिखाई देता है। उसमें जैकब और फलोरा अध्यापक है । वह ईसाई धर्म के प्रसार के साथ–साथ स्कूल चलाते हैं। उसके माध्यम से समाजसेवा करते रहते हैं। उनके स्कूल में गरीब से गरीब छात्र है । वह उनकी पढ़ाने की फी नहीं लेते। उनके स्कूल में रहना और खाना मुफ्त मिलता है । वह छात्रों को अपने लड़कों की तरह मानते हैं । वह स्कूल के माध्यम से उनका जीवन आनंदमय बनाते है । उनका करिअर समृद्ध करते हैं । इसप्रकार प्रस्तुत उपन्यास में अध्यापकों का सामाजिक दृष्टिकोण नजर आता है ।

मदन दीक्षित द्वारा लिखित 'मोरी की ईंट' उपन्यास में एक पात्र है 'रैवरेण्ड जोशी जो कटरा चर्चा के पादरी है।' लोग उन्हें फादर जोशी कहते हैं। जैकब को जातिगत संरचना के विषय में समझाते हुए अध्यापक के रूप में जोशी कहते हैं – ''बेटे! इस देश में ऊँची–ऊँची जातियों की भावना इतनी गहरी घुसी हुई कि इन्सानी बराबर की बात यहाँ बेमानी होकर रह गई है। अछूत और नीची कही जानेवाली जातियाँ भी इस बीमारी से अछूत नहीं है। जुलारे कुम्हारों का कुम्हार, धोबियों का धोबी, चमारों का चमार, खटीकों का खटीक मेहतरों को नीचा मानते हैं और कंजड़ के हाथ का छुआ खा लेने से तो मेहतर की भी जाति चली जाती है।''[20] इस प्रकार सामाजिक यथार्थ यहाँ दिखाई देता है।

4.4 अध्यापक का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण :

परंपरा से भारत में शिक्षा का आधार ही धर्म रहा है। मध्यकाल में पाठशालाओं मे धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। अंग्रेज शासकों ने धर्म और शिक्षा को दूर रखकर ईसाई धर्म के प्रसार–प्रचार की जिम्मेदारी ईसाई मिशनरियों पर दे दी । आधुनिक काल में भी आर्य समाज जैसी धार्मिक संस्थाएँ शिक्षा प्रसार में संलग्न दिखाई देती है। धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के कारण ही देश के युवकों का चारित्रिक विकास होता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान की धारा 20 में स्पष्ट कहा गया कि राज्य की कोई भी संस्था में जो पूर्ण रूप से राज्यकोष से प्राप्त धन से कार्य चलाती है, धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।

शासन को मान्यता एवं अनुदान प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नकारा गया है। साथ ही अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा संविधान की धारा 30 के अंतर्गत स्थापित शिक्षा संस्थाओं में आंड़बरों, अंधविश्वासों एवं कर्मकांडों से युक्त अपने धर्म विशेष शिक्षा प्राप्त करने हेतु दूसरे धर्मों के छात्रों को बाध्य करने से नकारा गया है। क्योंकि इससे विभिन्न धार्मिक संप्रदायों में वैमनस्यता बढ़कर राष्ट्रीय एकता को खतरा निर्माण हो सकता है । इसलिए धर्मनिरपेक्षता को संविधान में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है । इस संदर्भ में लक्षता गुप्ता का कहना है , ''धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है – सभी धर्मो के प्रति समभाव या आदर रखना और सभी को समान दृष्टि से तार्किक आधार पर विश्लेषित करना।''[21] किंतु वर्तमान धर्मनिरपेक्षता प्रणाली सचमुच धर्मनिरपेक्ष है? इसपर अब सोचने की जरूरत है।

संवैधानिक प्रावधानों का हमारी वर्तमान शिक्षा मे धार्मिक शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा का अभाव नजर आता है । उनमें नशा और नशीली दवाओं का प्रचलन बढ़ रहा है । वे बुरी आदतों के शिकार हो रहे हैं। इससे नागरिकों का चरित्र बल घटता जा रहा है । वे कुंठा और संघर्ष की भावनाओं से ग्रस्त होते जा रहे। उनमें सदाचार और सहिष्णुता घटती जा रही हैं इतना ही नहीं इससे विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के बीच द्वेष, घृणा और संघर्ष की स्थिति निर्मित होकर सांप्रदायिक संघर्षो का माहौल तैयार हो रहा । इससे राष्ट्रीय एकता, सद्भाव और शांति का खतरा उत्पन्न हो गया है । इससे निजात पाने के लिए विद्वान धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा पर बल दे रहे है। इसकी आवश्यकता प्रतिपादित करने के लिए तर्क दे रहे है । कोई भी विद्यालय जो अपने छात्रों के सर्वांगीण व्यक्तित्व

का विकास करने का प्रयास करता है वहाँ पर धर्म की शिक्षा दी जानी चाहिए, अनेक शिक्षा आयोग के अनुसार चरित्र निर्माण के लिए धार्मिक शिक्षा महत्त्वपूर्ण है।

छात्रों में बढ़ती अनुशासनसहिनता रोकने के लिए हमारी शिक्षा में नैतिक जीवन मूल्य आवश्यक है । कोठारी आयोग का स्पष्ट कथन है । शिक्षा के सब स्तरों पर छात्रों में उचित मूल्यों से परिचित करना आवश्यक है ।, जीवन में अहिंसा, बंधुता, धार्मिक और नैतिक शिक्षा को प्रधानता देनी चाहिए ।, उत्तरदायित्त्व की भावना, आत्मा गौरव, सत्यान्वेषण, निष्ठा जैसे अच्छे गुणों एवं आदतों का निर्माण बालकों को धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा देना आवश्यक है ।, भारतीय सभ्यता, संस्कृति और विरासत की रक्षा के साथ–साथ विश्व बंधुत्त्व की भावना के विकास के लिए धर्मनिरपेक्ष शिक्षा आवश्यक है ।

शिक्षा प्रणाली में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके लिए सभी शिक्षण संस्थाओं में प्रतिदिन शिक्षा कार्य प्रारंभ होने से पहले सभी शिक्षक और छात्र मिलकर समय के लिए मौन चिंतन करे।, डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष छात्र–छात्रों को विश्व के महान धार्मिक नेताओं बुद्ध, कनफुशियस, सुकरात, ईसा, शंकर, मोहम्मद, नानक, कबीर, रामानुज, गांधीजी आदि की जीवनियों से अवगत कराया जाए। डिग्री कोर्स के द्वितीय वर्ष में संसार की प्रसिद्ध धार्मिक पुस्तकों के वे भाग पढ़ाये जाए जो भी धर्म के समान हो।, तृतीय वर्ष मे धर्म एवं दर्शन प्रमुख समस्याओं का ज्ञान कराया जाए। उन्होंने धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा के लिए प्राथमिक, माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय स्तर के लिए अलग–अलग सुझाव दी जाए। प्राथमिक स्तर में धर्म प्रवर्तकों एवं नेताओं के बारे में रोचक एवं सरल कहानियाँ पढ़ाई जाए, सामुहिक ज्ञान सभा का आयोजन हो।, सेवाभाव को प्रोत्साहित किया जाए।, मुख्य धर्मो से संबंधित ललित कलाओं की दृश्य श्रव्य प्रदर्शनी का आयोजन हो।, शारीरिक शिक्षा को किसी ना किसी रूप से अनिवार्य बनाया जाए। अच्छे आचार व्यवहार पर विशेष बल दिया जाए। माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में प्रांतकाल प्रार्थना सभा का आयोजन करना चाहिए। संसार से प्रमुख धर्मों के महत्वपूर्ण सिद्धांतो की जानकारी दी जाए।, छात्रों को सामुहिक रूप से समाजसेवा का आयोजन करके छात्रों के अच्छे कार्य, अच्छे चरित्र एवं आचरण का उनके मूल्यांकन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाए। विश्वविद्यालयीन में विभिन्न धर्मों का सामान्य रूप से ज्ञान कराया जाए।, धर्मों की जानकारी एवं धार्मिक शिक्षा का शिक्षण प्रथम दो वर्षों में हो।, स्नातकोत्तरीय

स्तर पर विभिन्न धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया जाए। संस्था का माहौल ऐसा तैयार करना चाहिए कि छात्र–छात्रा स्वयं ही आचरण में धार्मिकता या कर्तव्य भावना को अपनाए।,

विद्यालय शिक्षा संस्था होने के कारण है धार्मिक आंडबरों को स्थान नहीं देना चाहिए ।, धार्मिक शिक्षा केवल सैद्धांतिक न हो उस पर अमल भी कराया जाए ।, विभिन्न धर्मो के विद्वानों को आमंत्रित कर उनके धर्म संबंधी चर्चा होनी चाहिए । प्राप्त ज्ञान, विचार, विद्वत्ता, नौकरी के लिए नहीं बल्कि जनसेवा के लिए होनी चाहिए। म. गांधी कहते थे, '' अधिक–से–अधिक ज्ञान प्राप्त कीजिए और वह भी नौकरियाँ पाने के खातिर नहीं, बल्कि जनता की सेवा के लिए कीजिए।''[22]

हमारा देश एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि शिक्षा में धर्म के मूल्य तत्वों की उपेक्षा की जाए । धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ धर्मविहीन राज्य नहीं सर्वधर्मसमभाव राज्य समझा जाना चाहिए। सर्वधर्म प्रार्थना से धर्म की अच्छी बाते का स्वीकार करना चाहिए। सभी धर्मो के प्रति आदरभाव जगाने का भी उद्देश्य निहित है। सर्वधर्म समभाव में धर्म निरपेक्षता का सभी धर्मो के प्रति समान आदर का भाव है।

विश्व के सभी धर्मो में न कोई बड़ा है न कोई छोटा है । अत: हमे सभी धर्मो से प्यार करना चाहिए। किसी धर्म से घृणा नही करनी चाहिए, हमे सभी धर्मो के सिद्धांतो, आदर्शों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। आचरण में उतारा गया धर्म ही मानव कल्याण में सहायक है । हमारी धार्मिक शिक्षा में नैतिक सदाचरण को विशेष महत्व दिया गया है। आज धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा को हमारी शिक्षा व्यवस्था का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास से यह स्पष्ट होता है कि परंपरा से सवर्ण समाज ने दलितों के प्रति धार्मिक कट्टरता दिखाई है । उनपर अन्याय होता रहा है । उन्हें जाति के नामपर जलील करके गुलाम बनाया गया था। लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में धार्मिकता को नकारकर धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को अपनाया गया है । इस उपन्यास का नायक चंदन उच्च शिक्षा प्राप्त करता है । अनेक संकटों के बावजूद आगे बढ़ाता है । वह धर्मनिरपेक्ष और सामाजिक आंदोलन चलाता है । वह कहता है, ''समाज धर्म द्वारा प्रेरित और संचलित है, हमारी सामाजिक स्थिति धार्मिक आदेशों का ही परिणाम है ।''[23] इसप्रकार चंदन धर्मनिरपेक्ष विचारों को प्रवाहित करना चाहता है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण नजर आता है । देवेश ठाकुर मार्क्सवादी विचारधारा के रचनाकार हैं। उन्होंने धर्मनिरपेक्षाता के तथ्यों पर ध्यान दिया है । प्रस्तुत उपन्यास में चंदन अपने मित्र को लिखे पत्र में जर्जरित धर्मिक व्यवस्था का चित्रण करते हुए कहते हैं कि ''ऐसा क्यों होता है की धर्मकेंद्रों में ही सबसे अधिक पाखंड और पाप पनपता है ? त्याग की भूमि पर सबसे अधिक जमाखोरी होती है ? मंदिरों के आस–पास की नाली में ही ज्यादा बदबू आती है ? क्या इसलिए कि पन्नम–पुष्पम नहीं सबसे ज्यादा सडते हैं ? ''[24]

भारतीय समाज धर्मप्रधान समाज रहा है । लेकिन इस धर्म के कारण शोषण के कई आयाम भी खुलते हैं । देवेश ठाकुर की मान्यता है कि इस देश में धर्म की जड़ें इतनी गहरी जमी हुई हैं कि जबतक उसकी फाँस से आम आदमी को मुक्त नहीं किया जाता तब तक वह आर्थिक, मुद्दों को अहमियत नहीं दे सकता। धर्म के पाखंडियों की एक बड़ी जमात ने बड़ा जबर्दस्त षडयंत्र चला रखा है। हमारे देश का गरीब जब तक अपनी गरीबी और गरीबी से पैदा होनेवाली मुश्किलों से मुक्ति के लिए भगवान के दरवाजे पर गुहार लगाता रहेंगा, तब तक यहाँ उम्मीद नहीं हो सकती और जब तक कोई दर्शन उसके सामने भगवान का विकल्प खड़ा नहीं कर देता।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में अध्यापक के धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण पर विचार हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में स्पष्ट होता है कि, पाठशाला मंदिर के समान होती है। लेकिन प्रस्तुत उपन्यास के अध्यापक शिवानंद शर्मा ने पाठशाला के नजदीक मंदिर तैयार किया था। वे स्कूल में और मंदिर में धर्मनिरपेक्ष की बड़ी–बड़ी बाते करते है। लेकिन उनके मन में धार्मिक कट्टरता दिखाई देती है। जब मंदिर में सुनीत और हबीबुला आते है तो वह क्रोधित हो जाते हैं। वह कहते हैं, ''एक मास काटनेवाला और दूसरा मांस खींचनेवाला है, भगवान ! हे भगवान सत्यानाश हो तुम्हारा, हमारा तो मंदिर ही भ्रष्ट हो गया।''[25] इसप्रकार धर्मनिरपेक्षाता का लिबास पहनकर धार्मिक कट्टरता अपना रहते है। इस उपन्यास के प्रधानाध्यापक सभी को समान न्याय देते हैं । जब स्कॉलरशिप फार्म की समस्या सुनीत के सामने खड़ी होने के बाद उसे न्याय देते हैं । अध्यापक पाण्डे विरोध करने के उपरान्त धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाकर सुनीत के पक्ष में खड़े हो जाते हैं ।

4.5 अध्यापक का अर्थविषयक दृष्टिकोण :

अर्थशास्त्र एक शिक्षा का अर्थशास्त्र बताता है कि कम से कम खर्च मे अच्छी –सी शिक्षा–व्यवस्था कैसे की जा सकती है । भारत जैसे अत्याधिक जनसंख्या वाले और सीमित वित्तिय साधनों वाले देश में प्रत्येक नागरिक की शिक्षा की सौगात अर्थशास्त्र पर ही निर्भर है । शिक्षा समवर्ति सूचि का विषय होने के कारण केन्द्र सरकार और राज्य सरकार अपने अपने क्षेत्र में अपनी अपनी शिक्षा नीतियों के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था करने में स्वतंत्र है । भारत में शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था के लिए केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारों अपने कुल बजट का लगभग 2.5 प्रतिशत खर्च कर सकती है । इसे 5 प्रतिशत तक बढ़ाने की आवश्यकता है । इस संदर्भ में डॉ. गार्गीशरण मिश्र का कहना है, ''केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारों के बजट में शिक्षा हेतु अधिक राशि का कम से कम कुल बजट के 5 प्रतिशत का प्रावधान किया जाए।''[26]

आज इतनी कम राशि में इतने बड़े देश की जिसमें स्वतंत्रता के सडसठ वर्ष बाद भी लगभग 47% प्रतिशत लोग निरक्षर है । उच्च शिक्षा माध्यमिक शिक्षा और प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना एक जबरदस्त चुनौती है । देश की शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था समाज के दान पर आधारित थी जब कि आज वह शासन के अनुदान पर निर्भर है। भारत में परंपरा से शिक्षा समाज सेवा का अंग था। तो आज वह व्यवसाय बन गया है। आज शिक्षकीय कार्य को निस्वार्थ समाज सेवा के रूप में करनेवालों की संख्या कम हैं । आज अधिकांश शिक्षक शिक्षकीय कार्य को जीविकापार्जन का व्यवसाय मानकर ही अपनाते हैं । निस्वार्थ दृष्टीकोण अध्यापकों के स्थान को उँचा उठाता है । जो शिक्षक अपने कार्य को निस्वार्थ भावना से एवं समर्पण भाव से करते हैं वे ही श्रेष्ठ अध्यापक है। आज अनेक शैक्षणिक संस्थान भारी शुल्क वसुल करते हैं, वे भी पूर्णत: व्यावसायिक ही हैं इन संस्थाओं में केवल अमीर अभिभावक के ही दाखिला लेते हैं और गरीब के बच्चे पहुँच से बाहर हैं । ऐसे संस्थाओं की तादाद भी बहुत कम है । इस प्रकार अध्यापक का अर्थविषयक दृष्टिकोण दिखाई देता है। वही दृष्टिकोण निम्नलिखित उपन्यासों में देखने को मिलाता है।

मदन दीक्षित द्वारा लिखित 'मोरी की ईंट' उपन्यास में अध्यापक का अर्थविषयक दृष्टिकोण नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास में अध्यापक जैकब और फ्लोरा आदर्शवाद के रूप में हमारे सामने आते हैं । उनका उद्देश्य पैसे कमाना नहीं है । उन्हें मिशनरियों द्वारा मिलनेवाला पैसा समाजकार्य

के लिए लगाते हैं । स्कूल के छात्रों को अपने बच्चे की तरह संभालते हैं । उन्हे निवास, खाना और शिक्षा आदि सुविधाएँ मुफ्त में मिलती हैं । यानि इन अध्यापकों का काम 'अर्थ ' कमाना न होकर मिले हुए 'अर्थ' से समाजकार्य करना है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में अध्यापक का अर्थविषयक दृष्टिकोण नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास का पात्र चंदन का प्रारंभिक जीवन अर्थ के अभाव में बीतता है । फिर भी अनेक संघर्षो के बावजूद परिवार की जिम्मेदारी निभाकर मुम्बई के कॉलेज में वह प्राध्यापक बन जाता है। नौकरी मिलने के बावजूद उसे आर्थिक अभाव का सामना करना पड़ता है । लेखक इन प्राध्यापकों की अवस्था पर लिखते हैं, ''मैं आजाद देश का अध्यापक ... ये कोट, यह पैंट, ये टाई। मैंने अपना पेट काट-काट इनको जोड़ा है । इनको खरीदने के लिए मुझे भूखा रहना पड़ा है। यदि मेरा वश चलता तो पेटभर खाता और क्लास में पढ़ाने के लिए नंगा आता। लेकिन नहीं.... अध्यापक को सभ्य होना चाहिए। वह भूखा भले ही रह ले लेकिन उसे कपड़े जरूर ही पहनने चाहिए।''[27] इसलिए अध्यापक की अर्थविषयक स्थिति पर लेखक ने प्रकाश ड़ाला है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में अध्यापक के अर्थविषयक दृष्टिकोण पर विचार हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में अध्यापक शिवानंद शर्मा को लेखक सामने लाते है । उसके माध्यम से परम्परागत ब्राह्मण वर्ग की मानसिकता को लेखक ने उजागर किया है । शिवानंद शर्मा ने अध्यापक होकर भी स्कूल के नजदीक मंदिर बनवाया है । इससे उन्हें दो तरफ से आर्थिक लाभ होते थे। लेखक लिखते है , '' नजदीक रहने से शर्मा को दो तरह की सुविधाएँ थीं, पहली मंदिर में आई दान-दक्षिणा के स्वयं ही लेते थे और दूसरी तरफ मंदिर उनका बैठकखाना भी था। वहीं वे ट्यूशन भी पढ़ाते थे।''[28] इसप्रकार अध्यापक आर्थिक फायदा उठाने के लिए काम करते है ।

4.6 अध्यापक का मानवतावादी दृष्टिकोण :

अध्यापक का मानवतावादी दृष्टिकोण राष्ट्र की विभिन्न जातियों, धर्मो के लोगों के भेद-भावों को मिटाकर सबको संवेगात्मक रूप से समन्वित करते हुए एकता के सूत्र से बाँधता है। मानवतावादी दृष्टिकोण राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपने पारस्परिक भेद-भावों को भूलकर राष्ट्र की आवश्यकताओं, आदर्श एवं आकांक्षाओं को समझने लगता है। भारत में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण सभी जातियों, धर्मो एवं

वर्गों के लोग इसके निवासी हैं। इसलिए राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा करना हमारा सामुहिक उत्तरदायित्त्व है। देश की यह रक्षा तभी सम्भव है जब हम अपने पारस्परिक भेद–भावों से ऊपर उठकर एकता के सूत्र में बंधकर अपने ह्दय में राष्ट्र प्रेम की ज्योति जलाना है। इसलिए नैतिक शिक्षा की आवश्यकता है। इस संदर्भ में के. के. भाटिया का कहना है, '' शिक्षा के कार्यक्रमों के साथ नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रमों के साथ ही रखना चाहिए और यह सभी अध्यापकों और संस्था का कर्तव्य हो कि वह इसकी सफलता के हित कार्य करे।''[29]

15 अगस्त सन् 1947 ई. से पूर्व भारत राजनीतिक दासता के बंधन में बँधा हुआ था। अंग्रेजों ने अपने राज्य के विस्तार एवं शासन को दृढ बनाने के लिए निवासियों में धर्म, भाषा तथा सामाजिकता के आधार पर फूट ड़ालने का प्रयास करके सफल भी हुए। जब हम भारतीयों में राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित करने पर एकता के सूत्र में बँध गए। अब जातियता, प्रान्तियता तथा साम्प्रदायिकता आदि अनेक विघटनकारी प्रवृत्तियाँ प्रबल हो रही है। इसी प्रकार आज अनेक स्थानों पर विघटनकारी प्रवृत्तियों के कारण अलग–अलग राज्यों की माँग हो रही है। साथ ही सरकारी नौकरियों में भी जातियता प्रान्तियता तथा साम्प्रदायिकता के आधारपर नियुक्तियाँ हो रही हैं, परिणामस्वरूप भारतीय जनतन्त्र खतरे में पड़ गया है । इसलिए आज देश के सभी निवासियों को विघटनकारी मनोवृत्तियों से बचाकर पुन: एकता के सूत्र में बंधना चाहिए। प्रत्येक नागरिक में एकता के संवेगों का विकास करना चाहिए ।

हमें पृथ्थकरण को बढ़ावा देनेवाले समस्त धार्मिक, भाषिक एवं साम्प्रदायिक संवेंगों को नकारकर राष्ट्रीय एकता का निर्माण करना चाहिए। हमें प्रान्तियता, साम्प्रदायिकता तथा जातियता की संकीर्णता से ऊपर उठकर भारतीय नागरिकों के बीच विभिन्नताओं में भावात्मक एकता की स्थापना करना चाहिए।

राष्ट्र में कोई परिवर्तन के लिए उस राष्ट्र की जनता के मस्तिष्क को बदलकर विकास किया जाए और यह काम केवल शिक्षा ही कर सकती है। भारत में राष्ट्रीय एकता का विकास करना है। शिक्षा की व्यवस्था ही प्रमुख शस्त्र है। हमारी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह भारतवासियों में राष्ट्रीय एकता का विकास अपनी जाति, धर्म, वर्ग आदि भेद–भावों को भूलकर सम्पूर्ण भारत का विकास हो। आज छात्रों में जनतन्त्रीय मूल्यों को विकसित करके भारतीय समाज के रीति–रिवाजों, परम्पराओं तथा विश्वासों के प्रति आदर की भावना उत्पन्न करना चाहिए। उनमें अभिरूचियों,

दृष्टिकोनों संवेगों का विकास करते हुए नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से व्यक्ति हर प्रकार के सांस्कृतिक सद्‌भावना निर्माण होकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय एकता बनी रहती है।

हमारा देश एक विशाल देश होने के कारण यहाँ सभी समूह तथा सम्प्रदायों की संस्कृतियों में विविधता पाई जाती हैं। प्रत्येक समूह तथा सम्प्रदाय के आदर्श, मूल्य, वेश–भूषा, रहन–सहन, रीति–रिवाज तथा परस्पराएँ एवं खान–पान के ढ़ंग अलग–अलग हैं। इस सांस्कृतिक विविधता के बावजूद उनमें समूहों तथा सम्प्रदाय में मनोमिलन बना रहता है। यह मनोमिलन राष्ट्रीय एकता कायम रखता है। जिससे देश की सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति हो रही है। आज सांस्कृतिक दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए विभिन्न संस्कृतियों के लोगों में एकता निर्माण करके भाई–चारे एवं सहयोग की भावना विकसित करके मानवसेवा ही ईश्वरसेवा माननी चाहिए। इस संदर्भ में डॉ. अरविंद रेडेकर का कहना है, ''समाजसेवा हीच ईश्वरसेवा' ही विचारधारा मानवतावादी दृष्टिकोनाचे प्रकटीकरण होय.''[30] (समाजकार्य यहीं ईश्वरकार्य, यह विचारधारा मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रकटीकरण है।) मानवतावादी दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण है। इसमें परस्पर भाई–चारे एवं सहयोग की भावना निर्माण हो जाती है। इन सब की भी संस्कृतियाँ अलग–अलग हैं जिसके कारण यह मनोमिलन जनतन्त्र की सफलता का मार्ग है। भारतीय जनतन्त्र को सफल बनाने के लिए मनोमिलन आवश्यक है, जो केवल अन्तर सांस्कृतिक भावना के विकास द्‌वारा ही सम्भव है।

आज विश्व में केवल सांस्कृतिक भेद–भाव के आधारपर ही झगड़े होकर नागरिकों का रक्तपात होकर राष्ट्रों की उन्नति पिछड रही है। इसलिए सांस्कृतिक सद्‌भावना को विकसित करने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा के द्‌वारा हम सब शिक्षा के द्‌वारा हमें छात्रों के सामने ऐसा वातावरण उपस्थित करना चाहिए जिसमें रहते हुए वे दूसरी संस्कृतियों को समझ सकें तथा उनका आदर कर सकें। हमारी शिक्षा के माध्यम से छात्रों का विकास करना चाहिए, जिससे वे अन्य सभी समूहो के साथ परस्पर सहयोग निर्माण कर एक नवीन संस्कृति का विकास कर सकते है।

छात्रों में सांस्कृतिक सद्‌भावना को विकसित करने के लिए अध्यापक का महत्वपूर्ण स्थान है। सांस्कृतिक सदभावना को वही अध्यापक विकसित कर सकता है, जिसका दृष्टिकोण व्यापक हो और अपने विषय के ज्ञान के अतिसत्य अन्य सभी समूहों की संस्कृति का पूर्ण ज्ञान हो। और वहाँ अध्यापकों को मानवतावाद धर्मनिरपेक्ष को बल दे सकता है। इस संदर्भ में मिर्झा गालिब कहते हैं,

''बस कि दुश्वार है, हर काम का आसाँ होना

आदमी को मयस्सर नहीं इन्सां होना।''[31]

इस प्रकार सांस्कृतिक सदभावना को विकसित करने के लिए अध्यापकों को सभी संस्कृतियों के प्रति सद्विचार एवं सद्भावना रखना आवश्यक है। सांस्कृतिक सदभावना को विकसित करने के लिए अनेक शैक्षिक कार्यक्रम होना आवश्यक है। स्कूलों में सांस्कृतिक गोष्ठियों का आयोजन किया जाना चाहिए। स्कूलों में किसी विशेष धर्म की शिक्षा न देकर सर्वधर्मसमभाव की शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षकों और छात्रों को सांस्कृतिक–मण्डलियों को राष्ट्र के विभिन्न भागों एवं विदेशों में भ्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे राष्ट्रीय एकता तथा भावात्मक एकता के साथ–साथ सांस्कृतिक सद्भावना बढ़ने में मद्द हो सकती है। पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को सम्मिलित किया जाए, जिनके अध्ययन से सांस्कृतिक सद्भावना का विकास हो सके।, छात्रों को विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान हो जाए।

सांस्कृतिक सद्भावना निर्माण होने के लिए स्कूल का कार्यक्रम आरम्भ होने से पूर्व प्रार्थना अथवा दैनिक एसेम्बली (परिपाठ)होनी चाहिए।, इस एसेम्बली में शिक्षकों अथवा बाहर से आमन्त्रित करके वक्ताओं द्वारा नैतिकता अथवा व्यक्तिमत्व विकास के विषय में रोजाना लगभग 10 मिनट मार्गदर्शन हो। भावात्मक एकता को विकसित करने के लिए शिक्षक में भी भावना विकसित होनी चाहिए। वही अध्यापक छात्रों में भावात्मक एकता का विकास कर सकता है जो जातियता, प्रान्तियता तथा साम्प्रदायिकता एवं धर्म और भाषा आदि दुषित प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की भावना से ओत–प्रोत हो।

सांस्कृतिक सद्भावना का अर्थ जिसके अनुसार व्यक्ति अपनी निजी संस्कृति के संकीर्ण दृष्टिकोण से ऊपर उठकर विभिन्न संस्कृतियों के उन समान तत्त्वों को अपनाना है। जिनके द्वारा विभिन्न संस्कृतियों को एक राष्ट्रीय संस्कृति में बाँधा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति के दृष्टिकोण से व्यक्ति अन्य सभी सांस्कृतियों के आदर्श मूल्य, रीति–रिवाजों परम्पराओं वेश–भूषा और भाषा आदि को अपनाने का प्रयास करता है। वह किसी संस्कृति को घृणित दृष्टि से न देखते हुए सभी संस्कृतियों का आदर करने लगता है।

सांस्कृतिक सद्भावना विकसित करने के लिए शिक्षा से राष्ट्रीय एकता की भावना अवश्य विकसित हो सकती है। जिससे संकीर्णता एवं भ्रष्टाचार का अन्त होकर राष्ट्र दिन–प्रतिदिन उन्नति कर

सकता है। भावात्मक एकता को विकसित करने के लिए शिक्षा परम आवश्यक है। भारत के केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने सन 1961 ई. में डॉ. संपूर्णानंद के अध्यक्षता में भावात्मक समिति स्थापित की जिसका उद्देश्य ऐसे सुझावों को देना था जिनसे सभी विघटनकारी प्रवृत्तियों का अन्त हो जाने उन्होंने कहा है कि, ''देश में एकता है और यह एकीकृत रहेगा भी, चाहे इसके निवासियों में कितनी ही विभिन्नताएँ क्यों न पाई जाएँ। पर आज राष्ट्रीय और भावात्मक एकता को बनाए रखने के लिए विघटनकारी प्रवृत्तियों को दूर रखनी आवश्यक है।'' शिक्षा मनुष्य जीवन को सफल बनाती है। इस संदर्भ में रमेश धानवी का कहना है, ''शिक्षा का जीवन से सीधा संबंध यदि अपनी पूर्ण जीवतन्त्र के साथ जुड़ा रहता है तो जीवन प्रतिपल पोषित होता है।''[32] भावात्मक एकता समिती ने नागरिकों में भावात्मक एकता को विकसित करने के लिए निम्नलिखित कार्य होना आवश्यक है।

प्राथमिक स्तर पर राष्ट्रीय गीतों तथा अन्य राष्ट्रीय गीतों, कविताओं तथा कहानियों को पढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए।, माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन, भाषा तथा साहित्य, नैतिक तथा धार्मिक निर्देशन एवं सहगामी क्रियाओं को मुख्य स्थान दिया जाए।, विश्वविद्यालय स्तर पर विभिन्न भाषाओं, साहित्यिक कृतियों, संस्कृतियों तथा कलाओं एवं सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन पर बल देकर अध्यापक और छात्रों को देश के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाए। पाठ्यक्रम सहभागी क्रियाएँ–विभिन्न स्तरों पर उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त ऐसी सहभागी तथा सांस्कृतिक क्रियाओं को भी प्रोत्साहित किया जाए जिन्हें राष्ट्र के दृष्टिकोण से परिचित किया जाए। पाठ्य पुस्तक – वर्तमान पाठ्य पुस्तकों में संशोधन एवं सुधार करके भावात्मक एकता के विकास में सहायता प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार मानवतावादी दृष्टिकोण की पैरवी शिक्षा ही कर सकती है। संक्षेप में प्रजातंत्र विश्वशांति वैज्ञानिक प्रगति, व्यक्तिस्वातंत्र्य धार्मिकता का अभाव, बुद्र्धिवादी दृष्टिकोण आदि सभी बातों का मानवतावाद में समन्वय होता है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में रामलाल में मानवतावादी विचार देखने को मिलता है। रामलाल ने वस्ती में बच्चों के लिए स्कूल खोला था। लेकिन स्कूल में बच्चों की उपस्थिति क्रम लेने पर मास्टर ने उन लोगों के नाम काटने शुरू कर दिए जो लोग स्कूल नहीं आते। एक दिन इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल उनके विद्यालय को चेक कर लेते है और लड़कों की उपस्थिति कम पाकर मास्टर जी से सवाल कर बैठते हैं। पर मास्टरजी संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते। वही बात जब मास्टरजी रामलाल से कहते है तब रामलाल कहते हैं, ''देखिए मास्टर जी जो लोग समय को नहीं

पहचानते वे खत्म हो जाते हैं। वे ही नहीं, उनके मूल्य उनकी परम्पराएँ और उनकी संस्कृति भी नियम, कायदे सभी कुछ ध्वस्त हो जाते है।''[33] मास्टर जी श्रीवास्तव जाति के होने कारण बच्चों के प्रति, स्कूल के प्रति सहानुभूति नहीं थी। इसलिए वे भी बच्चों के नाम काटने में हिचकते न थे। क्योंकि वे भी तो यही चाहते थे कि वे बच्चे न पढ़े न लिखें । इस प्रकार मास्टर श्रीवास्तव अध्यापक का छात्रों के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण देखने को नहीं मिलता है। जो रामलाल जैसे समाजसुधारक में देखने को मिलता है।

मनुवादी व्यवस्था में परंपरा से दलित समाज को शिक्षा प्रणाली से दूर रखा। वर्तमानकाल में म. फुले, राजर्षी शाहू, डॉ. आंबेडकर की प्रेरणा से दलित समाज शिक्षा प्राप्त कर रहा है। जिससे उनके जीवन में रोशनी आ गयी है। उनमें जागृति आ गयी है। वे शिक्षित बनकर अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढ़ रहे हैं। महापुरूषों के मानवतावादी विचारों से अब दलित समाज प्रगति कर रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में रामलाल पर इन महापुरूषों का प्रभाव है। वह मानवतावादी विचारों को अपनाकर समाज में परिवर्तन लाना चाहता है। सुनीत को प्रोत्साहित करते हुए रामलाल कहता है, ''चल बेटे तेरे पिता ने इतना अच्छा नाम रख दिया अब तू भी पढ़-लिखकर अच्छा बनना।''[34] इसप्रकार रामलाल मानवतावादी विचार प्रवाहित करना चाहता है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में मानवतावादी विचार नजर आते हैं। प्रस्तुत उपन्यास का नायक चंदन अनेक समस्याओं का सामना करता है। फिर भी उसमें मानवीय संवेदनाएँ खत्म नहीं होती। वह पूरे परिवार की जिम्मेदारी उठाता है । साथही आम आदमी के प्रति सहानुभूति रखता है। ''चंदन के मन में सामान्य मानव के प्रति संवेदना और मानवता नजर आती हैं। है। इसलिए वह किसी को दुखी देख कर स्वयं बेचैनी अनुभव करता हुआ नजर आता हैं।'' ''वह कॉलेज में चल रहे षड़यंत्र और राजनीति का विरोध करता है। अध्यापक अपना दयित्व पूरी तरह नहीं निभाते इसलिए वह बेचैन है । अपने छात्र दिशाहीन हो रहे हैं ''[35] इसलिए परेशान है । इसप्रकार चंदन में हमें मानवतावादी विचार दिखाई देते हैं।

सत्यप्रकाश के 'जस तस भई सबेर' उपन्यास में मानवतावादी विचार नजर आते हैं। प्रस्तुत उपन्यास का रूपलाल में मानवतावादी विचार नजर आता है। वह देखता है कि समाज दिशाहीन हो गया है। उनमें अंधविश्वास काफी मात्रा में है। उनमें शिक्षा की कमी है । परंपरागत मिथकों से लिपटे हुए हैं । वह गलत धारणाओं को नकारकर मानवतावादी विचारों से सबको अवगत करना चाहता है ।

रूपलाल आवाहन करता है कि, ''हमें समाज में व्याप्त मिथकों को तोड़ना होगा। कोरे बुद्धिवाद से निपटना होगा। संकीर्णताओं एवं कुलुषभावों को त्यागना होगा। कल्याणमित्र बनना होगा और इसके लिए हमें सर्वप्रथम तमसभरी रात्रि को चीरकर प्रकाश की ओर बढ़ना होगा। अपनी प्रज्ञा और शक्ति को पहचानना होगा। अपनों की परिभाषा को बदलना होगा। तभी हम सबका और समस्त समाज का कल्याण संभव है।''[36] इसप्रकार रूपलाल मानवतावादी विचार सामने लाते हैं।

4.7 अध्यापक का राष्ट्रीय दृष्टिकोण :

राष्ट्रीय एकता में एक ही भू–भाग के निवासी या एक ही देश के नागरिक होने का गौरव, समान सांस्कृतिक परंपराओं सामाजिक प्रथाओं में आस्था, पारम्पारिक आत्मीयता की भावना तथा देश के प्रति सम्मान के भाव का समावेश होता है। इसमें अलग–अलग खान–पान, वेशभूषा, रंग, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, धर्म आदि के बावजूद राष्ट्रीय एकात्मता प्रबल होती है। हमारी राष्ट्रीय भावना जितनी प्रबल होती है, उतनी ही वह विभिन्नताओ से उत्पन्न होने वाली अलगाव की भावना को नष्ट करने में सक्षम होती है । ऐसी ही स्थिति में हमें भारत में विभिन्नताओं में एकता के दर्शन होते हैं। भारत विभिन्नताओं का देश है। युद्ध के दौरान हमारी राष्ट्रीयता की भावना, राष्ट्रीय एकता की भावना ही सारे देशवासियों को अपने समस्त भेदभाव भुलाकर एकता के सूत्र में बाँधने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार विभिन्नता में एकता भारत की प्रमुख विशेषता यह हमारे लिए एक सुखद का विषय है। ठीक उसी तरह जैसे एक ही उपवन के रंग–बिरंगे फूल उसकी शोभा घटाते नहीं, बढ़ाते हैं और अधिक आनंद प्रदान करते हैं। विभिन्नता शोभा की वस्तु न होकर भेदभाव की भावना जगाकर समाज में विभाजन का आधार बन सकती है। हमें अपनी विभिन्नताओं को अपनी शक्ति बनाना है। इसलिए विभिन्नताओं में एकता यह कार्य शिक्षा के माध्यम से सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

हमे एक आदर्श नागरिक के रूप में राष्ट्र के हित के लिए स्वार्थ का त्याग देना चाहिए। छात्र–छात्राओं को शिक्षा के माध्यम से यह सिखाया जाना चाहिए कि वे क्षेत्रीयता के विचारों को त्यागकर राष्ट्रीय हित को महत्व देना चाहिए। हमें क्षेत्रीयता के संकुचित विचारों से निकलकर राष्ट्रीयता के विशाल विचारों को अपनाना चाहिए। सभी धर्मों के त्यौहारो को मिल–जुलकर मनाकर छात्र–छात्राओं को बताना चाहिए कि धर्म, तोड़ने वाली नहीं, जोड़ने वाली शक्ति है। जातियों के बीच ऊँच–नीच

का भेदभाव करना गलत है। हमारे पूर्वजों ने पेशा या गृह उद्योग को आधार मानकर जातियों का निर्माण किया था। कोई पेशा या गृह उद्योग अपने आप में बुरा नहीं होता। अत: पेशों या गृह उद्योगों के आधार पर जातियों के बीच ऊँच–नीच का भेदभाव करना उचित नही। हमारा प्रयास छात्र–छात्राओं को यह समझाना होगा कि जाति–पाति तो रहे, उनसे जुड़े हुए पेशे या गृह उद्योग भी फले–फूले पर जातियों के बीच ऊँच–नीच का भेदभाव करना गलत हैं। हमारी और संपूर्ण देश की भलाई हो सकती है।

भारत में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं। उनमें से 14 भाषाओं को हमारे संविधान ने मान्यता दी है। एक भाषा बोलनेवाले लोग अपने को एक दूसरे के अधिक नजदीक महसूस करते है। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे दूसरी भाषाएँ बोलने वालों से कटूता महसूस करें। हमे सभी भाषाओं के प्रति प्रेम दिल में रखकर भारतीय होने के नाते हमें हर एक को भाई के समान समझना चाहिए।

भारत की सभी भाषा बोलनेवालों को एक–दूसरे के निकट संपर्क में आना चाहिए इससे राष्ट्रीय एकात्मता बढ़कर वे दूसरे के नजदीक आयेंगे। भारतीय संविधान ने हिन्दी को देश की संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा करके हिन्दी को यथाशीघ्र, उच्च और तकनीकी शिक्षा का माध्यम, उच्च एवं उच्चतम न्यायालय में बहस का माध्यम चयन परीक्षाओं का माध्यम बनाया जाना चाहिए। हिदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाकर देश के सभी भाषा विवादों को समाप्त किया जा सकता है । इस संदर्भ भारतीय शिक्षा आयोग का कहना है, ''स्वतंत्रता–प्राप्ति से भारत जिन समस्याओं का सामना कर रहा है उनमें भाषा की समस्या अत्यंत जटिल सिद्ध हुई है और आज भी यह जटिल बनी हुई है । नए कारणों से शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक माध्यम से इसका शीघ्र एवं संतोषजनक हल निकालना बहुत जरूरी है।''[37] राजनैतिक दल स्वार्थ और सत्ता के मोह से ऊपर उठकर सब क्षेत्रों में, विकास की बात सोचकर, मनुष्य–मनुष्य के बीच समानता का लक्ष्य प्राप्त करे। गरीब–अमीर साक्षर, निरक्षर का कलंक मिटाया जाए जिससे अनपढ़ और पढ़े–लिखे के बीच की दूरी खत्म किया जाए। इस प्रकार समाज में आज एक नया प्रवाह पनपने लगा है।

आज जीवन मूल्यों का शिक्षा महत्त्वपूर्ण माध्यम है। आज राष्ट्रीय एकता को बढ़ानेवाली सांस्कृतिक, साहित्यिक गतिविधियाँ की ऐसी प्रतियोगिताएँ छात्र–छात्राओं के बीच विभिन्न स्तरों पर आयोजित की जाना चाहिए। ये गतिविधियाँ विभिन्नता से एकता की ओर जा सकती है। संगठित होने पर हम विजयी होते हैं और विभाजित होने पर पराजित। इसलिए संगठित होकर राष्ट्रीय एकता से देश

का विकास करना है। राष्ट्रीय एकता के लिए शिक्षा के माध्यम से शीघ्र सधन प्रयास करने चाहिए। हमारी वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था में राष्ट्रीय एकता की शिक्षा के लिए ठोस प्रयास करने चाहिए। हमें राष्ट्रीय एकता के लिए शिक्षा को अनिवार्य अंग बनाना होगा। इसलिए शिक्षा में विभिन्न भाषाओ की पाठ्यपुस्तकों में राष्ट्रीय एकता से संबंधित 13 गाभा घटकों का, युनोस्को द्वारा निश्चित किए गये जीवन मूल्यों का पाठों में समावेश सुनिश्चित किया जाए । इस संदर्भ में के. के. भाटिया का कहना है, ''राष्ट्र के प्रति 'अपनत्व' एवं 'ममत्व' की भावना ही राष्ट्रीय एकता का आधार है ।''[38]

वर्तमान बोझिल पाठ्यक्रम बदलकर सकारात्मक विषय सामने लाए। सभी कक्षाओं की भाषाओं की पाठ्यपुस्तकों में राष्ट्रीय एकता की शिक्षा दी जाए। इसलिए निम्नांकित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए– धर्मनिरपेक्षता या सर्वधर्म समभाव– भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ धर्मविहीनता नहीं, सर्वधर्म समभाव है। लेकिन छात्र–छात्राओं में सभी धर्मो के प्रति समानता और आदर का भाव जागृत किया जाना चाहिए। सभी धर्म, ईश्वर तक पहुँचाने के रास्ते हैं। इनमें कोई बड़ा–छोटा, अच्छा–बुरा न होकर अपनी आस्था और विश्वास के अनुसार कोई एक धर्म स्वीकार कर सकता है। उस धर्म के अनुकूल आचरण से और सदाचार से उसे इच्छित स्थल तक भी पहुँचा देगा। सभी धर्म के लोगों का सभी धर्मो के प्रणेताओं के प्रति आदरभाव होना चाहिए। तभी सही रूप से धर्मनिरपेक्ष विचार यशस्वी होते नजर आएगें।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में भी अध्यापक का राष्ट्रीय दृष्टिकोण नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास में अध्यापक का राष्ट्रीय दृष्टिकोण नकारात्मक नजर आता है। अध्यापक का यह दायित्त्व होता है कि वह अपने छात्रों को योग्य दिशा की ओर ले जाए। उन्हें प्रगति का रास्ता दिखाकर योग्य मार्गदर्शन करें। लेकिन इस उपन्यास से स्पष्ट होता है कि प्रोफेसर त्रिवेदी जैसे अध्यापक टाईम–पास करने के लिए आते हैं । क्लास में जोक करते बैठते हैं । उन्हें पढ़ाने में रूचि नहीं है । ऐसे–वैसे करके पाठ्यक्रम पूरा कर देते हैं । वह प्रशासन और संस्थाओं की हाँ में हाँ मिलाते रहते हैं, भले वह गलत क्यों न हो। वे स्वार्थी और भ्रष्ट बने हुए हैं। इस संदर्भ में नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''आज के आत्मकेंद्रित, स्वार्थी, अवसरवादी, भ्रष्टाचारी, पतित अध्यापकों की पोल खोलकर उन्हें सबके सामने लाने में लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। ''[39] इसप्रकार अध्यापकों का राष्ट्रीय दृष्टिकोण आदर्श न होकर दिशाहीन है जिससे राष्ट्र का नुकसान हो रहा है ।

तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में अध्यापक आसना में राष्ट्रीय दृष्टिकोण नजर आता है। वे सदैव छात्रहित, समाजहित और राष्ट्रहित देखते हैं। इस उपन्यास के नायक गिरिशकुमार को वे योग्य मार्गदर्शन करते हैं । गिरिशकुमार भी आसना सर को गुरू मानते हैं। गिरिशकुमार का पहला नाम पीलादास था। पीलादास चमार से जात उसके नाम से जुड़ जाती है । इसलिए आसना सर परेशान हो जाते हैं । वे अपना नाम बदलकर गिरिशकुमार रखते हैं । इस संदर्भ में प्रा. डॉ. क्षितिज धुमाळ का कहना है , ''पीलादास एक होशियार छात्र होने के नाते पीलादास के व्यक्तित्व का प्रभाव उसके नाम के साथ बढ़ाने के लिए आसना सर उसके माँ–बाप द्वारा दिया गया नाम 'पीलादास चमार' बदलकर 'गिरिशकुमार' रखते हैं ।''[40] इसप्रकार छात्र विकास के माध्यम से राष्ट्र विकास करने का काम आसना सर करते है ।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में राष्ट्रीय दृष्टिकोण दिखाई देता है । प्रस्तुत उपन्यास के रामलाल में राष्ट्रीय दृष्टिकोण नजर आता है । वह सदैव राष्ट्रहित के बारे में कार्य करते हैं । वे सदैव गरीब वर्ग के विकास के लिए प्रयास करते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में चमार बस्ती में वे अनेक प्रयास करके स्कूल शुरू करते हैं । इससे सभी में खुशी की लहर दौड़ जाती है । कुछ दिन स्कूल का कामकाज अच्छा चलता रहा। पर जब बच्चे माँ–बाप के काम में हाथ बटाने लगे तब उनका स्कूल जाना कम हो गया। इससे अध्यापक बच्चों के नाम स्कूल से काटना शुरू कर देता है। तब रामलाल उन्हें परिस्थिति से वाकिफ कर देते हैं । वे कहते हैं – ''इस बस्ती के बच्चे पढ़ नहीं पाएँगे और हमारी बरसों की मेहनत पर पानी फिर जाएगा। उनकी स्थिति को समझो, वे गरीब हैं । बच्चे रोजगार और कामधंधों में अपने माता–पिताओं की मद्द करते हैं । हमें ऐसे बच्चों की मद्द करनी चाहिए।''[41] इसप्रकार रामलाल में राष्ट्रीय दृष्टिकोण नजर आता है ।

4.8 अध्यापक का छात्रविषयक दृष्टिकोण :

अध्यापक का क्षेत्र आदर्श होने के कारण छात्रों को बेहतर मनुष्य बनाकर भावी चुनौतियों के लिए तैयार करता है । आदर्श अध्यापक पाठ्यक्रम को समुचित तरीके से पढ़ाने के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवेश से परिचित करता है। आज आदर्श अध्यापक के लिए ज्ञानरचनावादी, बालकेंद्रीत, कौशलधिष्ठित पद्धति अपनाना जरूरी है । अध्यापक के

छात्रविषयक दृष्टिकोण के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं। आज बाहरी परीक्षा के लिए छात्रों को तैयार करके समय–समय पर मौलिक और लिखित रूपों में आंतरिक परीक्षाएँ लेनी चाहिए जिससे बाह्य परीक्षा का भय दूर हो जाता है। प्रत्येक दिन जो विषय पढ़ाया गया है। उनके बारें में छात्रों से पूछा जाना चाहिए कि कितने छात्रों ने उसे समझ लिया है । कुछ छात्रों की समझ में विषय नहीं आया है तो उसे पुन: विषय समझाना चाहिए। इसके साथ–साथ तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछे जाने चाहिए। छात्र की क्षमताओं के अनुसार अध्यापन करना चाहिए। कृतिकार्यक्रमों के साथ–साथ आकारिक मूल्यांकन के 8 साधन तंत्रों में से 5 साधनों का उचित प्रयोग अध्यापन करते समय करना चाहिए। जिसके माध्यम से छात्रों का संख्यात्मक मूल्यांकन के साथ साथ गुणात्मक मूल्यांकन भी होगा। जिससे छात्र के व्यक्तित्व का विकास सही दृष्टि से दिखाई दे।

अध्यापक का दायित्व है कि छात्र को सीखने के प्रति रूचि बढ़ाकर अध्यापन का कार्य करना चाहिए। इस संदर्भ में सुभाष शर्मा का कहना है, ''आदर्श शिक्षक का यह दायित्त्व है कि वह विद्यार्थियों से सीखने के प्रति प्रबल इच्छा एवं रूचि पैदा करे। ऐसा करने के लिए शिक्षक को बाल–मनोविज्ञान समझना पड़ेगा। जिस विषय में बच्चों की अधिक रूचि है, उसी से शिक्षा कार्य शुरू करना चाहिए और उससे जोड़ते हुए बाद में गंभीर एवं जटील चीजें पढ़ानी चाहिए।''[42] इसप्रकार रूचि के अनुसार अध्यापकों को छात्र को पढ़ाते समय छात्र के मन में जिज्ञासा निर्माण करनी चाहिए। उसे अधिक से अधिक सवाल पूछने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना चाहिए। अध्यापक को किताब ज्ञान के साथ–साथ जीवन के दैनिक व्यवहार ज्ञान से अवगत होकर छात्रों को लाभ देना चाहिए। छात्रों को अधिक से अधिक क्षेत्र में सहभाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। उदा. खेलकूद, स्पर्धापरीक्षा आदि।

छात्र और अध्यापक के बीच सदैव अंत:क्रिया होने पर छात्र की गुणवत्ता बढ़ने में मदद हो सकती है । इस संदर्भ में सुभाष शर्मा का कहना है, ''शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच सतत एवं सक्रिय अंत: क्रिया स्थापित की जानी चाहिए अर्थात जिस विषय को किसी अध्यापक ने पढ़ाया हो, उस गुणवत्ता के स्तर को सभी छात्र प्राप्त कर ले यह प्रयास किया जाना चाहिए। इसके अलावा विद्यार्थियों में परस्पर अंत:क्रिया के लिए भी प्रेरित करना चाहिए।''[43] अध्यापक को स्कूल में सुयोग्य तालमेल बनाकर रखना चाहिए। क्योंकि छात्र विभिन्न परिवेश से आ जाते हैं । छात्रों द्वारा दिए गलत जवाबों को सुधारात्मक सुझाव दिया जाना चाहिए। जिससे भविष्य में प्रगति कर सकें।

अध्यापक को छात्रों में सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक शक्ति विकसित करने हेतू समस्या हल करने हेतु समय–समय पर विचार–मंथन सत्र चलाना चाहिए, जिससे उनमें वैज्ञानिक सोच निर्माण हो सके। इसप्रकार छात्र केंद्रित और बाल स्नेही दृष्टिकोण रखकर अध्यापक को कार्य करना चाहिए। इसके लिए ज्ञानसंरचनावाद को अपनाते हुए अध्यापन कार्य करना चाहिए। अध्यापक का कक्षाओं में पढ़ाते समय आदर्श आचरण होना चाहिए।

अध्यापक समाज को दिशा देने का काम करते है। अध्यापक को समदर्शी होना चाहिए। उसे किसी व्यक्ति या समूह से जाति, धर्म, भाषा, वंश, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव न करते हुए हर एक के क्षमताओं के अनुसार सिखाना चाहिए। अध्यापक को छात्रों के साथ सहज संवाद कायम करने की ललक होनी चाहिए। वह छात्र–छात्राओं के साथ समान सकारात्मक व्यवहार करना चाहिए। उसमें परंपरागत गलत धारणाओं को खारिज करने का साहस होना चाहिए । उसमें समाज के विकास के लिए प्रगतिशील मूल्यों और विचार को अपनाने की क्षमता होनी चाहिए। वह स्वयं गहन रूप से अध्ययनशील होना चाहिए। इस संदर्भ में रवींद्रनाथ टागौर का कहना है , ''एक शिक्षक कभी सच्चाई के साथ नहीं पढ़ा सकता जब वह स्वयं नहीं सीखता हो। अध्ययनशील बने रहकर ही जगत् की अन्य शिक्षण पद्धतियों में हो रहे अनुसंधानों को वे अपनी शिक्षा पद्धति में लाने का और तुलनात्मक ढंग से विकसित करने का सफल प्रयास करेंगे।''[44] अध्यापक का दायित्त्व है कि छात्र जीवन के अंधकार को दूर करके प्रगति का रास्ता दिखाए। अध्यापक को छात्रों की रूचि, व्यक्तिगत भिन्नता, संवेदना, आकांक्षा, आवश्यकता आदि का खयाल करना चाहिए। उसे छात्रों की सहमति से उनकी व्यक्तिगत समस्याओं से लेकर शैक्षिक समस्याओं पर मार्गदर्शन करना चाहिए। अध्यापक को कम से कम चीजों से अधिक से अधिक उपयोगिता हासिल करने की कोशिश करनी चाहिए। उसे विषम परिस्थितियों में भी शिक्षण कार्य उपयोगी, आनंदपूर्ण और रूचिपूर्ण लगना चाहिए।

अध्यापक के छात्र में चिंतन और मनन करने की प्रवृत्ति विकसित करना चाहिए। साथही उसे अध्यापन करते समय शिक्षण संसाधन का सुयोग्य प्रयोग करना चाहिए। अध्यापक को छात्र के सामने सुयोग्य आचरण करके छात्र के विकास के लिए सतत सर्वंकष मूल्यांकन करना चाहिए। उनके साथ प्रभावी संप्रेषण का प्रयोग करके गतिविधि आधारित सीखने की पद्धति का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार अध्यापक को छात्र के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में अध्यापक का छात्र विषयक दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास चंदन मुम्बई के सरकारी कॉलेज में पढ़ाते हैं। वह अपने पढ़ाने का दायित्त्व पूरी तरह से निभाते हैं। छात्रों को योग्य मार्गदर्शन करते हैं, लेकिन अनेक अध्यापक पढ़ाई कम तनख्वाह अधिक लेते है। इस उपन्यास के प्रोफेसर त्रिवेदी सिर्फ क्लास में जोक मारकर समय निकालते है। प्रोफेसर बोरा अध्ययन के विरोधी हैं। उनके बारे में नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''प्रोफेसर बोरा जैसे अध्ययन–अध्यापन विरोधी अध्यापक फ्रेंच के प्रोफेसर हैं। कॉलेज में फ्रेंच नहीं है, अत: अंग्रेजी पढ़ाते है, गुजराती – अंग्रेजी सब चलता है।''[45] इसप्रकार इन अध्यापकों का छात्र–विषयक दृष्टिकोण नकारात्मक नजर आता है।

गिरीराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में अध्यापक का छात्र–विषयक दृष्टिकोण दिखाई देता है। इस उपन्यास में कानपूर के आई.आई.टी. संस्थान का चित्रण है। इस संस्थान में अध्यापक को राष्ट्रीय विकास के लिए नियुक्त किया जाता है पर यहाँ अध्यापक भेद करते नजर आते हैं। वह उच्च जाति के छात्रों को सहायता करते हैं और निम्न जाति के छात्रों पर अन्याय करते हैं। यह अध्यापकों का गलत दृष्टिकोण है। इस संदर्भ में नीता पांढरीपांडे का कहता है, ''तथाकथित निम्न जाति के छात्रों के साथ शिक्षा की महान संस्थाओं में भी किसप्रकार दुर्व्यवहार होता है। उसका चित्रण बहुत मार्मिक ढंग से करने में लेखक पूर्णत: सफल हुए है।''[46] इसप्रकार उच्च शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक छात्रों के संदर्भ में मतभेद करते नजर आते हैं।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में अध्यापक का छात्रविषयक दुषित दृष्टिकोण दिखाई देता है। प्रस्तुत उपन्यास में सुनीत हाई स्कूल की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास होता है। वैसे तो वह अपने स्कूल में टाप करता लेकिन स्कूल के कुछ अध्यापकों ने उसके परीक्षा परिणाम के साथ हेराफेरी की थी। इसलिए उसका स्थान दूसरा आया था। पहले स्थान पर किसी ब्राम्हण के लड़के को रखकर टाप करा दिया गया। जब यह बात सुनीत को समझ आती है तो उसे बेहद अफसोस होता है– ''सुमित्रा के मुँह से यह सब बात सुनकर सुनीत को ऊबकाई सी आने लगी थी। जब अध्यापक ही ऐसी बात सोचेंगे तो फिर उसने कई बार किताबों में पढ़ा था। अध्यापक देश के निर्माता होता हैं। क्या ऐसे ही अध्यापक देश के निर्माता होते है! कैसा निर्माण करते हैं वे देश का उसके मन के भीतर बार–बार सवाल पर सवाल उठ रहे थे।''[47] इस प्रकार अध्यापक का सुनीत के प्रति जातीयवादी, पूर्वग्रहदुषित दृष्टिकोण देखने को मिला है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में अध्यापक का छात्र–विषयक दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास में अध्यापकों का छात्र–विषयक जो दृष्टिकोण है, वह स्पष्ट होता है। सुनीत के स्कूल में अध्यापक की मानसिकता जातियवादी थी। इससे सुनीत को अपमानजनक स्थिति से गुजरना पड़ता है। फिर भी वह संघर्ष करके अध्यापक बनता है। वह अध्यापक बनने पर उसका दृष्टिकोण मानवतावादी और आदर्शवादी है। अध्यापक बनकर अपने बस्ती में आता है। इस संदर्भ में विकास विधाते का कहना है, ''जिस समाज ने उनका पढ़ने का अधिकार छीना था उसी समाज में सुनीत अध्यापक बन पढ़ाने आया था।''[48] वह शिक्षा के माध्यम से गलत धारणाओं का खंडन करके समाज परिवर्तन करना चाहता है। इसप्रकार प्रस्तुत उपन्यास में अध्यापक का छात्र–विषयक दृष्टिकोण नजर आता है।

सुनीत अपनी योग्यता के अनुसार स्कॉलरशीप का फार्म भरना चाहता है तो ब्राम्हण जाति का अध्यापक उसे जाति के आधार पर स्कॉलरशीप का फार्म भरने के लिए दबाव ड़ालता है। करतारा के बेटे को इसलिए दाखिला नहीं दिया जा रहा है कि स्कूल में झाड़ू कौन लगाएगा। जब करतारा विनम्रतापूर्वक आग्रह करता है और कहता है कि ''आपकी मेहरबानी से बच्चा पढ़ जाएगा तो पांड़े मास्टर अपना ब्राम्हणवादी चेहरा दिखाई देता है। पहले तुम लोगो ने मंदिर भ्रष्ट कर दिये और अब स्कूलों में भी गन्दगी फैलाओगे।''[49] लेकिन जब सुनीत ने करतारा को हेडमास्टर के पास भेजकर दाखिला करा लिया तो मास्टर पांडे हेडमास्टर को ही चेतावनी दे डालता है कि ''आगे अगर किसी चमार–भंगी के लौंड़े–लपाड़े को अपने इस स्कूल में दाखिला दिया तो बात बिगड जाएगी फिर संभालना मुश्किल हो जाएगा।''[50] यह आझाद भारत के सरकारी शिक्षण संस्थानो के अध्यापको का जातिवादी घिनौना चेहरा है, जो आज भी जहाँ–वहाँ दिखाई देता है।

सुनीत जब गंगाराम हाई स्कूल में दाखिला लेता है, तो वहाँ भी उसे धार्मिक कट्रता की भावना देखने को मिलती है। इस स्कूल में जितने अध्यापक थे उनमे अधिकांश द्रोणाचार्य के वंशज थे, जिनकी एकलव्य को शिष्य बनाने में रूचि नहीं थी, बल्कि उसका अँगूठा कटवाने में दिलचस्पी थी। इस प्रकार पांडे मास्टर का अध्यापक के रूप में छात्रों के प्रति जातियता और दूषित दृष्टिकोण देखने को मिलता है।

निष्कर्ष :

अत: कहना सही होता है कि अध्यापक का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण आदर्श है। पर कुछ अध्यापक अपने कर्तव्य से मुखर रहे हैं। इसका सार्थक उदाहरण देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास के अध्यापक त्रिवेदी हैं। साथही अनेक अध्यापक छात्रों में भेद करते हैं। उनमें जातियता, सांप्रदायिकता नजर आती है। गिरीराज किशोर का 'परिशिष्ट', मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व' उपन्यास इसकी पैरवी करता है। अध्यापक समाज को दिशा देने का कार्य करते हैं। अपने छात्रों पर संस्कार करते हैं। 'भ्रमभंग' उपन्यास का चंदन अपने छात्रों पर अच्छे संस्कार करता है पर कुछ अध्यापक संस्कृति के नामपर गलत व्यवहार करते हैं। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास के 'शिवानंद शर्मा', 'एकलव्य' उपन्यास के आचार्य द्रोण इसके सार्थक उदाहरण हैं।

अध्यापक समाज को दिशा देने का कार्य करते हैं। वे समाज में व्याप्त बुराईयों को नष्ट करते हैं और स्वस्थ समतावादी समाज निर्माण करते हैं। समाजसेवा ही उनका कार्य होता है। मदन दीक्षित के 'मोरी की ईंट' उपन्यास के फ्लोरा और जैकब कट्टरता के स्थानपर धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे सर्वधर्मसमभाव को प्रधानता देकर सामाजिक समता लाने का कार्य करते हैं। जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास का चंदन इसकी पैरवी करता है। अध्यापक परंपरा से 'अर्थ' को महत्व न देकर अपने कर्तव्य को महत्व देते आए हैं। वे समाजकार्य करना अपना कार्य मानते हैं। 'मोरी की ईंट' उपन्यास के फलोरा और जैकब इसके सार्थक उदाहरण हैं। वे अपने कार्य से मानवतावादी विचार प्रवाहित करने का कार्य करते हैं। वे अमानवीयता को नकारकर मनुष्य को न्याय देने का कार्य करते हैं। सत्यप्रकाश के 'जस तस भई सवेर' उपन्यास में मानवतावादी विचार सामने आते हैं। इस उपन्यास का पात्र रूपलाल मानवतावादी विचारों समाज के सामने रखता है।

अध्यापक सदैव राष्ट्रीय दृष्टिकोण सामने रखकर कार्य करते हैं। उनका दायित्त्व होता है कि वे समाज मार्गदर्शन करके योग्य रास्ता दिखाकर राष्ट्रीय विकास में योगदान दे। तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास के आसना सर में राष्ट्रीयता के विचार दिखाई देते हैं। अध्यापक अपने छात्र के प्रति आदर्श होते हैं। अध्यापक सदैव अपने छात्र के प्रति आदर्श दृष्टिकोण रखते हैं। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का सुनीत अपने छात्र के प्रति आदर्श दृष्टिकोण रखता है। लेकिन कुछ जगह पर अध्यापक भेदभाव करते नजर आते हैं। गिरीराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास के अध्यापक इसप्रकार की मानसिकता रखते हैं। इसप्रकार अध्यापक का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण सामने आता है।

संदर्भ संकेत

1. भाटिया के. के., आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, प्रकाश ब्रदर्स, लुधियाना, प्र.सं: 1983, पृ.क्र. 20
2. वही, पृ. क्र. 21
3. डॉ. वाड विजया, उत्तम शिक्षक होण्यासाठी, अनुश्री प्रकाशन, पुणे, प्र. सं. 2009, पृ.क्र. 24
4. वही, पृ. क्र. 49
5. भार्गव लक्ष्मी, भारतीय शिक्षा व्यवस्था, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2007, पृ.क्र. आरम्भिक पृष्ठ.
6. ठाकुर देवेश, भ्रमभंग, संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 1992, पृ.क्र. 54
7. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 72
8. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 43
9. गुप्ता लक्षता, भारतीय समाज और शिक्षा, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2007, पृ.क्र. 83
10. वही, पृ. क्र. 87
11. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 79
12. प्रधान चंद्रमोहन, एकलव्य, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1997, पृ. क्र. 120
13. रंगनाथानंद स्वामी, आधुनिक भारताची उभारणी करण्यात शिक्षकांची भूमिका व जबाबदारी, रामकृष्ण मठ, नागपूर, प्र.सं. 2008, पृ.क्र.8
14. डॉ. वाड विजया, उत्तम शिक्षक होण्यासाठी, अनुश्री प्रकाशन, पुणे, प्र. सं. 2009, पृ.क्र. 33
15. गुप्ता लक्षता, भारतीय समाज और शिक्षा, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2007, पृ.क्र. 142
16. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 61
17. वही, पृ.क्र. 61

18. वही, पृ.क्र. 115
19. दीक्षित मदन, 'मोरी की ईंट', शब्दाकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1996, पृ. क्र. 52
20. वही, पृ.क्र. 83
21. गुप्ता लक्षता, भारतीय समाज और शिक्षा, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2007, पृ.क्र. 142
22. गांधी महात्मा, नई तालीम की ओर, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, प्र.सं. 1936, पृ.क्र. 117
23. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 44
24. ठाकुर देवेश, भ्रमभंग, संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 1992, पृ.क्र. 58
25. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 111
26. डॉ. मिश्रा गार्गीशरण, शिक्षा की समस्याएँ और समाधान, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2003, पृ.क्र. 85
27. ठाकुर देवेश, भ्रमभंग, संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 1992, पृ.क्र.
28. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपव, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 54
29. भाटिया के. के., आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, प्रकाश ब्रदर्स, लुधियाना, प्र.सं: 1983, पृ.क्र. 262
30. डॉ. रेडेकर अरविंद, शिक्षणाचे राजकारण, लोकवाड्.मय गृह, मुंबई, प्र.सं. 2004, पृ.क्र. 33
31. धानवी रमेश, शिक्षा की परीक्षा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2003, पृ.क्र. 99
32. वहीं, पृ. क्र. 70
33. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 48
34. वही, पृ.क्र. 35
35. ठाकुर देवेश, भ्रमभंग, संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 1992, पृ.क्र. 51
36. सत्यप्रकाश, जस तस भई सबेर, सामना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1998, पृ.क्र. 128

37. भाटिया के. के., आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, प्रकाश ब्रदर्स, लुधियाना, प्र.सं: 1983, पृ.क्र. 56
38. वही, पृ.क्र. 119
39. डॉ. पांढारीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र.
40. डॉ. क्षितिज धुमाळ, हिंदी के प्रयोगशील उपन्यास, अन्नपूर्णा प्रकाशन, प्र.सं. 2011, पृ.क्र. 93
41. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 48
42. सुभाष शर्मा, भारत में शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2010, पृ.क्र. 224
43. वहीं, पृ. क्र. 225
44. वहीं, पृ. क्र. 230
45. डॉ. नीता पांढरीपांडे, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 95
46. वहीं, पृ. क्र. 71
47. मोहनदास नैमिशराय, मुक्तिपव, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 113
48. विकास विधाते, मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में विद्रोह, ए. बी.एस. पल्बिकेशन, वाराणसी, प्र. सं. 2013, पृ. क्र. 83
49. मोहनदास नैमिशराय, मुक्तिपव, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 46
50. वहीं, पृ. क्र. 104

पंचम अध्याय

हिंदी उपन्यास में शिक्षित युवा वर्ग का दृष्टिकोण

पंचम अध्याय

हिंदी उपन्यास में शिक्षित युवा वर्ग का दृष्टिकोण

प्रस्तावना :

आज शिक्षित युवा वर्ग प्रगति की राह पर चल रहा है। युवा वर्ग शिक्षित होने से व्यष्टि और समष्टि दोन्हों का विकास हो रहा है। साथ ही देश के विकास में योगदान मिल रहा है। वर्तमान काल में भारत की आबादी ने कहर कर दिया है। जो युवक गरीबी की सीमा रेखा के नीचे आते हैं, वे शिक्षा के साथ–साथ कमाई भी कर रहे हैं । वे जब शिक्षित बन जाऐंगे, तब भारत की निरक्षारता नष्ट होकर भारत महासत्ता बन सकता है । लेकिन सवाल यह उठता है कि, युवक शिक्षा लेने के साथ–साथ निम्न स्तर का कार्य कर रहे हैं। उन्हें सरकार द्वारा 'कमाओ, पढ़ो' योजना शुरू करनी चाहिए या रूस की तर्ज पर औद्योगिक शिक्षा शुरू करने चाहिए। जिससे छात्र पढ़ाई पूरी करके एक–दोन घण्टे काम कर सकते हैं, जिससे आगे चलकर उन्हें रोजगार मिल सकें। ऐसी युवाओं की पूरी जिम्मेदारी सरकार और स्कूल को उठानी होंगी। इस संदर्भ में गार्गीशरण मिश्र का कहना है, '' इस औद्योगिक प्रशिक्षण की अवधि में प्रत्येक बच्चें को शिष्यवृत्ति देने की व्यवस्था की जाए। जिसका खर्च फैक्टरी, प्रशासन और केंद्र तथा राज्य सरकार मिलकर उठाए। कुछ खर्च युवाओं के श्रम से तैयार वस्तुओं को बेचकर पूरा किया जाए। प्रशिक्षण और शिक्षा पूर्ण करने के बाद इन युवाओं को फॅक्टरी में रोजगार भी दिया जा सकता है । इससे ये युवकों पढ़ाई के बाद रोजगार भी पा सकेंगे। इस विकल्प में हमे शिक्षण के साथ औद्योगिक प्रशिक्षण दीर्घ अवधि तक प्रतिदिन एक या दो घंटे के हिसाब से चलाना होगा। इस विकल्प से फैक्टरी को भी प्रशिक्षित व्यक्ति अपने काम के लिए मिल सकेंगे।'' [1] इसप्रकार युवा वर्ग शिक्षा के साथ कमाई/रोजगार की ओर देख रहे हैं।

5.1 हिंदी उपन्यास में शिक्षित युवा वर्ग का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण :

आज युवा वर्ग शिक्षा की ओर अधिक आकर्षित हो रहा है क्योंकी उसे ज्ञात हो गया है की शिक्षा ही विकास और परिवर्तन का माध्यम है। वह शिक्षा प्राप्त करके अपनी उन्नति कर रहा है। आज शिक्षित युवा वर्ग शिक्षा प्रणाली की ओर बहुत अपेक्षा से देख रहा है। आज शिक्षा प्रणाली विषय ज्ञान तक सीमित रह गई है । इसलिए युवा वर्ग दिशाहीन होकर उसका सामाजिक और सांस्कृतिक पतन हो

रहा है । आज छात्र हर क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते है, पर उन्हें संवेगात्मक और ज्ञानात्मक विचार प्रदान करना चाहिए। छात्रों को रटने की परीक्षा से परावृत्त करके प्रगति का रास्ता दिखाना चाहिए। उनका सतत सर्वंकष मूल्यांकन होना आवश्यक है । शिक्षा को साधन के रूप में अपनाना चाहिए। साथ ही उनकी अभिरूचि के अनुसार शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। परिक्षाएँ व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। आज युवा शिक्षा प्रणाली की ओर अपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है। शिक्षा के माध्यम से जनसंख्या, पर्यावरण, कार्यानुभव, कलाशिक्षा, विश्वशांति, विश्वबंधुत्व की भावना जाग उठी है। विद्यार्थियों में सर्जनशीलता के साथ उपक्रमशील बनें, उनमें शोधदृष्टि का निर्माण हो।

शिक्षा के माध्यम से युवाओं को समान अधिकार मिलने चाहिए। उन्हें छात्रवृत्ति समय पर प्राप्त होनी चाहिए। सरकार द्वारा सभी सुविधाएँ स्कूल में उपलब्ध किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में गार्गीशरण मिश्र का कहना है, ''सभी शालाओं में जो एक स्तर की है, समान भौतिक एवं मानव संसाधन उपलब्ध कराये जायें। जब तक ऐसी व्यवस्था करने की स्थिति में शासन न हो कोई नया स्कूल उसके द्वारा न खोला जाये और न ही किसी निजी संस्था को स्कूल खोलने दिया जाये जब तक वह स्कूल हेतु निर्धारित नार्म्स को पूरा न करें।''[2] इसप्रकार युवाओं के विकास के लिए प्रयास करना आवश्यक है, क्योंकि युवा शिक्षा प्रणाली की ओर अपेक्षात्मक नजरिए से देख रहे है। जो व्यक्ति स्वयं को जितना आत्मानुशासन करता है वह जीवन में उतनी ही प्रगति कर महान बनता है । इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी है, जिन्होंने दृढ संकल्प के साथ गुणों का ग्रहण और अवगुणों का त्याग कर अपने जीवन को आत्मानुशासित किया इसलिए इस शताब्दी के महानतम पुरूष बन सके। इस संदर्भ में डॉ. अशोक चौसाळकर कहते है, ''राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का अनुसरण करते हुए छात्रों को भी स्वयं को यथासंभव आत्मानुशासित करने का प्रयास करना चाहिए।''[3] छात्र–छात्राओं के लिए आत्मनुशासन के मार्गदर्शक बिन्दु यही क्रमबद्ध रूप से विदयार्थियों की आचार संहिता में संकलित हैं–

शिक्षा क्षेत्र में अनुशासन महत्त्वपूर्ण बात होती है। घर से विद्यालय जाते समय प्रार्थना की घंटी बजते ही कक्षा में पंक्तिबद्ध होकर शांतिपूर्वक प्रार्थना स्थल तक समय पर पहुँचे। यदि आप अन्यत्र कही हो तो वहाँ से शांतिपूर्वक प्रार्थना स्थल तक पहुँचकर अपनी कक्षा की पंक्ति में स्थान ले। प्रार्थना से जानबूझकर अनुपस्थित रहना अनुचित है । प्रार्थना निर्धारित मुद्रा में शांतभाव से करे एवं उस समय कोई अन्य बातचीत न करे। प्रार्थना सभा में दिए गए आदेशो–निर्देशों, सूचनाओं,

उपदेशों को ध्यानपूर्वक सुनें तथा उनके अनुरूप कार्य करे। प्रार्थना के पश्चात राष्ट्रगान के समय 'सावधान' की मुद्रा में खड़े रहे, राष्ट्रगान का सन्मान हमारा कर्तव्य है । प्रार्थना और राष्ट्रगान कंठस्थ होने चाहिए तथा उनके गायन में सस्वर सहभागिता आवश्यक है । प्रार्थना की समाप्ति पर पँक्तिबद्ध होकर शांतिपूर्वक अपनी कक्षा में जाये। कक्षा में पढ़ते समय कक्षा में शिक्षक के अनुपस्थित होने की सूचना कक्षा कप्तान के माध्यम से प्राचार्य को दे। शिक्षक यदी कक्षा में नही हैं तो शोरगुल न करें। पाठ्यक्रम के विषय का स्वयं अध्ययन करे। शिक्षक के कक्षा में आने पर खड़े होकर सामूहिक रूप से उनका अभिवादन करे। प्राचार्य या किसी अतिथी के आगमन पर उनकी कुर्सी पर कदापि न बैठे। कक्षा की निर्धारत बैठक–व्यवस्था के अनुरूप बैंठे। कक्षा को स्वच्छ रखे, कागज के टूकड़े, रेपर आदि कक्षा को उपयुक्त चार्ट, मैप, सुभाषित आदि से सजाकर रखे। कक्षा के स्थान पर अगले पाठ्यक्रम हेतु साफ करके रखे। कक्षा के फर्नीचर विशेष रूप से अपनी आसन उचित देखभाल करे। उसमें कोई टूट–फूट होने पर कक्षा, शिक्षक, प्राचार्य को सूचित करे, शिक्षक द्वारा पढ़ाये जाते समय बातचीत न करे, इधर–उधर देख कोई शरारत न करे, शिक्षक की बात को ध्यानपूर्वक सुने और नोट्स तैयार करे।

शिक्षा क्षेत्र आदर्श क्षेत्र है। इसलिए एक–दूसरे के प्रति आदर रखना चाहिए। घर से विद्यालय जाते समय– स्वच्छ गणवेश धारण कर विद्यालय जाये, शाला के टाईम–टेबल के अनुसार पुस्तके ले जाये। सड़क पर बाई ओर से ही चले या वाहन चलाए। मार्ग या विद्यालय में शिक्षक शिक्षिकाओं के प्रथम बार मिलने पर सम्मानपूर्वक अभिवादन करे। विद्यालय पहुँचकर अपना बस्ता या पुस्तक कापियाँ अपनी कक्षा की निर्धारित सीट पर ही रखें। खाने की छुट्टी के समय अपना खाना, निर्धारित स्थान पर उचित आसन में बैठकर खायें। जूठन, कागज, रैपर आदि को रद्दी की टोकरी–डस्टबिन में ड़ाले, उन्हें यहाँ–वहाँ न फेंके। मध्यान्ह भोजन को पंक्ति में खड़े होकर क्रम से करे, भोजन के बाद–मुँह अच्छी तरह धो दें। पुस्तकालय में जाते समय पुस्तकालय में शांतिपूर्वक प्रवेश करें। पत्र–पत्रिकाओं को क्षति न पहुँचायें। बोलकर नहीं, मौन होकर पढ़े। पत्र–पत्रिका या पुस्तक में निशान न लगाये, पत्र–पत्रिका या पुस्तक का कोई पृष्ठ या चित्र फाड़कर न निकालें, अनुमति लेकर उसकी फोटोकॉपी करायें। पुस्तकें यथासमय लौटाये। पुस्तकालय के अन्य नियमों का पालन करे।

छात्र को शिक्षा के खेलकूद में भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। खेलकूद में भाग लेते समय खेलकूद में हार–जीत उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं जितनी सहभागिता। अंत: हर छात्र–छात्रा को यथासंभव खेलकूद में भाग लेना चाहिए। इतना ही नहीं, खेलकूद में रूचिपूर्वक भाग ले। यदि किसी कारण यह संभव न हो तो खेलकूद प्रतियोगिताओं के समय खिलाड़ियों के उत्साहवर्धन हेतू वहाँ उपस्थित अवश्य रहें। खेलकूद में खेल भावना के साथ भाग ले अर्थात हारने पर न तो हताश हो और न जीतने वाले से ईर्ष्या, द्वेष करें तथा जीतने पर आत्मप्रशंसा से बचे। खेलकूद में सबसे प्रेम और समानता का व्यवहार करे। खेलकूद में अनुशासन, प्रतिस्पर्धा एवं पारम्पारिक सहयोग–टीम भावना का परिचय दे। शाला के कार्यक्रमों, उत्सवों के समय शाला में आयोजित सांस्कृतिक, साहित्यिक कार्यक्रमों एवं राष्ट्रीय उत्सवों में यथासंभव भाग ले। कार्यक्रमों के दौरान होने वाली प्रतियोगिताओं हेतु तैयारी करे। यदी कार्यक्रमों, उत्सवों में सहभागिता संभव न हो तो सहभागियों को प्रोत्साहित करने हेतु कार्यक्रमो में अवश्य उपस्थित रहे। कार्यक्रमों में अनुपस्थित रहना उचित नहीं। कार्यक्रम में आयोजन में पूर्ण सहयोग दे। कार्यक्रमों–उत्सवों में आये अतिथियों से विनम्रता और शिष्टतापूर्वक व्यवहार करे। प्रयोगशाला में कार्य करते समय शांति बनाये रखे ताकि दूसरे छात्रों के कार्य में बाधा न हों। प्रयोग पूर्ण मनोयोग से करे। प्रयोग के उपकरणों का सावधानी से उपयोग करे ताकि कोई टूट–फूट न हो। आचार्य के आदेशों, निर्देशों का पालन करें। बगीचे में घूमते समय पेड़–पौधों को किसी प्रकार का नुकसान न करना। बिना अनुमति के फुल–पत्ती न तोड़ें। बगीचे की साज–सज्जा बढ़ाने मे समुचित सहयोग दे। बगीचे में कचरा न फैलाए – रद्दी कागज, रैपर, पोलीयीन आदि न फैले उन्हे कुड़ादान या खाद के गड्ढे में डाले। विद्यालय से घर जाते समय– कक्षा से निकलते समय फर्नीचर को अस्त–व्यस्त न करे। कक्षा से निकलने के पूर्व पंख–बल्ब आदि बंद कर दे, कक्षा से बिना शोर किए कतार बनाकर निकले, छात्राओं को पहले निकलने दे। रास्ते में सडक के नियमों का पालन करे, बाई और निचले ओर वाहन चलाये। बस में प्रवेश के लिए कतार में खड़े हो। बस में अपने निर्धारित स्थान पर बैठे। चलती हुई बस से हाथ या सिर बाहर न निकाले, घर पहुँचकर अपना सामान निर्धारित स्थान पर ही रखें यहाँ – वहाँ न रखे। इसप्रकार युवा का दृष्टिकोण बनना चाहिए।

उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम लिखित 'छप्पर' उपन्यास में उपन्यासकार ने अम्बेडकर की विचारमयी – ''शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो' की पृष्ठभूमिपर दलितोद्वार की कामना की है और उसमें भी शिक्षा का महत्त्व सर्वाधिक है, तभी तो सुक्ख्वा अनपढ़ रमिया के विरोध में अपने बेटे

चंदन के भविष्य को लेकर कहता है, ''चुप रह पगली कोई पेट से बड़ा बनकर नहीं आता। पढ़–लिखकर बडे बनते हैं सब । क्या पता हमारा चंदन भी कल को कलक्टर या दरोगा बन जाय।'' [4] इस प्रकार सुक्ख्वा के मन में शिक्षा प्रणाली के ओर देखने का सकारात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलता है।

तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में एक उच्च शिक्षित युवक का शिक्षा की ओर देखने का दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक गिरीशकुमार उच्च शिक्षा प्राप्त करके मध्यप्रदेश लोकसेवा आयोग द्वारा पंजीयक के पद पर नियुक्त होता है । गिरीशकुमार ट्रेनिंग के लिए दिल्ली जाता है । उसके पूर्व आसना सर उसे मार्गदर्शन करते हैं। उसकी अच्छाई को पहचानकर उसे दिशा देने का कार्य करते हैं। उसका पूर्व का नाम 'पीलादास' था। उसे जाति के नाम पर जलील न किया जाए, इसलिए उसका नामकरण गिरीशकुमार किया जाता है । इस उपन्यास का युवा अध्यापक आसना सर एक युवा छात्र को सही रास्ता दिखाकर अपने कर्तव्य को निभाते हैं । इस संदर्भ में डॉ. क्षितिज धुमाळ का कहना है , ''जीवन में एकाध व्यक्ति का आदर्श सामने है । पीलादास एक होशियार छात्र होने के नाते पीलादास के व्यक्तित्व का प्रभाव उसके नाम के साथ बढ़ाने के लिए आसना सर उसके माँ–बाप द्वारा दिया गया नाम 'पीलादास चमार' बदलकर ' गिरीशकुमार' रखते है।''[5] इसप्रकार आसना सर एक युवा अध्यापक एक युवा छात्र को दिशा देकर उसका जीवन आनंदमय बनाते हैं।

जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित 'छप्पर' उपन्यास में जमींदार ठाकुर हरनाम सिंह और खेतिहर किसान मजदूर सुक्ख्वा के बीच शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण कैसा है, यह देखने को मिलता है। सुक्ख्या का इकलौता लड़का चन्दन उच्च शिक्षा ग्रहण करने हेतु शहर चला जाता है। गाँव के जमींदार को यह बात अच्छी नहीं लगती। चंदन को वापिस गाँव बुलाने के लिए सुक्ख्वा को कहा जाता है। परंतु सुक्ख्वा चंदन को उच्च शिक्षा देने की इच्छा रखता है। उसे बड़े अफसर के रूप में देखना चाहता है। इसलिए जमींदार ठाकुर को कहता है, ''आप माई–बाप हैं मालिक! आपका दिया खाते हैं। आपका गुलाम हर समय आपकी ताबेदारी में हाजिर है। पर बेटे ने नहीं माना जिद कर बैठा आगे । पढ़ने की ओर शहर चला गया है।'' [6] इस प्रकार समाज में अब शिक्षा के प्रति आकर्षण बढ़ गया है। वे शिक्षा के लिए अनेक कष्ट उठाने के लिए तैयार है।

गिरिराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास में रामउजागर के माध्यम से युवा वर्ग का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण नजर आता है। वह कानपूर के आई.आई.टी. संस्थान में पढ़ता है । रामउजागर छात्रों का प्रतिनिधित्व करता है। वह छात्रों पर हो रहे अन्याय के प्रति विद्रोह करता है। वह अन्यायी अध्यापकों का विरोध करता है। वह ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहता है। इस उपन्यास का नायक अनुकूल होनहार और संकल्पशील छात्र है। निलम्मा रामउजागर और अनुकूल की सहाय्यता करती है। डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है , ''आलोच्य उपन्यास 'परिशिष्ट' एक ऐसी ही रचना है जिसमें अनुसूचित जाति के छात्रों के संदर्भ में आई.आई..टी. जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है । अनुसूचित जाति के संघर्षशील जीवन की त्रासदी को लेकर हिंदी में लिखा यह पहला ही उपन्यास है।''[7] इसप्रकार आई.आई..टी. के छात्रों का यथार्थ दस्तावेज 'परिशिष्ट' उपन्यास है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में युवा वर्ग का शिक्षा की ओर देखने का दृष्टिकोण नजर आता है । इस उपन्यास का नायक सुनीत का, स्कूल में अध्यापक जातियता के कारण उपहास करता है । लेकिन शिक्षा से जागृत हुआ सुनीत उपहास का जवाब अपने तरीके से देना चाहता है । इसलिए अनेक संकटों के बावजूद अधिक पढ़ाई करता है । अंतत: सुनीत की मेहनत रंग लाती है । वह परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता है । उसके उपरांत वह टीचर्स ट्रेनिंग में पढ़कर अध्यापक बनता है । वह गुलाम की तरह जी रहे लोगों को शिक्षित बनाकर उनका भविष्य बदलना चाहता है । इस संदर्भ में जयप्रकाश कर्दम का मत महत्त्वपूर्ण है , '' जीवन की लड़ाईयों को लड़ने के लिए शिक्षा सबसे ज्यादा मारक और शक्तिशाली शस्त्र है । शिक्षा ही उत्थान और विकास का आधार है ।''[8] इसप्रकार शिक्षा को हत्यार बनाकर सुनीत विकास करना चाहता है ।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में दलितों का शिक्षा की ओर देखने का दृष्टिकोण रेखांकित करते हुए बताते हैं कि शिक्षा से ही सोये हुए दलितों में जागृति आएगी, तभी वे शोषण की बेड़ियाँ तोड़ पाएंगे। बिना शिक्षा के दलित समाज के लोगों की मूक जबान को वाणी नहीं मिलेगी। इसलिए तो चंदन शिक्षा के साथ–साथ संगठन और संघर्ष पर जोर देते हुए दलितों को संबोधित करता है, ''हमें समाज में टक्कर लेनी है, सत्ता से लढ़ाई लड़ती है, जुल्म और शोषण के विरूद्ध संघर्ष करना है। एक–दो आदमियों के बस का नहीं है यह काम। बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समाज के हित और उत्थान के लिए आगे जाना पड़ेगा तभी लोगों के कष्ट और दु:ख दूर होंगे, शोषण

से मुक्ति मिलेगी। तथा सुख और सम्मान से जीने के अवसर मिलेंगे। यह बिना शिक्षा के संभव नहीं है।''[9] इस प्रकार चंदन का शिक्षा के ओर देखने का दृष्टिकोण आशावादी और प्रगति की ओर जानेवाला है। समसामयिक हिन्दी उपन्यासों में युवा वर्ग के दृष्टिकोण को विवेच्च उपन्यासों में इस प्रकार चित्रित किया है।

5.2 शिक्षित युवा वर्ग का सांस्कृतिक दृष्टिकोण :

वर्तमानकाल में शिक्षित युवा वर्ग का सांस्कृतिक दृष्टिकोण बदल रहा है। उन्होंने परंपरागत गलत धारणाओं को तिलांजली देकर नया सांस्कृतिक दृष्टिकोण सामने लाया है। उसे सकारात्मक लेने पर युवाओं को प्रगति के अनेक रास्ते खुल रहे हैं और नकारात्मक लेने पर युवा वर्ग पतन की ओर जा रहा है। जिसप्रकार शक्ति के बिना शिव शव हो जाते हैं उसीप्रकार संस्कार–शिक्षा के बिना शिक्षा निष्प्राण हो जाती है। हमारी वर्तमान शिक्षा बहुत कुछ इसी स्थिति को प्राप्त हो चुकी है। क्योंकि उसमें संस्कार–शिक्षा या चरित्र निर्माण की शिक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है। कहते हैं यदि धन खो जाये तो समझो कुछ नहीं खोया, यदि स्वास्थ्य खो जाये तो समझो कुछ खो गया, 'यदि चरित्र खो जाये तो समझो सब कुछ खो गया'। फिर भी संस्कार शिक्षा या चरित्र निर्माण की शिक्षा से रहित पश्चिमी प्रभाव से ग्रसित, हमारी वर्तमान भौतिकवादी शिक्षा ने भारतीय समाज को चरित्रहीनता की दशा तक पहुँचा दिया है। चरित्र के हीरे को ठुकराकर भौतिक संपन्नता के काँच को अपना सर्वस्व समझकर अपनाने वाली हमारी शिक्षा सचमुच पथभ्रष्ट हो गई है। इसलिए हमारी भारतीय आदर्शवादी संस्कृति को अपनाना आवश्यक है।

संस्कार और शिक्षा एक–दूसरे पर निर्भर है। संस्कार समाज में स्वीकृत वह परंपरागत जीवनादर्श है जो उस समाज की संस्कृति से उत्पन्न होकर व्यक्ति के आचरण का अंग बन जाता है। वह एक परंपरागत जीवनादर्श होता है। उसकी उत्पत्ति समाज विशेष की संस्कृति से होती है। उसके पीछे सामाजिक स्वीकृति का होना आवश्यक है। वह व्यक्ति के आचरण का अंग होता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं समाज में स्वीकृत परंपरागत जीवनदर्श या जीवनमूल्य समाज की संस्कृति से जन्म लेकर जब व्यक्ति के आचरण का अंग बन जाता है, तब उसे संस्कार की संज्ञा दी जाती है। संस्कार की उपरोक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उसकी आदत, शिष्टाचार, नैतिक गुण, जीवनमूल्य आदि का अंतर समझ लेना आवश्यक है। संस्कार और आदत में यह तो समानता है की

वे समान रूप से व्यक्ति के आचरण का अंग बन जाता है। व्यक्ति के परंपरागत व्यवहार अथवा अभ्यास का रूप धारण कर लेते हैं। अत: सामान्यत: व्यक्ति उन्हे छोड़ नहीं पाता। किंतु आदत पूर्णत: व्यक्तिगत होती है– उसके लिए सामाजिक स्वीकृति आवश्यक नहीं होती । समाज का कुसंस्कार से नुकसान हो सकता हैं। आदत बूरी भी हो सकती है जैसे सिगरेट पीना, दांत से नाखून कॉटना आदि। लेकिन संस्कार जीवनादर्श होने के कारण बूरे नहीं होते। ऐसी स्थिति में कुसंस्कार शब्द या तो संस्कार के अभाव का सूचित करता है या संस्कार के विरूद्ध आचरण को। तात्पर्य यह है कि कुसंस्कार नाम की कोई चीज नहीं होती। अच्छी आदत और संस्कार के अंतर को समझने के लिए उदाहरण देना उचित होगा। माता–पिता, गुरू के प्रति श्रद्धा रखते हुए उनसे आदरपूर्वक और विनम्र व्यवहार का संस्कार है। लेकिन अपने सामान को सदा व्यवस्थित ढंग से रखने का व्यवहार आदत है। यह आदत पूर्णत: व्यक्तिगत है। इसके पीछे कोई सामाजिक स्वीकृति नहीं है। यह न तो भारतीय संस्कृति से उत्पन्न है और यह कोई परंपरागत जीवनदर्श है। अत: यह आदत है, संस्कार नहीं। इसके विपरित माता–पिता, गुरू के श्रद्धापूर्वक चरण स्पर्श करना एक संस्कार है क्योंकि यह भारतीय संस्कृति से उद्भूत है, इसे संपूर्ण भारतीय समाज की स्वीकृति भी प्राप्त है और यह एक परंपरागत जीवनादर्श भी है।

संस्कार के माध्यम से समाज उन्नति की राह पर चलता है और समाज में संतुलन बना रहता है। संस्कार और शिष्टाचार में सूक्ष्म अंतर दिखाई देता है। शिष्टाचार भी संस्कार का ही एक रूप है। क्योंकि संस्कार और शिष्टाचार दोनों संस्कृति विशेष से उत्पन्न होते हैं। इसलिए अलग–अलग संस्कृतियों वाले समाजों के संस्कार और शिष्टाचार अलग–अलग होते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय संस्कृति के अनुसार शिष्टाचार यह है की हम बड़ों को प्रणाम या नमस्कार करते हैं यदि, बड़े आत्मिक और घनिष्ट हो तो हम उनके चरण–स्पर्श करते हैं। लेकिन अंग्रेजी संस्कृति में शिष्टाचार के नाते वह सभी को 'गुड मॉर्निंग', 'गुड ईवनिंग' कहते हैं। भारतीय समाज में छोटे को आशिर्वाद देना एक शिष्टाचार है। अंग्रेजी समाज में स्नेह देने का शिष्टाचार है। भारतीय समाज में समान आयु के मित्र मिलने पर एक–दूसरे को गले लगाने का शिष्टाचार है। अंग्रेजी संस्कृती में वे हाथ मिलाने का शिष्टाचार निभाते हैं। इस संदर्भ में गीता यादव का कहना है, ''संस्कार और शिष्टाचार इस बात में समान है की दोनों ही संस्कृति से उत्पन्न होते हैं, दोनों के लिए सामाजिक स्वीकृति आवश्यक होती है और दोनों ही परंपरागत जीवनादर्श होते हैं। तथा व्यक्ति के आचरण का अंग बन जाते हैं।''[10]

फिर भी संस्कार और शिष्टाचार में सूक्ष्म अंतर है । शिष्टाचार केवल अपने से बड़ों, बराबर वालों, छोटों के प्रति हमारे सामाजिक व्यवहार तक सीमित रहते हैं लेकिन संस्कार हमारे सामाजिक व्यवहार को मनुष्य के अतिरिक्त पशु, पक्षी, कीट पतंगे, यहाँ तक की पेड़, पौंधो तक व्याप्त बनाते हैं। उदाहरण के लिए अहिंसा का संस्करण हमें प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और दया भाव प्रदर्शित करने को बाध्य करता है लेकिन शिष्टाचार हमें घर आये अतिथि के प्रति अच्छा और विनम्र व्यवहार करने की प्रेरणा तक सीमित रखता है । संस्कार और शिष्टाचार में दूसरा अंतर यह होता है की संस्कार को जीवन में दृढ़ता प्रदान करने हेतु उसके साथ कुछ धार्मिक व्यवस्था जुड़ी होती है। लेकिन शिष्टाचार के साथ ऐसा नहीं होता। उदाहरण के लिए भारतीय संस्कृती में सोलह संस्कारो को मान्यता दी गई है जिनमें यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह संस्कार, मृत्यु संस्कार प्रमुख है । इनमें से प्रत्येक के साथ एक धार्मिक व्यवस्था या कर्मकांड जुड़ा हुआ है । लेकिन शिष्टाचार के लिए कोई धार्मिक विधान आवश्यक नहीं है । इस प्रकार स्पष्ट है की संस्कार शिष्टाचार से भिन्न होते हैं। लेकिन वे एक–दूसरे पर निर्भर होते है।

आज युवाओं को नैतिक शिक्षा देने की आावश्यकता महसूस हो रही है। क्योंकि गलत संस्कृति से युवा वर्ग दिशाहीन हो गया है। इसलिए उसे भारतीय संस्कृति की आदर्श जीवनमूल्यों से परिचित कर देना आवश्यक है। आज–कल चरित्र–निर्माण की शिक्षा या नैतिक शिक्षा को जीवन मूल्यों की शिक्षा की संज्ञा दी जाती है । ऐसी स्थिती में 'जीवन–मूल्य' का अर्थ और 'संस्कार' से उसका अंतर समझ लेना भी आवश्यक है । जीवन मूल्य विभिन्न धर्मो, संस्कृतियों, नीतिशास्त्रों, दर्शनशास्त्रों आदि के द्वारा मानवता के हित के लिए स्वीकृत जीवनदर्श है । कुछ जीवनमूल्य, सत्य, अहिंसा, प्रेम, शांति, भाईचारा, सदाचार, दया, समानता, सेवा, परोपकार, अस्तेय, अपरिग्रह, न्याय, सबकी भलाई, सत्यम् शिवम् सुंदरम्, करूणा आदि अनेक धर्मों, दर्शनों, संस्कृतियों द्वारा मान्य किये गये हैं। अत: इन्हे हम चाहे तो शाश्वत जीवन मूल्य कह सकते हैं । क्योंकि ये सर्वत्र सबके द्वारा प्राचीन काल से मान्य किये गये हैं । इसी आधार पर सदाचरण सत्य, शांति, प्रेम और अहिंसा को शाश्वत जीवन मूल्य मानते हुए इन्ही के अंतर्गत उन तिरासी जीवन मूल्यों को समाहित किया है ।

आज के प्रजातंत्र एवं विभिन्न धर्मावलम्बियों के समागम के युग में बहुमत का सम्मान, स्वतंत्रता और सर्वधर्म–समभाव की गणना भी शाश्वत जीवनमूल्यों में की जानी चाहिए। ऊपर चर्चित शाश्वत जीवनमूल्यों के अतिरिक्त अन्य जीवनमूल्यों में प्रमुख है – स्वच्छता, आरोग्य, सादगी,

नियमितता, समय की पाबंदी, समय का सदुपयोग, आत्मनिर्भरता, आज्ञापालन, ईमानदारी, दूरदर्शिता, जिज्ञासा, सद्विवेक, धैर्य, अनुसंधान, आत्मसम्मान, निष्कपटता, सहनशीलता, नम्रता आदि। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञात होगा की राष्ट्रीय शैक्षणिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान परिषद नई दिल्ली ने जिन तिरासी जीवन मूल्यों का उल्लेख किया है उनमें से ऊपर चर्चित शाश्वत जीवन मूल्यों को छोडकर शेष वस्तुत: जीवन मूल्य न होकर मानवीय सद्गुण है । मानवीय सद्गुणों और जीवन मूल्यों में अंतर यह है की मानवीय सद्गुण गुणधारक के मानवीय गुण ऐसे जीवनदर्श हैं, जिनका प्रभाव क्षेत्र सीमित और लाभ व्यक्तिगत होता है । उदाहरण के लिए आरोग्य एक ऐसा मानवीय सद्गुण है जो गुणधारक को मिलता है किसी अन्य को नहीं। इसके विपरित जीवनमूल्य के जीवनदर्श होते हैं जिनका लाभ संपूर्ण मानव समाज यहाँ तक की प्राणीमात्र को मिलता है, क्योंकि उनका प्रभाव क्षेत्र व्यापक होता है। उदाहरण के लिए अहिंसा ऐसा जीवनदर्श है जिसका लाभ संपूर्ण मानव जाति को ही नहीं पशु–पक्षी, किट–पतंगे यहाँ तक की पेड़ पौधों को भी प्राप्त होता है क्योंकि अहिंसक व्यक्ति इन सबकी जीवन रक्षा एवं सुरक्षा हेतु सजग रहता है । इस संदर्भ में गीता यादव का कहना है, ''मानवीय सद्गुण गुण है और जीवन मूल्य मानवीय जीवनदर्श है । एक में व्यक्ति का कल्याण और दूसरे में संपूर्ण मानवता का कल्याण निहीत है।''[11] इसप्रकार मानवतावादी गुण अपनाने पर मानव का विकास संभव है।

संस्कार और जीवनमूल्य एक–दूसरे पर निर्भर है। इनके बगैर समाज का विकास नहीं हो सकता है। इन दोनों से समाज में संतुलन बना रहता है। संस्कार और जीवन मूल्य में अंतर समझ लेना भी आवश्यक है । संस्कार और जीवनमूल्य दोनों ही जीवनदर्श है । किन्तु संस्कार की उत्पत्ति संस्कृति विशेष से होती है जब की जीवनमूल्य, धर्म, संस्कृति, नीति, दर्शन, सामाजिक सहमति आदि किसी से भी उत्पन्न हो सकती हैं। इसी कारण संस्कार की अपनी संस्कृति विशेष के प्रति प्रतिबद्धता स्वाभाविक होती है लेकिन जीवनमूल्य के लिए यह आवश्यक नहीं है । संस्कार और जीवनमूल्य दोनों के लिए सामाजिक स्वीकृति आवश्यक होती है । लेकिन संस्कार जहाँ व्यक्ति के आचरण का अंग होना आवश्यक नहीं। वे सिद्धांत के आचरण का रूप नहीं। उन्हें व्यवहार रूप में लाने के लिए जीवनमूल्यों की शिक्षा आवश्यक होती है । इसप्रकार स्पष्ट है की जीवनमूल्य सिद्धांत रूप होते हैं और संस्कार के आचरण का अंग बन जाते हैं तब वे संस्कार का रूप ग्रहण कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में आचरण का अंग बने जीवनमूल्य ही संस्कार कहलाते हैं। यही बात उन जीवनमूल्यों

पर भी लागू होती है जिन्हें हम ऊपर व्यक्तिगत सद्‌गुण की संज्ञा दे चुके हैं । आचरण का अंग बने मानवीय सद्‌गुण भी संस्कार कहलाते हैं।' कुछ उदाहरणों से यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा की जीवनमूल्य किसप्रकार निरंतर साधना या अभ्यास व्यक्ति के आचरण का अंग बनकर संस्कार का रूप ले लेते हैं। संतजनों की तरह युधिष्ठिर में सदाचरण का जीवनमूल्य उनके आचरण में उतरकर सदाचरण का संस्कार बन गया था। राजा हरिश्चंद्र में सत्य का जीवनमूल्य उनके आचरण का अंग बनाकर सत्य का संस्कार बन गया था। मानवता को शांति का संदेश देने वाले भगवान बुद्‌ध में शांति का जीवनमूल्य उनके आचरण में अभिव्यक्त होकर शांति का संस्कार बन गया था। प्रेम दिवानी मीरा में भगवान कृष्ण के प्रति प्रेम का जीवनमूल्य उसके व्यवहार में व्यक्त होकर प्रेम का संस्कार बन गया था। इसीप्रकार महात्मा गांधी में अहिंसा और सेवा के जीवनमूल्य उनके आचरण का अंग बनकर अहिंसा और सेवा के संस्कार बन गये थे।

आज युवाओं के विकास के लिए अभिभावक अध्यापक और शासन को महत्त्वपूर्ण कदम उठाने होंगे। इससे ही व्यक्ति परिवार और समाज का विकास संभव है। युवाओं के प्रति ठोस निर्णय लेने पर ही देश महासत्ता बन सकता है। शिक्षा की गाडी चार पहियों पर चलती है, छात्र–अभिभावक, अध्यापक और शासक। अंत: जब तक इन चारों पहियों में सही तालमेल नहीं होता शिक्षा की गाडी सुचारू रूप से नहीं चल सकती। ऐसी स्थिती में हमें समझना होगा की संस्कार शिक्षा में छात्र–अभिभावक, अध्यापक और शासक की क्या भूमिका होनी चाहिए। जहाँ तक बालक का संबंध है वह छोटी उम्र में गीली मिट्‌टी की तरह होता है जिसे आप जैसे चाहे वैसा आकार दे सकते हैं। किन्तु बड़ा होने पर वह सूखी मिट्‌टी या पकी मिट्‌टी की तरह हो जाता है । जिसे आप मनमाना आकार नहीं दे सकते। अत: छोटी उम्र में ही बालक की संस्कार शिक्षा प्रारंभ हो जाना चाहिए। इस हेतु बालक को आज्ञाकारी एवं ग्रहणशील बनाना आवश्यक है । यह तभी संभव है जब हम ध्यान रखें की संस्कार शिक्षा एक कठिन साधना है जो आवश्यकता से अधिक लाड़–प्यार के वातावरण में संभव नहीं होती। इसीलिए हमारे यहाँ बच्चों को गुरूकुल में रखकर शिक्षा देने की प्रथा है । ताकि हमारा लाड़–प्यार एवं समाज का दूषित वातावरण उनके चरित्र को बिगाड़ न सके। उसका विकल्प आज की छात्रावास व्यवस्था बन सकती है । छात्रों के छात्रावास का वातावरण गुरुकुल जैसा पवित्र बनाया जा सके। बालक संस्कार शिक्षा मुख्य रूप से बड़ों का अनुकरण कर प्राप्त करता है । संस्कारों की प्रथम पाठशाला परिवार एवं द्‌वितीय पाठशाला विद्‌यालय में क्रमश: अभिभावकों एवं शिक्षकों का यह

बालक सहज ही अनुकरण से संस्कार शिक्षा प्राप्त कर सके। यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है की जो अभिभावक और शिक्षक स्वयं संस्कारवान नहीं है वे संस्कार शिक्षा देने के अधिकारी नहीं है क्योंकि तब उनके द्वारा प्रदत्त संस्कार शिक्षा 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की कहावत को ही चरितार्थ करेगी। अत: पालकों और शिक्षकों को बहुत सजग रहने की आवश्यकता है । उनके चरित्र से कोई गलत संकेत युवकों को न मिलने पाये जिससे वे बुरी आदतों के शिकार होकर संस्कारहीन बन जावें। पालकों और शिक्षकों में स्वयं यदि श्रेष्ठ संस्कारों का अभाव है तो उन्हें महापुरुषों की जीवनियों का सहारा लेकर युवकों में अच्छे संस्कारों का बीजवपन करना चाहिए। जहाँ तक शासन का प्रश्न है उसे संस्कार शिक्षा का समुचित पाठ्यक्रम तैयार कराकर उसे शिक्षा व्यवस्था का अनिवार्य अंग बनाना चाहिए। शासक वर्ग द्वारा इस दायित्व का हनन किये जाने के कारण ही वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में संस्कार शिक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है । परिवार और विद्यालय में संस्कार शिक्षा देने की व्यवस्था न कर हमने युवकों के जीवन की नाव को समय के प्रवाह में स्वयं अपना गंतव्य ढूंढ़ने हेतु छोड़ दिया है । जहाँ सिनेमा, टीवी और सामाजिक वातावरण उसे गलत आचरण के संकेत देकर संस्कारहीन और चरित्रहीन बना रहे हैं। इसलिए आदर्श संस्कृति की पैरवी करनी चाहिए।

जब हम युवाओं को अच्छे संस्कार और जीवनमूल्य से परिचित करेंगे तो वह विकास की राह पर चल सकता है। बच्चों में जिन अच्छी आदतों को ड़ालने का प्रयास किया जाना चाहिए उनमें प्रात: जल्दी उठना, हाथ, मुँह और दात साफ करना, व्यायाम करना, अपना सामान व्यवस्थित ढ़ंग से नियत स्थान पर रखना, कचरा यहाँ–वहाँ न फेंककर कूडेदान के डालना, दिनचर्या हेतु समय सरिणी बनाना, अच्छी पुस्तके पढ़ना, पुस्तकालयों में बैठकर पत्र–पत्रिकाएँ पढ़ना, यातायात के नियमों का पालन करना, प्रतिदिन डायरी लिखना, किये गये खर्च का विधिवत हिसाब रखना, खेलकूद में भाग लेना, सांस्कृतिक, साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेना, स्काऊटिंग, एन.ए.एस., एन.सी.सी. आदि में भाग लेना, पंच ललित कलाओं (गायन, वादन, नृत्य, अभिनय, संगीत) में से कम से कम एक को सीखाना आदि। युवकों को जिन बुरी आदतों से बनाने या मुक्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए उनमें दांत से नाखून काटना, पान खाकर या बिना पान खाये यहाँ वहाँ थूकना, बीडी, सिगरेट पीना, तम्बाखू, शराब या नशीली दवाओं का सेवन करना, बूरे लोगों की संगत करना, अधिक समय तक टीवी देखना या रेडिओ सुनना, झूठ बोलना, बात–बात पर झगड़ा करना, रैगिंग में भाग लेना, अपने कक्ष या कक्षा से बाहर आते समय बिजली के बल्ब जलते हुए और पंखे चलते हुए छोड़ना, किसी के

घर से बाहर जाते समय गेट खुला छोड़ देना आदि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसलिए हमारे जीवन में अच्छे संस्कार ही काम आते हैं।

युवाओं के सांस्कृतिक दृष्टिकोण में शिष्टाचार महत्त्वपूर्ण है। विनम्रपूर्वक सद्गुणों से युवाओं का चरित्र निर्माण होकर आदर्श नागरीक बन सकता है। संस्कार शिक्षा में हमें शिष्टाचार की शिक्षा देनी चाहिए। शिष्टाचार की शिक्षा संबंधित संस्कृति एवं समाज की मान्यता के अनुरूप होनी चाहिए। विनयशीलता या विनम्रता शिष्टाचार की आत्मा है । अत: वह हमारे हर शिष्टाचार में झलकनी चाहिए। हमें जीवन में तीन प्रकार के लोगों के प्रति शिष्टाचार निभाना होता है । अपने से बड़ों के प्रति, बराबर वालों के प्रति एवं, अपने से छोटों के प्रति। अपने से बड़ों के प्रति हमारा सम्मानपूर्ण और विनयशील व्यवहार आवश्यक है। भारतीय संस्कृति के अनुरुप हमें दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिए। मुस्लीम संस्कृति के अनुसार एक हाथ माथे पर लगाकर सलाम करना तथा अंग्रेजी संस्कृति के अनुसार समय के अनुरूप आदरपूर्वक गुड मार्निंग, गुड इविनिंग कहना चाहिए। फिर उन्हें उचित आसन देने और समुचित सत्कार करने के बाद विनम्रता से उनके आने का उद्देश्य पूछना और विनयशिलता से समुचित एवं संतोषजनक उत्तर देना हमारे शिष्टाचार का अंग है । यदी आगन्तुक परिचित और पूज्य है तो प्रणाम करने के बाद उनके चरण स्पर्श करना भारतीय शिष्टाचार है। माता–पिता और गुरु के प्रति भी यही शिष्टाचार अपेक्षित है। बराबरवालों को भारतीय संस्कृति के अनुरूप हमें प्रणाम/नमस्कार करना चाहिए और यदि आत्मीय है तो उन्हे गले लगाना चाहिए। अंग्रेजी संस्कृति के अनुसार उनसे गुड मार्निंग, गुड इविनिंग करने के बाद हाथ मिलाना चाहिए। उचित आसन देने और सत्कार करने के बाद विनम्रता पूर्वक उनसे आवश्यक वार्तालाप करना चाहिए । अपने से छोटों को भारतीय संस्कृति के अनुरूप स्नेह और आशीर्वाद देना चाहिए तथा वार्तालाप स्नेह भाव से करना चाहिए। इन शिष्टाचारों के अतिरिक्त अन्य शिष्टाचारों का पालन तभी अपेक्षित है, यह छात्रों को बताया और सिखाना जाना चाहिए – घर से बाहर जाते समय किसी बड़े को बताकर एवं प्रणाम करते जाना, वार्तालाप करते हुए दो लोगों के बीच में नहीं बोलना, अपनी भूल या त्रुटी को सहजभाव से स्वीकार करना और उसके लिए विन्रमतापूर्वक क्षमा माँगना, किसी की वस्तु को उससे अनुमति लिए बिना उपयोग न करना, जिस विषय का ज्ञान न हो उस पर बहस नहीं करना, दूसरों के पत्र, डायरी को न पढ़ना, दूसरों कों व्यक्तिगत गतिविधियों की ताकझांक न करना, दूसरों के द्वारा किये गये उपकार को कभी न भूलना तथा उसके लिए तत्काल कृतज्ञता–ज्ञापन करना, किसी के प्रति सेवा या

उपकार करके, उसका बयान न करना, वृद्धजनों के प्रति विशेष आदरभाव रखना। सद्गुणों और जीवनमूल्यों की चर्चा पूर्व में की जा चुकी है अत: यहॉ उनकी पुनरावृत्ति अपेक्षित नहीं है । हॉ यह बात ध्यान देने योग्य है की संस्कार शिक्षा सर्वप्रथम अभिभावकों द्वारा नागरिक गुणों और अच्छी आदतों की प्राथमिक पाठशाला परिवार में दी जानी चाहिए। तत्पश्चात विद्यालयों में शिक्षकों द्वारा इसे दिये जाने की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। लेकिन संस्कार शिक्षा परिवार या विद्यालय में प्रारंभ किये जाने से पूर्ण यह बात ध्यान में रखनी चाहिए की बालक संस्कार शिक्षा मुख्यरूप से अपने से बड़ों का अनुकरण करके प्राप्त करता है।

अभिभावकों और शिक्षकों को अच्छी आदतों, शिष्टाचारों, सद्गुणों एवं जीवनमूल्यों का आदर्श उसके सामने रखना चाहिए ताकि उनका सहजता से अनुकरण कर बालक संस्कार शिक्षा प्राप्त कर सकें। उनके द्वारा कोई ऐसा उदाहरण बालकों के सामने से बचना चाहिए जो उन्हें चारित्रहीनता की ओर ले जाता हो। युवाओं को महाविद्यालय में संस्कार शिक्षा देनी चाहिए। इसके लिए तीन विकल्प हो सकते है – प्रथम एवं सर्वोत्तम विकल्प है गुरुकुल पद्धति से संस्कार शिक्षा देना। इसमें शिष्य चौबीस घंटे गुरु के सानिध्य में रहकर उनके सदाचरण से एवं मार्गदर्शन में संस्कार शिक्षा प्राप्त कर सकता है। अंत: जहाँ यह संभव हो वहा इसे अपनाया जाना चाहिए। द्वितीय विकल्प है आवासीय विद्यालयों का जहा छात्र के जागने से लेकर उसके सोने तक की संपूर्ण दिनचर्या को नियमित और नियंत्रित कर संस्कार शिक्षा देने की व्यवस्था की जा सकती है।

हम तिसरे विकल्प में देखेंगे कि युवाओं को सर्वधर्मसमभाव, शिष्टाचार, जीवनमूल्य आदि से ज्ञात करना होंगा। सर्वप्रथम प्रार्थना–इसमें सभी धर्मों के श्रेष्ठ उपदेश शामिल किये जाये ताकि विद्यार्थियों में सभी धर्मों के प्रति आदरभाव या सर्वधर्म समभाव जागृत हो सके। मौन का अभ्यास – इसमें बालकों के आखें बंद करके किसी एक सद्गुण या जीवनमूल्य अच्छी आदत या शिष्टाचार पर ध्यान केंद्रीत कर विचार करने का अभ्यास कराया जाये। प्रेरक प्रसंगों का प्रस्तुतीकरण – विश्व के महापुरुषों ने परिस्थिति विशेष में किसप्रकार का प्रेरक प्रसंग प्रस्तुत किया उसका विवरण किसी शिक्षक या छात्र द्वारा प्रस्तुत किया जाये। उपदेशात्मक कहानी सुनाना– विभिन्न धर्मों और श्रेष्ठ लेखकों की उपदेशात्मक एवं छोटी कहानियों को कहने की परंपरा शुरू की जाये। इसे भी शिक्षक एवं छात्र कोई भी सुना सकते हैं। जहॉ तक प्रेरक प्रसंगों और उपदेशात्मक कहानियों को सुनाने का प्रश्न है उन्हें लिपीबद्ध कराया जाना चाहिए। केवल वहीं आलेख पढ़े जाने चाहिए जिन्हे शाला के

जिम्मेदार शिक्षक ने अनुमोदित किया हो। वर्ष के अंत में इन आलेखों को मुद्रित कराकर पुस्तककार रूप में छात्रों में वितरित किया जाना चाहिए। यदी यह संभव न हो तो इन्हें हस्तालिखित पुस्तिका के रूप में तैयार कराकर पुस्तकालय में अवलोकनार्थ रखा जाना चाहिए। समूह गान–देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता, सर्वधर्म समभाव, सदाचरण आदी के शिक्षा प्रद गीतों के समूह गान का प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है। यदी विद्यालय की समय सारिणी में संस्कार शिक्षा हेतु एक कालखंड अलग से निर्धारत हो तो संस्कार शिक्षा / नीति शिक्षा की पाठ्यपुस्तक प्रत्येक कक्षा में पढ़ाई जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त पाठ्य सहभागी क्रियाओं तथा सांस्कृतिक साहित्य की प्रतियोगिताओं के माध्यम से भी संस्कार शिक्षा देने की व्यवस्था की जा सकती है। किसी अच्छी आदत, शिष्टाचार, सद्‌गुण या जीवनमूल्य पर निबंधलेखन, कविता, पाठ–कहानी, कथन–नाटक, मंचन, समूह गान, भाषण आदि की प्रतियोगिताओं को आयोजित कर भी संस्कार शिक्षा दी जा सकती है। महापुरुषों की जयंतिया मनाने की प्रथा भी शुरु की जानी चाहिए। वर्ष के अंत में सबसे संस्कारवान छात्र/छात्रा को पुरस्कृत सन्मानित करना भी उचित होता है। इसप्रकार समाज को प्रगति के रास्ते ले जाने के लिए युवाओं पर संस्कार होना आवश्यक है।

संस्कृति में जीवन के उच्च नीति मूल्यों का समावेश होता है। संस्कृति को आधार मानकर की जानेवाली गतिविधियाँ, सांस्कृतिक गतिविधियाँ कहलायी जाती हैं। समाज में स्थित सभी वर्ग एवं वर्ण की अपनी अलग–अलग गतिविधियाँ होती हैं। इसमें निरंतर परिवर्तन आता है। एक वर्ग दूसरे वर्ग की सांस्कृतिक कक्षा में प्रवेश कर सकता हैं। जिसके कारण जीवन मूल्यों का बदलाव सांस्कृतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाता है।

तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में शिक्षित छात्रों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक गिरिशकुमार परंपरागत सांस्कृतिक दृष्टिकोण को नकारकर आधुनिक शिक्षा और सांस्कृतिक दृष्टिकोण को अपनाता है । यह परंपरागत पीढ़िजात गुलामी को ठुकरा देता है। वह शिक्षित बनता है। आसना सर उसकी सहाय्यता करते हैं। वह उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। वह लोकसेवा आयोग की परीक्षा उत्तीर्ण होकर अधिकारी बनता है। स्पष्ट है की परंपरागत संस्कृति अपनाकर गुलामी करनेवाले आज विद्रोह कर रहे हैं। परंपरागत संस्कृति को नकारकर आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अपना रहे हैं। वह ग्रामीण भाग से दिल्ली शहर में आकर वहाँ की संस्कृति अपनाता है । वह एकतरफ आदर्श संस्कृति अपनाता नजर आता है, तो दूसरी तरफ दिल्ली की चमक–दमक

में फँस जाता है। फिर भी गिरिशकुमार को परंपरागत जातियता के दंश को सहना पड़ता है। लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास से शहरी संस्कृति को दर्शाया है। इस संदर्भ में डॉ. क्षितिज धुमाळ का कहना है, ''प्रस्तुत उपन्यास में तेजिंदर ने महानगरों के होटलों में चलनेवाले वेश्या व्यवसाय, महानगरों में चलनेवाले नशापान, महानगरीय लोगों का अंग्रेजी भाषा के प्रति दायित्व, कानून और व्यवस्था के अभाव में महानगरों में होनेवाले दंगे–फसाद, महानगरों में प्रचलित निरूपयोगी शिक्षा–व्यवस्था, महानगरों के मानवी संबंधों में आ रही टूटन, सरकारी आरक्षण नीति के लिए सवर्णों का विरोध, राजनीतिक नेताओं की अनीति, महानगरीय मानवी जीवन में नैतिक–मूल्य विघटन, रिश्तों के परिणामस्वरूप महानगरों में पनपनेवाला तनाव, महानगरों में पनपने वाले हिंदुत्ववाद के कारण दलित और मुस्लिमों के बीच उभरते रहे संघर्ष, गिरीश और उसके मित्र उदयनद्वारा हिंदुत्ववाद का विरोध, महानगरों के उच्चवर्गियों द्वारा निम्नवर्गीयों की होनेवाली आलोचना, निम्न जातियों की सवर्णों द्वारा होनेवाली आलोचना इन सभी प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण गिरीशकुमार के मन में उभरी हुई चेतना, इन घटनाओं से यह स्पष्ट है की आज जाति छिपाने के लिए नाम परिवर्तन करने पर भी जातीयता की तीव्रता कम नहीं होती है।''[12] इसप्रकार की वास्तविकता को लेखक ने उजागर किया है।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में सांस्कृतिक दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास में चंदन पढ़ने के लिए शहर चला जाता है। इससे सनातन संस्कृति के समर्थक नाराज हो जाते है। वह चंदन के पिता सुक्खा पर अन्याय करते हैं। चंदन को वापस बुलाने के लिए दबाव ड़ालते हैं। पर सुक्खा चंदन को वापस नहीं बुलाता है। वह चंदन को पढ़ने और आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। चंदन भी शहर में जाकर अच्छी तरह से शिक्षा प्राप्त करता है। वह अपनी शिक्षा का फायदा आम जनता को देना चाहता है। आम जनता परंपरागत गलत संस्कृति में फँसकर अज्ञान, अशिक्षा और अंधविश्वास में डूबी थी, चंदन जागृत करके विकास की राह पर लाना चाहता है। चंदन अंधविश्वास पर कठोर प्रहार करते हुए जनता को जागृत करते हुए कहता है, ''पत्थर के इन देवी–देवताओं या भगवानों की पूजा–अर्चना करने या उसको भेट चढ़ाने से कुछ भी होनेवाला नहीं है।''[13] इसप्रकार चंदन परंपरागत मनुवादी संस्कृति को नकारकर एक नई और आदर्श संस्कृति स्थापन करना चाहता है।

चंद्रमोहन प्रधान द्वारा लिखित 'एकलव्य' उपन्यास में सांस्कृतिक दृष्टिकोण नजर आता है । इस उपन्यास में एकलव्य आचार्य द्रोण से धनुर्विदया प्राप्त करना चाहता है। पर आचार्य द्रोण परंपरागत संस्कृति को अपनानेवाले व्यक्ति हैं। वे उसे शिक्षा देने से नकार देते हैं। लेकिन एकलव्य स्वयंअध्ययन करके शिक्षा प्राप्त करता है । एकलव्य शिक्षा प्राप्त करके नई संस्कृति का सृजन करता है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में सांस्कृतिक दृष्टिकोण नजर आता है। इस उपन्यास में बौद्ध धर्म का समावेश भी देखने को मिलता है। बंसी जब अपने बेटा का नाम रखता है, तो उसे सुनीत ही नाम अधिक सुहाता है, पत्नी सुंदरी ने अपने पुत्र का नाम सुंदर सुझाया था किन्तु बंसी के सामने तो भगवान बुद्ध की दृष्टि थी, दर्शन था। सुनीत नाम ही समूची बौद्ध संस्कृति का द्योतक था। बंसी भी तो बौद्ध संस्कृति का उपासक था। बंसी में बौद्ध विहार न था, पर उसका घर ही बौद्ध विहार था। बन्सी के घरे आंगन में सुनीत एक सुंदर सपने के तरह बड़ा होने लगा था। ''औरते उसकी बलाएँ लेती, उसके माथे पर काला टीका लगाती। कभी कोई मुर्दे की हड्डी के छोटे से टुकड़े को ताबीज बनाकर सुंदरी को दे देती। कोई काले धागे का हार बट कर उसे पहना देती तो कोई किसी फकीर या मौलवी से राख या भभूत ले आती थी। ये सब परम्पराएँ बरसों से चली आ रही थी। किन्तु सुंदरी को इन सब बातों में विश्वास न था, वह सब की बाते सुनती थी। और कहती यह टोटके, जादू, टोने सब पाखंड़ हैं। आदमी ही सब कुछ है। बाकी तो झूट है, फरेब हैं। समाज में व्याप्त अंधविश्वास से उसका विश्वास टूट गया था। यह चेतना प्रतीक है। कुछ लोग धर्म की दुकान में यह सब्जी सजा कर बेंचते है और लोगों को हराते है। ऐसा उसका विश्वास था।''[14]

5.3 शिक्षित युवा वर्ग का सामाजिक दृष्टिकोण :

आज शिक्षित युवा वर्ग में अलग सामाजिक दृष्टिकोण नजर आते है। आज वह परंपरागत गलत धारणाओं को नकारकर प्रगति के नए राह पर चल रहा है। भारत में गरीबी के कारण जनता का एक बड़ा भाग गरीबी की रेखा के नीचे रहता है । गरीब व्यक्ति अपने लिए और बच्चों के भरण–पोषण में भी अपने को कभी–कभी असमर्थ पाता है । भारत में बहुत से बालक ऐसे हैं , जिनके माता–पिता बहुत गरीब हैं । गरीब माँ–बाप अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाते। वे बच्चों से घर का काम कर लेते हैं। यदि वह युवक खेती पर उनके रोजगार में सहायता न करें तो उन्हें और उनके पूरे परिवार

को दो समय का भोजन भी न मिले। इसलिए वे बच्चों को स्कूल नहीं भेजते। यदि वे बच्चों को स्कूल भेजना भी चाहते हैं तो बच्चों की किताब के लिए भी उनके पास पैसे नहीं होते।

आजादी के बाद भारत के विकास के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी उन्मुलन के प्रयास किए गए हैं । गरीबी निर्मूलन के नारे लगाकर स्वतन्त्र भारत में कई शासक सत्तारुढ हुए हैं, किन्तु इस दिशा में प्रगति बहुत धीमी रही। हमारी शिक्षा आयोगों ने इधर ध्यान दिया था और अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए थे। शिक्षा–नीतियों में भी इस ओर ध्यान दिया गया है । भारतीय संविधान ने छह से चौदह वर्ष के बालकों के लिए शिक्षा को अनिवार्य बनाने का निर्देश दिया था और दस वर्षे में इस लक्ष्य को प्राप्त करना था। संविधान के लागू होने के 67 वर्ष बाद भी हम इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाए हैं । केन्द्र सरकार ने राज्यों से प्राथमिक स्तर तक सभी छात्रों को मुफ्त किताबें देने के निर्देश दिए हैं, जिससे कुछ राज्यों ने पूर्णत: और कुछ ने अंशत: लागू किया है।

धन की समस्या ने अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा ने कठिनाईयाँ उत्पन्न की है। इन कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए हमने विश्व बैंक एवं अन्य अन्तराष्ट्रीय संगठनों से भी सहायता प्राप्त की है। अब हम यह आशा कर सकते हैं की दसवी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक हम आर्थिक रूप से वंचित छात्रों को अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा देने में समर्थ हो सकेंगे। भारत में कालान्तर में अनेक जातियाँ हो गई। इन जातियों में शुद्रों को निम्न जाति का माना गया है और देश के कुछ भागों में तो उन्हें छुना मना कर दिया गया। अस्पृश्यता भारत का एक सामाजिक कलंक बना। ये जातियाँ सामाजिक दृष्टि से सुख–सुविधाओं से वंचित कर दी गई। इन्हे समाज में रहने, लोगों के साथ उठने–बैठने, एक साथ भोजन करने, एक कुँए से पानी लेने को मना कर दिया गया। इस संदर्भ में लक्षता गुप्ता का कहना है, ''सामाजिक रूप से वंचित वर्ग सामाजिक दृष्टि से निर्बल होने के कारण आर्थिक दृष्टि से सामाजिक दृष्टि से भी निर्बल व वंचित हो गया।''[15] संविधान की धारा 45 में प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क और अनिवार्य रूप से देश के सभी बच्चों को उपलब्ध कराने का प्रावधान भी दिया गया। इसके बाद देश की पहिली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा–नीति 1991 तथा राष्ट्रीय शिक्षा–नीति की कार्ययोजना 1992 में भी देश के सभी 10 वर्ष तक के बच्चों को 21 वी शताब्दी में जाने से पूर्व शिक्षित किए जाने हेतू भरसक प्रयत्न करने की बात कही गई। सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्वीकार किया की शिक्षा का अधिकार प्रत्येक भारतीय

नागरिक का मूल अधिकार है और इसलिए इसे मुफ्त अधिकार में सम्मिलित किए जाने हेतु सरकार को निर्देश भी जारी किए गए इस सम्बन्ध में वर्षे 2009 में RTE-ACT (The right of children to free and compulsory education) 86 वाँ संविधान संशोधन बिल भी राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया, जिसके द्वारा प्राथमिक शिक्षा को बच्चों का मौलिक अधिकार और इसकी समुचित व्यवस्था करना सरकार का मौलिक दायित्व निर्धारित किया गया। उसके साथ–साथ शिक्षा प्रक्रिया विद्यार्थी केंद्रित, कृतिप्रधान, आनंददायी बनाना, वयानुरूप समकक्ष प्रवेश, छात्रों का सतत सर्वंकष मूल्यांकन, शिक्षा का समानाधिकार इसका अंतर्भाव इसमें है। आजादी के उपरान्त भारत सरकार ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों की शिक्षा की वास्तविक स्थिति और समस्याओं को जाना और सन 1960–61 मेंढेकर समिति का गठन किया गया। आयोग ने इनके समस्यात्मक कार्य–कलापों का अध्ययन कर हर प्रकार के साधनों तथा देश की विभिन्न संस्थाओं के द्वारा अथक परिश्रम कर यह पता लगाया की अनुसूचित जाति की बालिकाओं की शिक्षा में किन सुविधाओं की व्यवस्था नहीं की गई है। मेंढकर समिति ने भारत की राज्य और केन्द्र सरकारों से आग्रह किया की विशेष कार्यक्रम और निर्देशन में अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों में परिवर्तन लाने के लिए इन में प्राथमिक शिक्षा का विकास किया जाए। इसके लिए भाषा और संस्कृति का पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाए। प्राथमिक शिक्षा में आदिम जातियों की शिक्षा में उनकी भाषाओं का ही प्रयोग विकास किया जाए एवं उनकी भाषाओं में पुस्तकें तैयार की जाएँ। इन विद्यालयों ने शिक्षकों को आवास आदि की विशेष सुविधा दी जाए। इन जातियों की शिक्षा व्यवस्था में हस्तलिपि का विशेष ध्यान दिया जाए। इन जातियों में नि:शुल्क शिक्षा, मध्याह्न भोजन, पुस्तके, वस्त्र एवं लेखन सामग्री आदि नि:शुल्क व्यवस्था के रूप में ही जाए। इनके क्षेत्रों में विशेष विद्यालय स्थापित किए जाएँ, जिनमें ऐसे अध्यापक नियुक्त किए जाएँ, जिन्हें पिछड़ी जातियों के जीवन तथा उनकी संस्कृति का अच्छा ज्ञान हो। आयोग ने अनुसूचित जाति तथा जनजाति की बालिकाओं के लिए आवासीय आश्रम स्कूल बनाने का प्रस्ताव किया जो की इनकी शिक्षा के लिए उपयोगी साबित हो सके तथा इनकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक शिक्षा को केन्द्रित करने के लिए सर्वे किया जाए। आयोग ने इस स्कूलों को पूरे देश में लागू किए जाने का प्रस्ताव किया। किसी देश में लोकतन्त्रीय शासन की सफलता के लिए जनता का शिक्षित होना पहली अनिवार्य आवश्यकता हैं। जनता के द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन तन्त्र तभी सुचारू रूप से चल सकता है, जब की देश में आम लोगों को कम से कम इतनी शिक्षा

प्राप्त हो सके की वे अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक हों, संविधान द्वारा प्रदत्त मताधिकार का उचित प्रयोग कर सके और विधान मण्डल एवं संसद के लिए योग्य कर्मठ तथा ईमानदार व्यक्तियों को चुन सकें। इसप्रकार दृष्टिकोण अपनाने पर समाज का विकास हो सकता है।

समसामयिक उपन्यास साहित्य मानव जीवन के बीच सफलताओं, असफलताओं के मूल्यों को खोजता हुआ आगे बढ़ता है। इस कालखंड का उपन्यास साहित्य सामाजिक विसंगतियों को उद्घाटित करता हुआ सामाजिक, विषमता, शोषण, चेतना, प्रवाह अपने अस्तित्व को बदलने की कोशिश करके नई परिवर्तित समाजव्यवस्था निर्माण करने का प्रयास करता है।

गिरीराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास में सामाजिक दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास में दलित छात्रों के संघर्ष एवं संकल्प की महागाथा दिखाई देती है। इस उपन्यास में दलित समाज के छात्रों की दारूण पीड़ा नजर आती है। राष्ट्रीय महत्त्व की महान शिक्षा–संस्थाओं में किसी तरह की प्रमाणपत्र प्राप्त करनेवाले साधनहीन और तथाकथित जातिहीन छात्रों की त्रासदी उबलते तेल में डाल दिये जानेवाले व्यक्ति के संत्रास की तरह होती है जो प्रस्तुत उपन्यास के रूप में दिखाई देती है। इस उपन्यास से ज्ञात होता है की अपनी मुक्ति की लड़ाई लड़नेवाला हर छात्र एक जैसे दबाव में जीने के लिए मजबूर है, जो उसे मर जाने के लिए बाध्य करता है या फिर संघर्ष को तेज करने की चुपचाप प्रेरणा देता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने भारतीय दलित वर्ग के छात्रों की तमाम त्रासदी एवं मानवीय आवश्यकताओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। लेखक वास्तविकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''अनुसूचित कोई जाति नहीं, मानसिकता है। जिसे अभिजात वर्ग परे ढकेल देता है, वह अनुसूचित हो जाता है।''[16] इसप्रकार की सामाजिक भयानक मानसिकता को लेखक ने उजागर किया है।

मदन दीक्षित के 'मोरी की ईंट' कई परिवारों, परिवेशों की आर्थिक–सामाजिक विसंगतियों एवं अन्तविरोधों की कथा है। अनेक मेहतरों ने ईसाई धर्म को स्विकार किया परंतु विषम सामाजिक व्यवस्था के कारण इस नवीन चेतना और धर्म परिवर्तन के बाद भी उनकी सामाजिक स्थिती में कोई अंतर नहीं आया। ''उच्च शिक्षा प्राप्त करने और ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने के बाद भी वे अपने आपको मेहतर समुदार का एक अंग समझने के लिए मजबूर थे।''[17] इस प्रकार उपन्यासकार विषम सामाजिक स्थितियों से उत्पन्न होनेवाले अनेक ज्वलन्त प्रश्नों को स्वर प्रदान किया है। शोषण और अत्याचार के विरूद्ध आस्था और संघर्ष की कथा नये आयामों का सर्जन करेगी।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास सामाजिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। प्रस्तुत उपन्यास में स्कूल में सुनीत को अपमानित किया जाता है। जाति के नाम पर जलील किया जाता है। वह परंपरागत सामाजिक व्यवस्था का शिकार बनता है। लेकिन कुछ लोग इस घिनौनी सामाजिक व्यवस्था से दूर है। सुमित्रा ब्राह्मण वर्ग की छात्र है, लेकिन उसका परिवार जातीयता से दूर है। सुमित्रा सदैव सुनीत की सहायता करती थी। इस संदर्भ में लेखक का कहना है, ''सुमित्रा पर स्वतंत्रता, समता, बंधुता, न्याय के संस्कार थे। उनका परिवार खुशहाल था। जातियों के भयानक जंगल की सीमाओं में कैद नहीं थे। वे उनके पिता काफी प्रगतिशील थे।''[18] इसप्रकार बदलता सामाजिक दृष्टिकोण नजर आता है।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में सामाजिक दृष्टिकोण चित्रित हुआ है। चंदन शहर में आकर उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। वह अपने शिक्षा का उपयोग समाज के उत्थान के लिए करता है। वह अन्याय के खिलाफ उठकर खड़ा होता है। ठाकुर की बेटी समतावादी विचारों की वाहक है। वह चंदन की सहायता करती है। उसे अपने पिता ठाकुर का कार्य आपत्तिजनक लगता है। वह कहती है, ''संविधान के अनुसार देश के प्रत्येक नागरिक को सम्मान और स्वाभिमानपूर्वक जीने का हक है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वेच्छानुसार व्यवसाय चुनने और जीवन की दिशा निर्धारित करने की स्वतंत्रता है। यदि चंदन पढ़–लिखकर कुछ काबिल बनना चाहता है तो यह उसका संविधानिक हक है, इस पर किसी को एतराज क्यों होना चाहिए।''[19] इसप्रकार चंदन और सुमित्रा के सामाजिक परिवर्तन के विचार दिखाई देते है।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' में ठाकुर साहब और उनकी इकलौती पुत्री रजनी में सामाजिक विचारों में भिन्नता का चित्रण हुआ है। रजनी को मातापुर के हरिजानों के प्रति दया निर्माण होती है। ठाकुर साहब की मान्यता है कि ''यदि ये सब लोग पढ़–लिखकर उँचे ओहदों तक पहुँचने लगेंगे तो हमारी श्रेष्ठता कही रह जाएगी। यदि ये सब स्वावलम्बन और स्वाभिमान का जीवन जीने लगेंगे तो फिर हमारा वर्चस्व किस पर रहेगा। प्रश्न औचित्य–अनौचित्य का नहीं है। बल्कि अपनी अस्मिता का है। इतिहास और परम्परा से समाज में हमारा वर्चस्व रहा है। हमारा वर्चस्व कायम रहे, हमारी अस्मिता इसी में है।''[20]

रजनी अपने पिता की झूठी अस्मिता का पर्दाफाश करती है। ''कसूर पिताजी ! बेकसूर नहीं है आप भी ! यदि परम्पराएँ गलत हो, जनविरोधी हो यदि व्यवस्था दोषपूर्ण हो, तो उनका विरोध

किया जाना चाहिए। इसलिए दोषी हैं आप बराबर के, और आपके दोष का दंड न केवल आपको भोगना पडेगा, बल्कि हम भी अछूते नहीं रह पायेंगे उससे।''[21] रजनी का यह सामाजिक विचार जो वर्तमान अवस्था में अनिवार्य बात है।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में चंदन के साथ पढ़ने वाले उसके तीन मित्र हैं और तीनों ही दलित हैं – रामहेत, रतन और नन्दलाल! तीनों की आगे जाकर अलग–अलग व्यवसाय करने की मनोकामना है। अपने–अपने व्यवसाय या कार्य के प्रति अलग–अलग अनुमान लगाते हैं। तब चंदन रामहेत से कहते हैं कि ''हमें प्रत्येक क्षेत्र में आना चाहिए। केवल सामाजिक रूप से ही हमारी परिस्थिति भिन्न नहीं है बल्कि आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक प्रत्येक क्षेत्र में हम पिछड़े हैं। हमे प्रत्येक क्षेत्र में ऊपर आने की जरूरत है, लेकिन सबसे पहले जरूरत है सामाजिक सम्मान की। यदि तुम्हारे पास सामाजिक हैसियत है तो तुम्हारे लिए हर कही गुंजाइश हो सकती है। यदि तुम्हारी कोई सामाजिक हैसियत नहीं हैं तो चाहे तुम कोई काम कर लो, कितना भी धन कमा लो इस सब का कोई महत्त्व नहीं। पैसा भी जीवन का एक फैक्टर है, मैं इससे इनकार नहीं करता, लेकिन उससे पहले जरूरी है, समाज में तुम्हारी हैसियत का होना।''[22] इस प्रकार यहाँ सामाजिक दृष्टिकोण नजर आता है।

5.4 शिक्षित युवा वर्ग का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण :

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। धर्मनिरपेक्ष से तात्पर्य है की किसी एक धर्म को प्राधान्य नहीं होता है। धर्मनिरपेक्ष में समता, न्याय, बंधुता एवं मानवता की पहल होती है। प्राचीन भारत में शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था। छात्र का सर्वांगीण विकास उसका लक्ष्य था। धर्म और दर्शन का विशेष ज्ञान एवं चरित्र निर्माण का शिक्षा में विशेष स्थान था। मध्ययुग में मुस्लिम शासकों ने शिक्षा की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। ब्रिटिश काल में शिक्षा सीमित लोगों को उपलब्ध हो सकी। फिर भी उसका स्तर अच्छा ही रहा। वर्तमान काल में शिक्षा अधिक लोगों तक पहुचने के लक्ष्य के कारण शिक्षा का विकास तो हुआ पर उसका ऱ्हास हुआ जिससे शिक्षा का स्तर लगातर गिरा है। इस संदर्भ में रमेश अग्रवाल का कहना है, ''यही कारण है की ब्रिटिश काल का कक्षा 10 वी का छात्र जो विषय ज्ञान रखता था वह आज का बी. ए. पास छात्र नहीं रखता। सामान्य ज्ञान में तो वह बहुत पीछे हैं। दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था के कारण हम न तो उसका चरित्र सुधार पाये और न उसे व्यावसायिक दृष्टी से कुशल

बना पाये''[23] भारत में शिक्षा के सभी स्तरों पर गिरावट देखने को मिलती है। हमारे देश में शिक्षा का कोई स्पष्ट और निश्चित उद्‌देश्य नहीं है। केवल वार्षिक परीक्षा पास करा देना ही हमारी शिक्षा का उद्‌देश्य है तभी तो बिना परिश्रम के छात्र डिग्री प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। इससे शिक्षा का स्तर लगातार गिरा है। डिग्रियाँ भी ज्ञानार्जन के लिए कम जीविकापर्जन के लिए अधिक प्राप्त की जाती है। जनसंख्या विस्फोट के कारण हर कक्षा में 25–30 छात्राओं से अधिक नहीं होना चाहिए। फलत: न तो छात्र पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित कर पाते है और न शिक्षक छात्रों पर व्यक्तिगत ध्यान दे पाते हैं। भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, आरक्षण, राजनैतिक दबाव आदि के कारण बहुधा अयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति हो जाती है जिससे शिक्षा का स्तर अपने आप गिरने लगता है। प्रशिक्षित शिक्षकों के होते हुए भी अप्रशिक्षित और अयोग्य शिक्षकों की भरती से शिक्षा का स्तर गिरा है। बहुत अधिक विषयों के बोझिल पाठ्यक्रमों जो छात्रों के जीवन में उपयोग में नही आते, परिणामस्वरूप शिक्षा का स्तर गिरा रहा है। बोझिल पाठ्यक्रमों को पूरा करने के लिए छात्रों की रूचि आवश्यकता आदि का ध्यान न रखते हुए व्याख्यान विधि को अपनाते हुए अधिकांश शिक्षक अध्यापन करते है। यह भी शिक्षा के स्तर में गिरावट का महत्त्वपूर्ण कारण है।

आज हर संस्था में अपना पराया देखा जा रहा है। अभिभावकों के अनुचित दबाव, संस्थाओं की दोषपूर्ण चयन प्रक्रिया के कारण छात्रों को उनकी रूचि, क्षमता एवं परिस्थिति के विपरित विषयों का चयन करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यह भी शिक्षा के स्तर में गिरावट का कारण बनता है। भाषा ज्ञान अन्य विषयों के ज्ञान का आधार है। फलत: ज्ञानार्जन हेतु भाषा का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। किंतु हमारे यहाँ पाठ्यक्रम में अंग्रेजी, हिन्दी और प्रादेशिक भाषा या संस्कृत, उर्दू के रूप में तीन भाषाएँ पढ़ने हेतु प्रत्येक छात्र को विवश होना पड़ता है। इससे वह किसी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाता। यह भी शिक्षा के स्तर में गिरावट का प्रमुख कारण है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बदलाव की आवश्यकता है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में छात्रों एवं शिक्षकों का मूल्यांकन वार्षिक परीक्षा में प्राप्तांको के आधार पर किया जाता है। फलत: ऐसी स्थिति में शिक्षा के स्तर में गिरावट आना स्वाभाविक है क्योंकि छात्र विषय को भली–भांति समझे बिना रटकर परीक्षा पास करने का प्रयास करते हैं। कुछ छात्र तो केवल नकल या अनुचित साधनों का सहारा लेकर वार्षिक परीक्षा पास करने हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। शिक्षा के स्तर में गिरावट का यह महत्त्वपूर्ण कारण है। हमारी सरकारों का ध्यान भी शिक्षा को संख्यात्मक या परिमाणात्मक विकास की ओर है।

शिक्षा के गुणात्मक सुधार हेतु हमारी सरकारें कम ही ध्यान दे पाती है , यह भी हमारी शिक्षा के स्तर में गिरावट का महत्त्वपूर्ण कारण है। शालेय स्तर पर छात्रों का सर्वांगीण विकास और महाविद्यालयीन/ विश्वविद्यालयीन स्तर पर छात्रों का विशिष्ठ क्षेत्र में विशिष्ठ विकास हमारी शिक्षा का उद्देश्य निश्चित किया जाना चाहिए। शालेय स्तर का उद्देश्य निश्चित किया जाना चाहिए। शालेय स्तर पर शारीरिक विकास हेतु, व्यायाम हेतु, खेलकूद की मानसिक विकास हेतु, सांस्कृतिक/साहित्यिक गतिविधियों को बौद्धिक विकास हेतु व्यावहारिक एवं जीवनोपयोगी विषय ज्ञान को चरित्र निर्माण हेतु नैतिक/धार्मिक शिक्षा की जीवकोपार्जन हेतु व्यावसायिक शिक्षा की समुचित और दैनिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

आज कक्षा में छात्रों की भरमार के कारण अध्यापक सबकी ओर ध्यान नहीं दे सकता है। इसलिए कक्षा में छात्रों की संख्या मर्यादा में होनी चाहिए तब अध्यापक छात्रों में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण की पैरवी कर सकता है, अन्यथा उसके विचार छात्रों तक नहीं पहुँच सकेंगे। अध्यापक कक्षा के प्रत्येक छात्र की ओर व्यक्तिगत ध्यान दे सके, उसकी विषयगत कठिनाइयों का निराकरण, उसका व्यक्तिगत मार्गदर्शन, गृहकार्य का समुचित अवलोकन आदि कर सके इसलिए कक्षा में छात्रों की संख्या कम की जानी चाहिए। इस हेतु 30–35 की संख्या ही आदर्श हो सकती है। शिक्षकों की चयन प्रक्रिया का मापदंड ऐसा बनाया जाना चाहिए की भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, आरक्षण, राजनैतिक दबाव उसे प्रभावित न कर सके। इस हेतु लिखित परिक्षा के प्रतिशत, खेलकूद के प्रमाणपत्र, साहित्यिक, सांस्कृतिक, गीतविधियों के प्रमाणपत्र, शारीरिक शिक्षा, एन.सी.सी., एन.एस.एस. आदि के प्रमाणपत्रों को समुचित अधिभार दिया जाना चाहिए। शिक्षक चयन प्रक्रिया के मापदंड सार्वजनीय एवं सार्वकालिक होने चाहिए जो सभी प्रकार की शिक्षा संस्थाओं पर लागू हो तथा इन्हें कोई भी अधिकारी अपनी स्वेच्छा से बदल न सके। अप्रशिक्षित शिक्षकों का चयन किसी हालत में नहीं किया जाना चाहिए। इससे न केवल भ्रष्टाचार और भाई–भतीजावाद को बढ़ावा मिलता है। वरन प्रशिक्षण संस्थाओं का महत्त्व ही समाप्त हो जाता है। पाठ्यक्रम में विषयों की भरमार न होने दी जाये। उपयुक्त विषयों के केवल जीवनोपयोगी अंश ही उसमें शामिल किये जावे। विषयों के अध्यापन हेतु मनोवैज्ञानिक एंव प्रभावशाली शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए। केवल व्याख्यान विधि पर आश्रित रहना उचित नहीं है।

आज छात्र का सर्वांगीण विकास हेतु अच्छे संस्कार होने जरूरी है। वह धार्मिक कट्टरता को अपनाने से उसका और समाज का नुकसान हो सकता है। इसलिए उसमें धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण की पैरवी करनी आवश्यक है। वह हर क्षेत्र में योगदान देंगा तो उसका परिवार, समाज और राष्ट्र का विकास होंगा। मनोवैज्ञानिक परीक्षण तथा शिक्षा संस्था में छात्र के प्रदर्शन के आधार पर छात्र को किस संकाय या क्षेत्र में प्रवेश दिया जाए यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इस हेतु अभिभावकों एवं छात्रों को समुचित मार्गदर्शन देने हेतु मार्गदर्शन प्रकोष्ठ स्थापित किये जाना चाहिए ताकि छात्रों को उनकी रूचि और क्षमता के अनुरूप विषयों का चयन करने की सुविधा मिल सके। जो छात्र खेलकूद में अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं उन्हें ऐसी शिक्षा संस्था में प्रवेश दिया जाना चाहिए जहाँ उन्हें सामान्य विषयों की शिक्षा के साथ खेलकूद का विशिष्ट प्रशिक्षण दिया जा सके। इसी प्रकार जो छात्र कला, साहित्य एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में उत्तम प्रदर्शन कर रहे हो उन्हें ऐसी शिक्षण संस्था में प्रवेश दिया जाना चाहिए जहाँ उन्हें विभिन्न विषयों की सामान्य शिक्षा के साथ कला, साहित्य एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में विशिष्ट शिक्षण–प्रशिक्षण दिया जा सके।

व्यावसायिक क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन करनेवाले छात्रों को ऐसी शिक्षा संस्था में प्रवेश दिया जाना चाहिए जहाँ वह अपने मन के व्यवसाय की विशिष्ट शिक्षा के साथ विभिन्न विषयों की सामान्य शिक्षा प्राप्त कर सकें। तात्पर्य यह की हम छात्रों की क्षमता और अभिरूचि के अनुरूप पाठ्यक्रम का निर्माण एवं शिक्षा संस्थाओं का संचालन सुनिश्चितम करना होगा। अनेक भाषाओं को सभी छात्रों के लिए अनिवार्य करना उचित नहीं है। हमे प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में और शेष शिक्षा राजभाषा में देने की यथाशीघ्र व्यवस्था करनी चाहिए। अंग्रेजी भाषा को एक वैकल्पिक विषय बनाया जाना चाहिए। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, प्राथमिक शिक्षा के लिए एवं शेष शिक्षा हेतु राष्ट्रभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए। छात्रों का मूल्यांकन केवल वार्षिक परीक्षा के आधार पर न किया जावे। इस हेतु सतत सर्वंकष मूल्यांकन की व्यवस्था की जाये ताकि छात्र वर्षभर शिक्षा संस्था में उपस्थित रहें एवं पढ़ाई करें। छात्रों का मूल्यांकन केवल विषयगत ज्ञान का ही नहीं वरन शारीरिक शिक्षा, खेलकूद, मानसिक शिक्षा, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक गतिविधियाँ, नैतिक शिक्षा, चरित्र निर्माण की शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, क्राफ्ट आदि में भी किया जाना चाहिए जिससे उनका गुणात्मक विकास हो एवं छात्रों की अंकसूची में इन सभी क्षेत्रों में छात्रों की उपलब्धियों का लेखा प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इससे छात्र का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित होगा एवं उसके व्यक्तित्व का पूर्ण

मूल्यांकन होगा। साथ ही इससे रहने, अनुचित साधनों का सहारा लेने की प्रवृत्ति भी समाप्त हो जायेगी। हमारी केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को छात्रों के शिक्षा स्तर को सुधारने गुणात्मक सुधार करने की ओर विशेष ध्यान देकर एवं इस हेतु शिक्षा के लिए अधिक धनराशी उपलब्ध करानी चाहिए। हमारी शिक्षा में सैद्धांतिक पक्ष के साथ उसके व्यावहारिक पक्ष को सुदृढ़ बनाने हेतु भी प्रयास किये जाना चाहिए। इसप्रकार युवाओं के विकास के लिए प्रचार करना चाहिए।

हमारा देश धार्मिक दृष्टि से धर्मनिरपेक्ष कहलाया जाता है। यहाँ हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन आदि अनेक धर्म एक साथ समान अधिकार के साथ पाये जाते है। फिर भी हिंदू धर्म के अलावा भी अल्पसंख्यांक होने के कारण दूसरा स्थान प्राप्त करते है। हिन्दु में भी वर्णव्यवस्था के कारण सवर्ण और अवर्ण धर्म का भेद किया जाता हैं। जिसके कारण धर्मनिरपेक्षता में बाधा आती है। धर्म समाज को प्रभावित करता है। समाज का संचालन धर्म द्वारा ही होता है। वर्ण–वर्ग संघर्ष का परिणाम सांस्कृतिक क्षेत्र पर प्रतिकुल रूप में दिखाई देता है।

सत्यप्रकाश के 'जस तस भई सबेर' उपन्यास में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास में शिवदास शिक्षित है। वह समाज में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण प्रवाहित करना चाहता है। साथही सरवन, रूपलाल समाज में परिवर्तन लाकर धर्मनिरपेक्ष विचार प्रवाहित करना चाहते हैं। वे समाज में परंपरागत धार्मिक नियमों को तोड़कर समानताजनक एवं धर्मनिरपेक्ष विचार सामने लाते हैं। वे समाज का कल्याण होने के विचार सामने लाते हैं। रूपलाल कहते हैं, ''हमें समाज में व्याप्त मिथकों को तोड़ना होगा। कोरे बुद्धिवाद से निपटना होगा। संकीर्णताओं एवं कलुषभावों को त्यागना होगा। कल्याणमित्र बनना होगा और इसके लिए हमें सर्वप्रथम तमसभरी रात्रि को चीरकर प्रकाश की ओर बढ़ना होगा। अपनी प्रज्ञा और शक्ति को पहचानना होगा। अपनों की परिभाषा को बदलना होगा। तभी हम सबका और समस्त समाज का कल्याण संभव हैं।''[24] इसप्रकार लेखक इस उपन्यास के माध्यम से धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण सामने लाना चाहते हैं।

मोहनदास नैमिशराय ने 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में धर्मनिरपेक्ष विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास से स्पष्ट होता है की दलित छात्र सीखना चाहता है । वे धर्मनिरपेक्ष विचार अपनाकर मुख्य धारा में आना चाहते हैं। वे मानवीय अधिकारों को अपना रहे हैं। वे समान स्तरीय नई समाज रचना का निर्माण का प्रयास कर रहे हैं। इस उपन्यास में बंसी का बेटा सुनीत जागृत है। वह शिक्षित बनकर समाज में परिवर्तन लाना चाहता है। इस संदर्भ में विकास विधाते का कहना है,

''उपन्यास में बंसी का बेटा सम्मान के प्रति जाग गया है। वह दलित बस्तियों में शिक्षा का प्रचार और प्रसार कर रहा है।''[25] इसप्रकार सुनीत धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाकर समाज में जागृती लाकर समाज में परिवर्तन लाना चाहता है। वह परंपरागत धार्मिक नियमों को नकारकर समाज में धर्मनिरपेक्ष विचार प्रवाहित करना चाहता है।

गिरीराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में धर्मनिरपेक्ष विचारों को स्पष्ट किया है। प्रस्तुत उपन्यास में रामउजागर, निलम्मा, अनुकूल आदि पात्र धर्मनिरपेक्षता की पहल करते हैं । इस उपन्यास में आई.आई.टी. कानपुर के अध्यापक धार्मिक कट्टरता और जातीयता अपनाते नजर आते है। लेकिन दलित छात्र इसका विरोध करते हैं। रामउजागर, अनुकूल समानता की पैरवी करते हैं और धर्मनिरपेक्षता की वकालत करते हैं। अध्यापक खन्ना जैसे लोग धार्मिक कट्टरता और भेदाभेद को अपनाते हैं। अध्यापक खन्ना अपने छात्र अनुकूल को गाली देकर कहता है, '' अगर तुम अपनी सीमाओं को समझते हो तो ठीक है ..... नहीं समझते तो समझो। रियाया की स्थिति से ऊपर उठने में अभी समय लगेगा। अगर हम लोगों की बराबरी करनी थी तो वैसा ही बोझ चाहिए था।''[26] इसप्रकार अध्यापक धार्मिक कट्टरता अपनाने पर भी निलम्मा, अनुकूल, रामउजागर अनेक विरोधों के बावजूद धर्मनिरपेक्षता और समानता की बात करते हैं।

मदन दीक्षित द्वारा लिखित 'मोरी की ईंट' उपन्यास में धर्मनिरपेक्ष विचारों को स्पष्ट किया है। '' आज की दुनिया में भी जैकब की योग्यता के मुकाबले में उसका धसीटे भंगी का परपोता होना ज्यादा महत्त्व रखता है।'' इस मानसिकता को तोड़ना होगा। आवश्यकता इस बात की है कि समाज में समूल क्रांति आए। धर्म बदलने पर भी जाति पीछा नहीं छोड़ती। ''हमने सोचा था कि क्रिस्टन हो जायेंगे तो मेहतर की जान से तो जान छूट जायेगी। लेकिन यह कि धर्म छोड़ दिया मगर जान ने फिर भी पिंड़ नहीं छोडा।''[27] धर्म व्यक्ति के चेतना को न जागृत करता हैं, न कोई विज्ञान–सम्मत दृष्टि प्रदान करता है। नाम परिवर्तन द्वारा वह केवल एक समाज से मुक्त होकर दूसरे समाज का सदस्य–भर बन जाता है।

अपने मूल धर्म के परम्परागत संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाता, धर्म से जाती नहीं बदल जाती। सोच में बदलाव नहीं आ जाता। यही हमारा सामाजिक यथार्थ है। जैकब को जातिगत संरचना के विषय में समझाने हुए फादर जोशी कहते है ''बेटे' इस देश में ऊँची–ऊँची जातियों की भावना इतनी गहरी घुसी हुई है कि इन्सानी बराबरी की बात यहाँ बेनामी होकर रह गई है। अछूत और नीची

कही जानेवाली जातियाँ भी बीमारी से अछूत नहीं हैं। कुम्हारों से, कुम्हार धोबियों को, धोबी चमारो को, चमार खटीकों को, खटीक मेहतरों को नीचा मानते है और कंजड़ के हाथ का छुआ खा लेने से तो मेहतर का भी जाति चली जाती है।''[28]

5.5 शिक्षित युवा वर्ग का अर्थविषयक दृष्टिकोण :

समाजव्यवस्था की रीढ़ अर्थव्यस्था है। उसके बगैर समाज गतिमान नहीं हो सकता है। आज युवाओं पर भारत की अर्थव्यस्था टीकी है। भारत को महासत्ता बनाने के लिए युवाओं को ही सामने आना है। भारतीय आर्थिक समस्याओं के सैद्धान्तिक हल के लिए हमारे राष्ट्रनिर्माताओं ने संविधान बनाने के समय उनका समावेश अनुच्छेद 16, 19, 23, 24, 39, 41, 42, 46, 49 में कर दिया, लेकिन आज तक हम आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना में सफल नहीं हो पाए हैं। सैद्धान्तिक हलों से समस्या का समाधान नहीं होता, इनका क्रियात्मक हल ढूँढ़ना होगा। इसकी क्रियान्विति का सशक्त साधन ढूँढ़ना होगा। किसी परम्परागत समाज में परिवर्तन लाना है तो शिक्षा ही उस परिवर्तन का सशक्त साधन हो सकता है। इस मान्यता की पुष्टि करते हुए डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है, '' यदि बिना किसी हिंसात्मक क्रान्ति (इस तरह की क्रान्ति की स्थिति में भी उसकी आवश्यकता होगी) के बड़े पैमाने पर परिवर्तन करना है तो केवल एक ही साधन हैं, जिसका प्रयोग किया जा सकता है और वह है शिक्षा। अन्य बातें भी इसमें सहायता कर सकती है और वास्तव में कभी–कभी तो उनका असर ऊपरी तौर पर अधिक भी जान पड़ सकता है। मगर शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली ही एक ऐसा साधन है, जो सभी लोगों तक पहुँच सकता है।''[29] शिक्षा को हमारे मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में एक सशक्त साधन के रूप में लिया जा सकता है। यह तभी सम्भव हैं जब की हमारी शिक्षा के उद्देश्य यथार्थ के धरातल पर आधारित हो। हमारा लक्ष्य आर्थिक विकास है, जो की हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूल्य लक्ष्य है। अत: आधुनिक भारत की शिक्षा का प्रथम उद्देश्य 'आर्थिक विकास' होना चाहिए। कृषि एवं सम्बद्ध विज्ञानों की शिक्षा एवं अनुसंधान पर बल देना चाहिए क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 70% जनता कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित उद्योग से अपना जीवन निर्वाह करती है। कृषि एवं कृषि–सम्बद्ध उदयोगों के आधुनिकिकरण एवं विकास से ही हमारी अर्थव्यवस्था में सुधार सम्भव है। कृषि की शिक्षा, सम्बद्ध उदयोंगो की शिक्षा

एवं तत्सम्बन्धित अनुसंधान पर सर्वाधिक बल दिया जाना चाहिए। आधिकाधिक छात्रों को इसी दिशा में अध्ययन एवं अनुसंधान हेतु प्रेरित करना चाहिए।

भारत की अर्थ–व्यवस्था कृषि प्रधान अर्थ–व्यवस्था है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में 7–8 वर्ष की सामान्य शिक्षा की अनिवार्यता उपयोगी है, किन्तु उच्च एवं उच्चतर शिक्षा की उपयोगी नहीं कहा जा सकता। यहाँ सामान्य शिक्षा के बाद व्यवसाय की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे की एक ओर युवक युवतियों को जीवन में प्रवेश के लिए तैयार कर सके तो दूसरी ओर राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि में योगदान कर राष्ट्रीय–आर्थिक विकास कर सकें। इसके माध्यम से हम शिक्षा को उत्पादकता से भी जोड़ सकेंगे। इसलिए देश के आर्थिक विकास के लिए युवाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

भारत एक लोकतान्त्रिक समाजवादी समाजव्यवस्था अपनानेवाला देश हैं। इसलिए समाज के सभी वर्गों को उत्पाद में वृद्धि करने वाली शिक्षा सुलभ कराई जाए। उत्पाद वृद्धि से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी और राष्ट्रीय आय में वृद्धि से राष्ट्रीय आर्थिक विकास होगा। राष्ट्र में बेरोजगारी कम होगी। सभी को आजीविका के अधिकाधिक एवं उत्तम अवसर मिलेंगे। हमारे मानवीय एवं भौतिक संसाधानों में वृद्धि होगी। भारत के प्रमुख उद्योग कृषि एवं पशुपालन का विकास होगा। इस दृष्टि से शिक्षा उत्पादनोन्मुख होनी चाहिए। उत्पादनोन्मुख शिक्षा– उत्पादन में वृद्धि से आर्थिक विकास होगा। इस दृष्टि से शिक्षा जब तक शिक्षा का जन–जन पहुँचने वाले साधन– उत्पादकता से नहीं जोड़ा जाता, तब तक हमारी आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकती। अत: शिक्षा का पहला उद्देश्य उत्पादकता से जुड़ना है। उत्पादकता से जोड़ने की दृष्टि से शिक्षा–क्षेत्र में निम्नांकित कदम उठाने होंगे, शिक्षा में शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा, अंग्रेजी शासन काल में शिक्षा को नौकरी से जोड़कर शिक्षितों के मन में शारिरिक श्रम के प्रति हीनता की भावना पैदा कर दी, जिसका भयंकर दुष्परिणाम हुआ, शिक्षा के उत्पादकता से दूर हो गई। महात्मा गांधी ने शिक्षा के क्षेत्र में इस कमी को पहचाना और बुनियादी शिक्षा में श्रम की प्रतिष्ठा कर शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ने का प्रयास किया।

युरोप के समाजवादी देशों के शैक्षिक पाठ्यक्रम में शारीरिक कार्य, कार्यानुभव आदि विभिन्न नामों से इस विषय को अनिवार्य रूप से शामिल किया जा सकता है। शिक्षा आयोग ने इसे कार्यानुभव नाम देकर सामान्य शिक्षा के अन्तिम अंग के रूप में मानने की सिफारिश की है। कार्यानुभव का अर्थ स्कूल, घर, कारखाने, फैक्ट्री या अन्य किसी भी उत्पादक स्थिति में उत्पादक काम में भाग लेना है, जिससे की शिक्षा और कार्य का एकीकरण हो सके और शिक्षित जनशक्ति, कुशल जनशक्ति में

परिणित होकर उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन बन सके। माध्यमिक स्तर तक समाजोपयोगी उत्पादक शारीरिक कार्य को अनिवार्य अंग के रूप में अपनाना, अंग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप काम की दुनिया और अध्ययन–अध्यापन की दुनिया के बीच तक चौडी खाई बन गई, जिससे की शारीरिक कार्य को हल्का समझकर हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। परिणामत: एक ओर जहाँ देश के कुटीर एवं गृहउद्योग नष्ट हो गए, वहाँ दूसरी और बेरोजगारी की बाढ़ आ गई, जिससे की उत्पादन में ऱ्हास हो गया और आर्थिक विकास कम हो गया।

आर्थिक विकास की दिशा में आगे बढ़ने के लिए पहली जरूरत, उत्पादक कार्यों की प्रशिक्षण द्वारा शारीरिक श्रम के प्रति निष्ठा पैदा करना है। शिक्षा कार्यक्रम में इसके क्रियान्वयन में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।, इसे कृषि तथा अन्य लघु उदयोगों से, जिनमें विज्ञान एवं तकनीकी के माध्यम से उत्पादन क्रियाएँ होती है, सम्बद्ध किया जाना चाहिए। इसका उद्देश्य कुछ न कुछ कमाना होना चाहिए, जिससे सीखो और कमाओं को सिद्धान्त पर शिक्षा आगे बढ़े। शिक्षा तब तक पूर्ण नहीं मानी जाए, जब तक की वह किसी न किसी प्रकार के ऐसे उत्पादक कार्य में भाग लेकर कुछ कमा ले। प्रभावकारी शैक्षिक साधन होने के अतिरिक्त समाजोपयोगी उत्पादक कार्य निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य करेगा। बौद्धिक और शारीरिक कार्य के अन्तर और उसपर आधारित सामाजिक स्तर के निर्माण की तीव्रता को कम करना। युवकों को कर्म–क्षेत्र में प्रवेश दिलाना। रोजगार की समस्या को आसान बनाना। राष्ट्रीय उत्पादन वृद्धि में योगदान करना– उत्पादन– क्रिया तथा विज्ञान के उपयोग के लिए छात्रों में अर्न्तदृष्टि का विकास करके तथा उनमें विकास करके तथा उनमें कठिन एवं उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य करने की आदत डालकर, सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकीकरण में योगदान करना– व्यक्ति एवं सामुदाय के बीच सम्बन्ध सुदृढ बनाकर तथा शिक्षित व्यक्तियों एवं सामान्य जनता में एक–दूसरों को समझने की सुझ उत्पन्न करना । विज्ञान को शिक्षा के मुलाधार के रूप में अपनाना आदि। भारत एक परम्परागत समाज से आधुनिक समाज की और बढ़ रहा है। आधुनिक समाज विज्ञान आधारित टेक्नोलोजी का उपयोग और विकास करता है। जिससे कृषि के आधुनिकीकरण और उद्योग के विकास से अपना विकास करता है। भारत को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में आर्थिक विकास के सशक्त साधन शिक्षा को विज्ञान आधारित बनाना होगा। आर्थिक विकास क्षेत्र में हुए अनुसन्धान इस बात की पुष्टि करते है की शिक्षा, विज्ञान एवं टेक्नोलोजी आर्थिक विकास में 50% तक योगदान करते है। इस निष्कर्ष के आधार पर बहुत से

देश अपना राष्ट्रीय उत्पादन बढाने में सम्पन्न हुए है। अत: हमे 'विज्ञान' को विद्यालयी शिक्षा का अभिन्न अंग बनाना होगा। विश्वविद्यालय स्तर पर मानविकी करना होगा। देश के आर्थिक विकास के लिए इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। इसप्रकार देश का आर्थिक विकास संभव है।

रामधारीसिंह दिवाकर के 'आग पानी आकाश' में अर्थविषयक दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास में बब्बन धोबी के दोनों बेटे–भागवत और युगेश्वर शिक्षा प्राप्त करते हैं। उनसे प्रेरणा लेकर अनेक छात्र शिक्षा प्राप्त करते हैं। भागवत शिक्षा प्राप्त करके नेता बनता है। युगेश्वर शिक्षा प्राप्त करके अधिकारी बनता है। इस प्रकार वे आर्थिक दृष्टि से सक्षम बनते हैं। उरावजी शिक्षा प्राप्त करके ग्रामसेवक बनता है। वह दलित बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसप्रकार वे शिक्षा प्राप्त करने से आर्थिक दृष्टि से सक्षम बनते नजर आते हैं।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में अर्थविषयक दृष्टिकोण नजर आता है। प्रस्तुत उपन्यास में स्पष्ट होता है की बंसी के पास संपत्ती नहीं है। फिर भी अर्थ के लिए संघर्ष करके सुनीत को पढ़ाता है। वह उसका जीवन सुखमय करना चाहता है। लेखक कहते है, '' उसकी आय तो सीमित थी, पर दिन–ब–दिन मंहगाई बढ़ती जा रही थी। कुछ अतिरिक्त खर्च बढ़ने लगे थे।''[30] इस महँगाई में भी सुनीत को बंसी पढ़ाता है। अर्थ के अभाव में बंसी शिक्षा के प्रति आस्था रखता है। दूसरी तरफ हम देखते है की ब्राह्मण समाज परंपरा से आर्थिक दृष्टि से सक्षम है। इस उपन्यास के शिवानंद शर्मा ने स्कूल के अहाते में मंदिर बनवा लिया था। उसे दोन्हों तरफ से आर्थिक लाभ ही लाभ थे। लेखक इस संदर्भ में कहते है, '' नजदीक रहने से शर्मा को दो तरह की सुविधाएँ थी, पहली मंदिर से आई दान–दक्षिणा वे स्वयं ही लेते थे और दूसरी तरफ मंदिर उनका बैठकखाना भी था। वहीं वे ट्यूशन भी पढ़ाते थे।''[31] इसप्रकार शर्मा को दोन्हों तरफ से आर्थिक लाभ था। ऐसे लाभ उठाकर शर्मा जैसे लोग आर्थिक दृष्टि से सक्षम बनते आ रहे है और निम्न वर्ग आर्थिक दृष्टि से दुर्बल दिखाई देता है। इसे लेखक ने वाणी देने का कार्य किया है।

जयप्रकाश कर्दम ने 'छप्पर' उपन्यास में ग्रामीण क्षेत्र में रहनेवाले आम दलित वर्ग की आर्थिक स्थिति को अंकित किया है। उपन्यास मा सुक्ख्वा चमार जाति में जन्मा दरिद्री अल्प भू–धारक किसान मजदूर है। परन्तु अपने इकलौते बेटे चंदन को शहर भेजकर मजदूर पढ़ा–लिखाकर अच्छा खासा डाक्टरबाबू बनाने का सपना देखता है। जयप्रकाश कर्दम ने सुक्ख्वा की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है, – ''जो लोग दलित और दरिद्र हैं उनके पास रहने–सहने तथा एकाध

पशु जो वह पालते हैं, उन सबके लिए कुल जमा गारा–मिट्टी की दीवारों पर घास–फूंस के छप्पर या झोपडियाँ है। इकछत्ती–दुछत्ती। अधिक हुआ तो किसी के कच्चे कोठे पर बांस की खपच्ची या खपरैल की छत होती है या पशुओं के लिए झोपड़ी अलग। यहीं तक सीमित है उनकी साधन संपन्नता। घर के नाम पर सुक्ख्वा के पास भी सिर छिपाने के लिए सिर्फ ऐसा ही एक छप्पर है।''[32] यह आर्थिक स्थिति स्वाधीनता के बाद भी बरकरार है। वास्तविकता यह है कि बड़ा बनने के लिए अर्थ पूर्णता होना अनिवार्य है। इसलिए अर्थ लोलुप बनकर सुक्ख्वा आशावादी जीवन जीतता है। सुक्ख्वा अपने बेटे–चंदन को उच्च शिक्षा के लिए शहर भेजकर वह बड़ा आदमी बने और धनसंचय करके कार आदि खरीदकर सुक्ख्वा तथा उसकी धर्म पत्नी को कार में बिठाकर घुमाये, वह आशा करता है। वह कहता है ''भगवान करे इतनी बात सची हो जाए। चंदन कहीं कलेक्टर या दरोगा बन जाए। वह कार में घूमेगा, बंगले में रहेगा, लोग दुहरे होकर सलाम करेंगे उसको।'' [33] इस प्रकार एक गरीब माँ–बाप की तरह सुक्ख्वा की अभिलाषा उचित है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में अर्थविषयक दृष्टिकोण नजर आता है। इस उपन्यास में मुम्बई के एक सरकारी कॉलेज का वर्णन आ गया है। वहाँ छात्रों को अर्थ की कमी नहीं हैं। वे कॉलेज पढ़ने नहीं आते है। वे सिर्फ दंगा–मस्ती करने आते है। वहाँ पर क्लास में छात्र कम, बाहर अधिक रहते है। उन्हे कोई रोकनेवाला नहीं है। इस संदर्भ में नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''यहाँ विदयार्थी पढ़ाना ही नहीं चाहते। क्लास खाली पड़ी रहती है। कहीं क्लास चल रही हैं। लड़के आ रहे है , आप उन्हें रोक नहीं सकते। कुछ भी पूछ नहीं सकते।''[34] इस प्रकार आर्थिक प्रबलता के कारण दंगा–मस्ती करते रहते है।

5.6 शिक्षित युवा वर्ग का मानवतावादी दृष्टिकोण :

मानवतावाद को अपनाने से जीवन सफल बनता है। हम आदर्श जीवनमूल्य अपनाने पर और सर्वधर्मसमभाव का पालन करनेपर हम मानवता के नजदीक पहुँचते हैं। अब पूरे विश्व में अशांति फैली हुई है। उसके पर्याय के रूप में मानवतावाद सामने आता है। मानवतावाद को अपनाने पर विश्वशांति निर्माण हो सकती है। अनेक विद्वानों, संतो ने कहा है, की ईश्वर एक है और हम सब उसकी संताने हैं। अत: हमें एक परिवार के भाई–बहनों की तरह शांतिपूर्वक रहना चाहिए। किंतु हम इसे जीवन में चरितार्थ नहीं कर सके। उल्टे जाति, धर्म, रंग, भाषा, राष्ट्रीय स्वार्थ आदि को लेकर

संघर्ष करते रहें। सुसंस्कृत शिक्षित और सभ्य होने का दावा करनेवाले देशों में ज्यादा शांति भंग हो गई। मजे की बात यह है की हम कामना तो शांति की करते हैं पर व्यवहार अशांति बढ़ाने वाला करते हैं। इसका कारण है कि हमने मानवता के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था कर मानवता की संस्कृति का विकास नहीं किया।

मानवता की शिक्षा से मानवता की संस्कृति का विकास किया जा सकता है। इसके लिए आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। परिवारों में जिन्हें हम नागरिक गुणों की प्रथम पाठशाला कहते हैं, यह शिक्षा दी जानी चाहिए। परिवार के सदस्यों को विशेषकर बच्चों को 'वसुधैव कुटुम्बकम' के आदर्श का अध्यात्मिक आधार बताना चाहिए की ईश्वर एक है और हम सब उसकी संताने है । इस संदर्भ में गार्गीशरण मिश्र का कहना है, ''अत: हमें एक परिवार के सदस्यों की तरह शांति और प्रेम के साथ रहना चाहिए। यह तभी संभव है जब हम अधिकाधिक भोग के लिए अधिकाधिक संग्रह की भौतिक विचारधारा और भोग के अधिकाधिक तिरस्कार के लिए अधिकाधिक त्याग की आध्यात्मिक विचारधारा के बीच समन्वय स्थापित करें। क्योंकि ये दोनों ही एकांगी और अतिवादी विचारधाराएं हैं, जो विश्व में अशांति का कारण है।''[35] जो लोग विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी की सहायता से अधिकाधिक संग्रह और अधिकाधिक भोग की नीति अपनाते हैं, वे अंधकार में जाते हैं क्योंकि इससे संघर्ष की प्रतियोगिता प्रारंभ होती है जो समाज में आर्थिक विषमता उत्पन्न कर असंतोष और अशांति का कारण बनती है । इसके विपरित जो लोग संसार को मिथ्या समझकर इससे पलायन का, कंदराओं में अपनी मुक्ति का मार्ग खोजते हैं, उनकी आध्यात्मिक विचारधारा समाज को और घने अंधकार में ले जाती है क्योंकि इससे समाज जीवन की आवश्यक आवश्यकताएं रोटी, कपड़ा, मकान और आरोग्य भी पूरी नहीं कर पाता और मानव दरिद्रता के दुख भोगता हैं। स्वामी विवेकानंद ने इसीलिए कहा था की, ''असली संन्यासी संसार से पलायन नहीं करता वरन् वह संसार में रहकर समाज सेवा में प्रवृत्त होता है।'' तभी मनुष्य का जीवन समृद्ध बनता है। प्रत्येक परिवार में भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच समन्वय की सीख दी जानी चाहिए। त्यागपूर्वक भोग ही हमें विश्वबंधुत्व और विश्वशांति की ओर ले जाकर मानवता की संस्कृति की स्थापना कर सकता है। दूसरों के मुख से निवाला छीनकर यदि हम अपने लिए भोग विलास की सामग्री जुटाते हैं तो इसे कदापि उचित नहीं ठहराया जा सकता। इस संदर्भ में अमेय पाण्डेय कहते हैं, '' अत: हमें विज्ञान और प्रोद्योगिकी का उपयोग धन संग्रह और शस्त्रसंग्रह के लिए नहीं आम आदमी के जीवन की

आवश्यक आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति के लिए करना चाहिए।''[36] इसप्रकार मानवता की पहल की जा सकती है।

आज युवा वर्ग दिशाहीन हो गया है। उसमें नैतिकता और आदर्श जीवनमूल्यों का बीजवपन करना आवश्यक है। इसे युवा वर्ग ने अपनाने पर मानवतावाद की स्थापना समाज में हो सकती है। युवा वर्ग ने मानवतावाद अपनाने पर समाज में शांति, समता और बन्धुता को बढ़ावा मिल सकता है। अहिंसा और शांति के लिए शिक्षा की व्यवस्था हमें अपने विद्यालयों/महाविद्यालयों में करनी होगी। इस शिक्षा का प्रारंभ सर्वधर्म प्रार्थना से होना चाहिए । इसप्रकार छात्र–छात्राओं में सर्वधर्म समभाव एवं सभी धर्मो के प्रति आदर भाव जगाना हमारा प्रथम लक्ष्य होना चाहिए। इसके लिए हमें छात्र–छात्राओं में समानता का संस्कार जागृत करना होगा ताकि वे समझें की धर्म, जाति, रंग, वर्ण, लिंग, आर्थिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव करना उचित नहीं है । इसी तरह छात्र–छात्राओं में सहयोग का संस्कार जागृत करने के लिए हमें उन्हें बताना होगा की सहयोग हमें विकास की ओर ले जाता है, जबकी संघर्ष हमें विनाश की ओर अग्रसर करता है। अत: हमें आपस में संघर्ष नहीं, सहयोग करना चाहिए। इसी क्रम में हमे छात्र–छात्राओं के व्यक्तित्व में सत्य और अहिंसा, निष्पक्षता और न्याय, सहनशीलता और समन्वय, देशप्रेम और देशसेवा, संयम और सादगी, प्रेम और परोपकार आदि जीवन मूल्यों या संस्कारों का समावेश करने के लिए विधिवत शिक्षा देनी चाहिए।

नैतिक या आध्यात्मिक शिक्षा का पूर्ण पाठ्यक्रम बनाकर समय सारिणी में कालखंड निर्धारित करके तथा वर्ष के अंत में उसकी विधिवत लिखित और मौखिक बाह्य परीक्षा लेकर शांति के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। हमें शांति कमेटियों के माध्यम से जनता को मानवता की शिक्षा देने की व्यवस्था करनी चाहिए। मानवता कमेटियों का गठन ग्रामपंचायत स्तर एवं नगर स्तर पर किया जाना चाहिए। इनमें सभी धर्मों, जातियों, वर्णों, वर्गों के स्त्री–पुरुषों का समावेश हो। इनकी सभाएं वर्ष में एक या दो बार आम जनता के बीच हों। सभाओं में आम जनता के बीच सभी धर्मों, जातियों, रंगों, वर्गों और भाषा भाषियों के बीच समन्वय और सौहार्द्र की आवश्यकता और महत्ता बताई जाए। सभाएँ सर्वधर्म प्रार्थना से प्रारंभ हों। आम सभाओं के आयोजन का उत्तरदायित्व अलग–अलग समुदायों को बदल–बदल कर दिया जाये। इसके विभिन्न समुदायों के लोग अपने धर्म, जाति, रंग, वर्ग आदि के संकीर्ण घेरों से बाहर निकलेंगे और उदार दृष्टिकोण के साथ परस्पर सहयोग, सौहार्द्र और समन्वय स्थापित करेंगे। तब मानवतावाद की स्थापना होने में देर नहीं लग सकती है। मानव होकर भी यदि

हम मानव की मद्द नहीं करेंगे तो हमारा मानवजनम व्यर्थ है। मानव अपनी संपूर्ण शक्ति का उपयोग औरों के लिए अर्थात मानवता की रक्षा करने के लिए करें यही तो इन्सानियत हैं। यही मानवतावाद है। क्योंकि आज का मानवतावाद ईश्वर, देवता, परलोक आदि के स्थान पर मानव की श्रेष्ठता तथा अद्वितीयता का समर्थन करता है। औरों की प्रति संवेदना दिखाना सहानुभूति रखकर सद्भावना बढ़ाना, पारस्पारिक सहयोग को बढ़ावा देना यह मानवता के तीन चरण हो सकते है। जिससे मानवतावादी प्रगति करने लगा। मानव दूसरे मानव के पास संवेदना, सहानुभूति और सहयोग के कारण ही जाता है। इसलिए संक्षेप में मानवतावाद का अर्थ परदुखकातरता समपीड़ित प्राणी की पीड़ा को कम करने का संकल्प है।

उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में मानवतावादी दृष्टिकोण चंदन में दिखाई देता है। चंदन रजनी से कहता है, ''हिंसा का जवाब हिंसा नही हैं, हिंसा का जवाब अहिंसा से दिया जाना चाहिए। हमारा संघर्ष न्याय और समानता के लिए है। अतीत मेहमारे जाय कैसा झलूक किया गया है, हम उस पर नहीं जाना चाहते, क्योंकि इससे अच्छे परिणाम निकालने की आशा नहीं है। हम विरोध नहीं, सामंजस्य चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सभी लोग अपने विरोध और मतभेदों को भूलकर तथा सारे द्वेष और मालिन्य को मिटाकर परस्पर त्याग और सद्भाव के साथ–साथ चले, एक–दूसरे के दु:ख–दर्द में भागीदार बने एक दूसरे के हित के साधक बने तथा एक–दूसरे को सम्मान दे। अपने दु:खद अतीत को भुलाकर अपने वर्तमान और भविष्य के जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं। दूसरे लोगों ने हमारे साथ जैसा व्यवहार दिया है, यदि हम भी उनके साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे तो हममें और उनमें अंतर ही क्या रह जायेगा। इसलिए कोशिश होनी चाहिए कि हम स्वयं को नियमित रखें और क्रोध आने घृणा की जगह विनम्रता और प्यार से काम हों।''[37]

तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में मानवतावादी दृष्टिकोण नजर आता है । प्रस्तुत उपन्यास में आसना सर में मानवतावादी विचार दिखाई देते है । पीलादास उर्फ गिरीशकुमार के जीवन में आसना सर एक आदर्श के रूप में हमारे सामने आते है। पीलादास एक होनहार छात्र है। आसना सर को लगाता है कि, पीलादास नाम से जाति की पहचान होती है। इससे माँ–बाप द्वारा लिखा पीलादास नाम बदलकर आसना सर उसका नाम गिरीशकुमार रखते है। इसप्रकार उनमें मानवतावादी विचार नजर आते है। इस संदर्भ में डॉ. क्षितीज धुमाळ का कहना है , '' आसना सर की यह दृष्टि एवं विचारधारा देखकर मुझे डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के गुरुवर्य की याद आती है। जिन्होंने बाबा

साहब का नाम परिवर्तित कर दिया था। आसना सर ने पीलादास चमार का नाम परिवर्तित करके उसके नाम से स्पष्ट होनेवाली जातीयता की तीव्रता कम करने का प्रयत्न किया था। लगता है की आसना सर समाज में स्थित जातीयता की खाई को मिटाने का काम मानवतावादी दृष्टि से करते है।''[38] इससे स्पष्ट होता है की आसना सर में मानवतावादी विचार है। इसका प्रभाव हमें गिरीशकुमार पर दिखाई देता है क्योंकि गिरीशकुमार पर भी मानवतावादी विचार है।

गिरीराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास में मानवतावादी विचार नजर आते हैं। इस उपन्यास के बावनदास, अनुकूल, रामउजागर, निलम्मा आदि में मानवतावादी विचार नजर आते है। अनुकूल एक संकल्पशील छात्र है। वह आत्मविश्वास के साथ पढ़ाई करता है और छात्रों को सहकार्य करता है। आई.आई. टी के तृतीय वर्ष का छात्र रामउजागर सबको सहाय्यता करता है। छात्रों पर अन्याय होने पर रामउजागर आंदोलन चलाता है। वह संघर्षशील छात्र है। उसमें मानवतावादी विचार कुट-कुटकर भरे हुए है। साथही निलम्मा में भी मानवतावादी विचार दिखाई देते है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में मानवतावादी विचार दिखाई देते हैं। इस उपन्यास का नायक सुनीत अनेक संकटों के बावजूद संघर्ष करके शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक बनता है। वह दीन-दलित बच्चों को पढ़ाना चाहता है। जिसप्रकार पक्षी आकाश में उड़ते है, पर अपनी जगह नहीं भूलते हैं। उनके भीतर पहचान की समझ होती है पर आदमी विकास के अनगिनत चरणों से गुजर जाता है, तब वह अपनी जमीन को भूल जाता है। लेकिन सुनीत में मानवतावादी विचार कुट-कुटकर भरे हुए थे। वह समाज की प्रगति करना चाहता है। उसके इस कार्य में उसकी सहेली उसे पूरा साथ देती है। वह कहता है, ''सुमित्रा, अभी हमें बहुत बड़ी जिम्मेदारी पूरी करनी हैं। क्या यह होगा की हम उसी जिम्मेदारी को मित्र बनकर निभाएँ।''[39] इसप्रकार उसमें मानवतावादी विचार नजर आते हैं। कुल मिलाकर मानवतावादी विचारधारा एक ऐसी विचारधारा है जिसमें समस्त मानवमात्र के कल्याण की कामना ही निहित है। यह विचारधारा मानव कल्याण के साथ-साथ उसके संपर्क में आनेवाले प्राणियों के कल्याण को भी प्रेरणा देती है।

5.7 शिक्षित युवा वर्ग का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण :

किसी भी देश का विकास युवा के प्रगति पर निर्भर होता है। जब युवा वर्ग शिक्षित बनकर राष्ट्र के प्रति योगदान देगा तब राष्ट्र का सामाजिक और आर्थिक विकास होगा। युवा वर्ग का सर्वांगीण

विकास होने पर ही युवा वर्ग धर्मनिरपेक्ष, जनतंत्र को अपना देगा और राष्ट्र की प्रगति हो सकती है। आजादी के उपरांत शिक्षा प्रणाली में निर्मित समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा पर बल दिया गया। अधिकतर शिक्षाशास्त्रियों का दावा है की शिक्षा के माध्यम से ही राष्ट्रीय विकास हो सकता है। जब युवाओं को अच्छी शिक्षा दी जाए तो राष्ट्रीय विकास की गति बढ़ सकती है। साथही देश और समाज के आर्थिक एवं सामाजिक पुननिर्माण हेतु युवाओं के शिक्षा से राष्ट्रीय विकास हो सकता है। आज सरकार इस पर अधिकतर बल दे रही है। ऐसी स्थिति में महत्त्वपूर्ण बात यह है की आज शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की बात आवश्यक है। शिक्षा के हर बात को सरकार को ठोस भूमिका निभानी है। इस संदर्भ में गार्गीशरण मिश्र का कहना है, ''शिक्षा के विभिन्न पक्षों, शिक्षा के स्वरूप और उद्देश्यों का निर्धारण, पाठ्यक्रम का निर्माण पाठ्यपुस्तकों का निर्धारण एवं निर्माण शिक्षा का प्रशासन और संगठन शिक्षा का माध्यम, परीक्षा व्यवस्था, शिक्षा हेतु मानव संसाधन एवं भौतिक संसाधनों की व्यवस्था आदि का उत्तरदायित्व सरकार संभाले।''[40] लेकिन वर्तमान शिक्षा प्रणाली को ध्यान दे तो शिक्षा से राष्ट्रीय विकास की अवधारणा संकुचित नजर आती है । इसका कारण है की शिक्षा के राष्ट्रीयकरण में सरकार अपनी राजनीतिक विचार के प्रसार को महत्त्वपूर्ण स्थान दे रही है। इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रधानता नहीं होती है । राष्ट्रीय विकास के लिए व्यक्तिगत चिंतन पर बल देना आवश्यक है । हमारे देश ने प्रजातांत्रिक प्रणाली को अपनाया है। इसलिए भारत में व्यक्तिगत चिंतन और स्वतंत्रता की प्रधानता दी जाती है ।

भारत में शिक्षा के राष्ट्रीयकरण को संकुचित नहीं किया गया है। यहाँ की सरकार देश के युवाओं को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करती है और उसके माध्यम से राष्ट्रीय विकास पर बल देती है और सर्वांगीण विकास करना चाहती है। इस संदर्भ में गार्गीशरण मिश्र का कहना है, ''शिक्षा पर जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करनेवाली केन्द्रीय, प्रांतीय एवं स्थानीय सरकार का नियंत्रण जो राष्ट्र कल्याण के लिए देश के भावी नागरिकों का सर्वांगीण विकास शिक्षा के माध्यम से करना चाहती है।''[41] वह शिक्षा के माध्यम से युवाओं के व्यक्तिगत विकास पर बल देकर आदर्श नागरिक तैयार करके राष्ट्रीय एकता को प्रधानता दी जा सकती है।

राष्ट्र के विकास के लिए युवाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए। सरकार को इस दृष्टि से कदम उठाने होंगे। जब युवाओं का सर्वांगीण विकास होंगा तो राष्ट्र अपने आप प्रगति की ओर बढ़ता दिखाई देंगा। शिक्षा को भारत में समवर्ती सूची के अंतर्गत रखा गया है । जो केंद्र और राज्य की जिम्मेदारी

है । राष्ट्र के विकास के लिए समवर्ती सूची को आधार बनाकर ग्राम स्तर से लेकर देश स्तर तक निष्ठापूर्वक कार्य होने चाहिए। शिक्षा के माध्यम से देश के युवाओं का बुनियादी स्तर दृढ हो जाएगा तब देश विकास की राह पर चल सकता है । शिक्षा के प्रसार–प्रचार में निजी प्रयासों को यथा संभव प्रेरित और प्रोत्साहित करें, उन्हें हर संभव सहायता और सहयोग दे। स्थानिक आवश्यकता को देखते हुए जहाँ निजी प्रयास पर्याप्त हों वहाँ से शासकीय संस्थाओं को वहाँ स्थानांतरित करें जहाँ उनकी आवश्यकता हो। शायद इसके अंतर्गत शासन को कई शहर की शासकीय संस्थाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानांतरित करना पड़े। इससे शासन का प्रशासनिक और वित्तिय बोझ कम होगा। क्योंकि वह नई संस्थाएँ खोलने से बच जायेगा। पूरे राष्ट्र में राष्ट्रीय शिक्षा के लिए शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता है । इसके माध्यम से जनतांत्रिक समाजवादी समाज निर्माण हो सकता है। परिणामस्वरूप शिक्षा के माध्यम से सभी को समान अधिकार मिल सकते हैं। साथही अनेक समस्याओं का समाधान भी सामने आ सकता है। इससे राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिल सकता है। कुल मिलाकर हम कह सकते है– राष्ट्रीयता एक सामुहिक भाव है, एक साहचर्य की भावना है जो अपनी मातृभूमि से संबंधित होती है। अपनी मातृभूमि के प्रति हमारे मन में सद्भावनाएँ होनी चाहिए न कि अलगता की भावना जिसमें व्यक्ति की निष्ठा सर्वोपरि राष्ट्र के प्रति ही समर्पित होती है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में राष्ट्रीय दृष्टिकोण नजर आता है । नायक सुनीत राष्ट्र के प्रति अपना दायित्व निभाता है । वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक संकटों का सामना करता है । उसके उपरांत वह अध्यापक बन जाता है । उसमें देश के प्रति राष्ट्रीय भावना लबालब दिखाई देती है । वह आम जनता के बच्चों को पढ़ाना चाहता है । वह उनके जो अज्ञान, अशिक्षा और अंधविश्वास को मिटाना चाहता है । इसलिए वह अध्यापक बनकर बस्ती में आता है । वह अन्याय के खिलाफ विद्रोह करता है । छात्रावस्था में ही पंडित के अमानवीयता का विरोध करता है । पंडित नल से लोगों को पानी देता है । तब विद्रोह करते हुए सुनीत कहता है, ''हाँ–हाँ पंडित जी, हम ढ़ेढ़ चमार हैं पर अब देश आजाद है । इतना समझ लो तुम्हे ऐसा करने पर जेल जाना भी पड़ सकता है ।''[42] इसप्रकार सुनीत समानता की पैरवी करके राष्ट्रीय एकता पर बल देता है ।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में भी छात्र का राष्ट्रीय दृष्टिकोण किस प्रकार है उसे उजागर किया है। छात्र कॉलेज में सिर्फ दंगा–मस्ती करने आते हैं। इससे देश की युवा पीढ़ी दिशाहीन होकर राष्ट्र की हानी हो रही है। वे कालेज में पढ़ना नहीं चाहते हैं। क्लासेस खाली दिखाई

देती है। छात्र क्लास के बाहर होते हैं। कहीं–कहीं जगह पर क्लासेस चल रही है। इसमें भी छात्र आते हैं, बाहर चले जाते हैं। उन्हें अध्यापक कुछ पूछ नहीं सकता है। उन्हें रोक नहीं सकता है। रोकने से अध्यापक को देख लेने की धमकी दी जाती है। इसलिए अध्यापक भी जिम्मेदारी नहीं लेते हैं। ऐसे माहौल से देश का नुकसान हो रहा है। छात्र बाहर आंदोलन करते रहते हैं या राजनीतिज्ञों के लिए काम करते हैं। इससे छात्र का और राष्ट्र का नुकसान हो रहा है। इस संदर्भ में नीता पांढरीपांडे का कहना है, '' आज छात्र बड़ी–बड़ी आशाएँ लेकर विश्वविद्यालय में प्रवेश पाते हैं, लेकिन वहाँ की परिस्थिति से निराश राजनीतिज्ञों के चंगुल में फँस जाते हैं तथा पढ़ाई का रास्ता छोड़ आंदोलन का रास्ता अपना लेते हैं।''[43] इसप्रकार छात्र का राष्ट्रीय दृष्टिकोण बदल रहा है।

चंद्रमोहन प्रधान कृत 'एकलव्य' उपन्यास में राष्ट्रीय दृष्टिकोण दिखाई देता है। तक्षुमति नदी के तट पर स्थित निषाद ग्राम पर परकियों द्वारा आक्रमण होता है। इससे निषाद के महाराज सेनापति का सैन्यबल बढ़ाने का आदेश देते हैं। साथही परकिय आक्रमण को रोकने के लिए कांपिल्य के राजा द्रुपद की सहाय्यता लेते है। परकियों के आक्रमण का स्वयं निषाद लोगों को विरोध करने की बात एकलव्य करता है। एकलव्य में राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है। वह सैन्यबल को गदा, असि, शूल आदि के साथ–साथ धनुष्यबाण के प्रशिक्षण की बात करता है। इसप्रकार हमें एकलव्य में राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है।

सत्यप्रकाश के 'जसतस भई सवेर' उपन्यास में राष्ट्रीय दृष्टिकोण देखने को मिलाते है। जब शिवदास दिल्ली में कार्यरत है। तब मंडल कमीशन की संस्तुतियाँ लागू की गई थी। तब दिल्ली शहर में हाहाकार मचा हुआ है। आरक्षण विरोध आंदोलन अपने चरम पर है। शिवदास दिल्ली विश्वविद्यालय जा रहा था। वहाँ एक संसद महोदय आरक्षण समर्थन में कुछ लोगो को समझा रहे थे। कुछ पत्रकार प्रश्न पर प्रश्न कर आरक्षण के औचित्य पर उँगली उठा रहा हैं– ''सुनिए आरक्षण के विरूद्ध हम भी नहीं हैं। हम यह नही कह रहे है कि मंडल कमीशन की संस्तुतियाँ असंगत है! अथवा वे न्यायोचित नहीं हैं, अथावा उनका कोई आधार नही है। हमें तो सर्वाधिक दु:ख इस बात का है कि इसके कारण इस देश के होनहार एवम युवक आत्मदाह कर रहें हैं। अत: हम तो यह चाहते थे कि इन संस्तुतियों के क्रियान्वयन से पूर्व राष्ट्रीय बहस होनी चाहिए थी।''[44] यह सब सुनने के बाद शिवदास इसका प्रतिवाद करते हुए राष्ट्रीय हित सदैव सर्वोपरि मानता है। इस प्रकार शिवदास के राष्ट्रीय दृष्टिकोण देखने को मिलता है।

5.8 शिक्षित युवा वर्ग का अध्यापक के प्रति दृष्टिकोण :

अध्यापक वर्ग युवाओं को दिशा दे सकता है। इसलिए युवा वर्ग अध्यापक के प्रति अपेक्षा से देख रहे है। अध्यापक युवाओं पर संस्कार, आत्मविश्वास, प्रेरणा, शिष्टाचार देकर शैक्षणिक और मानसिक सहारा दे सकता है। वर्तमान काल में युवा वर्ग का शिक्षा और अध्यापक के प्रति दृष्टिकोण बदल रहा है। यदि कोई शिक्षक मनोवैज्ञानिक पद्धतियों से बच्चों के कक्षा में व्यवहार, सहपाठियों के साथ व्यवहार, परिवार में व्यवहार और समुदाय में व्यवहार आदि की जानकारी प्राप्त कर लेता है। उनकी व्यक्तिगत भिन्नता, संवेदना, रूचि, योग्यता, बौद्धिक स्तर, वंशानुक्रम, रूख आदि जान लेता है तथा बच्चों के समझने में हो रही कठिनाइयों को सही समय पर पहचान लेता है तो वह उपयुक्त शिक्षण सहायता सामग्री एवं शिक्षण विधिं का प्रयोग करता है। इसके अलावा वह उपयुक्त पुरस्कार एवं दंड के स्वरूप का निर्धारण करता है। जिससे आंतकित हुए बिना बच्चों में बाह्य रूप में ही नहीं बल्कि आत्म–अनुशासन की भावना भी पैदा हो।

अपनी मनोवैज्ञानिक परख से वह शिक्षक जान लेता है की कौनसा विद्यार्थी किस पाठ को किस हद तक समझ रहा है अथवा वह बात उसके सिर के ऊपर से निकल जा रही है, अथवा वह विद्यार्थी विधियों, पद्धतियों और सिद्धातों को अमल में लाने से वह अपने विद्यालयों में छिपी प्रतिभा का विकास करता है। उनकी हीन ग्रंथियों को दूर करता है, उनमें आत्मविश्वास पैदा करता है और उनसे संवाद कायम करता है। इस संदर्भ में मानसी गुप्ता का कहना है , '' शिक्षक–केंद्रित तथा शिक्षणान्मुखी की बजाय शिक्षाशास्त्रियों ने यह सिद्ध किया है की असली शिक्षा बालकेंद्रित तथा सीखने की ओर उन्मुख होनी चाहिए और सिखने या अधिगम को विकास की एक प्रक्रिया बताया गया जो अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा किसी भी व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाती है।''[45] सीखने के लिए महत्त्वपूर्ण होता है की वह सीखनेवाले के व्यवहार में परिवर्तन लाती है। क्योंकि नए अनुभवों का संग्रह सिखने से प्राप्त होता है। यह आजीवन चलनेवाली प्रक्रिया है उसे खास आयु, भाषा, स्थान, वंश, जाति, धर्म, वर्ग आदि के आधार पर सीमित नहीं किया जा सकता है। वह उद्देश्यपूर्ण होता है। अर्थात यह कभी भी खाली नहीं होता है। साथही निरंतर परिवर्तनशील होता है । वह स्थिर नहीं, बल्की गतिशील होता है । वह आस–पास के माहौल और गतिविधियों की उपज होता है। जाहिर है की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक माहौल में ही कोई व्यक्ती या समूह सिखाता है।

वह दक्ष और बुद्धिमता की प्रक्रिया है अर्थात तर्क एक तथ्य के आधार पर सही और गलत का भेद सिखने में किया जाता है।

सीखना एक तरह की खोज होती है। विभिन्न क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, उद्दिपनों और अनुक्रियाओं के आधार पर बच्चे किसी–ना–किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। वह एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है अर्थात, उसे एक निश्चित स्थान से बाँधा नहीं जा सकता है। शिक्षा के मुख्यत: चार महत्त्वपूर्ण अंग हैं, छात्र, अध्यापक, वातावरण एंव शिक्षण सामग्री। सीखने के लिए शिक्षार्थी में सबसे पहले इच्छा होनी चाहिए उससे शारिरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए। सीखने के लिए बालक को अभ्यास करना जरूरी है। कहा गया है की बिना अभ्यास के विद्या नहीं मिलती। बहुत सारी विधियाँ होती हैं लेकिन व्यक्तिगत भिन्नता के कारण हर छात्र के लिए एक या दो पद्धतियाँ ज्यादा उपयुक्त होती हैं। कोई बच्चा स्वत: पुस्तक पढ़कर आसानी से सीख लेता है, दूसरा अनुकरण करके आसानी से सीखता है, तीसरा प्रयोग करके बेहतर ढंग से सीखता है। चौथा खेल–खेल में शिक्षा प्राप्त करता है। पाँचवाँ गहन योजना बनाकर धीरे–धीरे विभिन्न चरणों में सीखता है। छठवाँ किसी समूह में ज्यादा सीखता है। सातवाँ रट–रट कर ज्यादा सीखता है। इसलिए शिक्षक को यह प्रवृत्ति पहचाननी होगी। दूसरे अध्यापकों की भी अपनी अलग शैली, युक्ति, अनुभव, अंत:क्रिया, बौद्धिक स्तर, पुरस्कार एवं दंड़ के प्रति रूख आदि होता है, जिसका प्रभाव सीखने पर पड़ना स्वाभाविक है।

पढ़ना विज्ञान और कला दोनों है। वह इस अर्थ में विज्ञान है की शिक्षक को पढ़ाए जानेवाले विषय का सुव्यवस्थित, सुसंगठित एवं क्रमबद्ध ज्ञान होना चाहिए। किंतु दूसरी ओर पढ़ना इस अर्थ में कला है किं किसी विषय को पढ़ने की वही विधि उत्तम होती है जिसे छात्र सबसे ज्यादा पसंद करे अर्थात् जो विद्यार्थियों की अपेक्षाओं के अनुरूप हो। वातावरण का भी सीखने पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि विदयालय भवन टूटा–फूटा हो, छत चूती हो, पढ़ने के लिए पर्याप्त उपस्कर न हो, रोशनी की व्यवस्था न हो, आसपास गंदगी फैली हो, परिसर या उसके बाहर शोरगुल हो रहा हो, तो निश्चित रूप से सीखने पर कुप्रभाव पड़ेगा क्योंकी ऐसी स्थिति में बच्चे ध्यान से नहीं पढ़ सकते है। इसके अलावा यदि परिवार और विदयालय की स्थितियों और अपेक्षाओं में तालमेल न हो, विदयालय प्रशासन का रवैया ढुलमुल हो, अनुशासन नाम की चीज न हो, अध्यापक समय पर न आते हों, विभिन्न विषयों के लिए पढ़ाई का समय स्थान निश्चित न हो तो पढ़ने और पढ़ाने में व्यवधान होगा

स्वाभाविक है। शिक्षण सहायता सामग्री की भी बहुत भूमिका सीखने में होती है। यदि पाठ्यक्रम जटिल, बोझिल, मानसिक स्तर से ऊपर, असामयिक, संदर्भ से कटा हुआ हो, जीवन और जीविका से बिल्कुल तटस्थ हो, बस्ते का बोझ भारी हो तो सीखने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इसके अलावा यदि प्रशिक्षण–सहायता सामग्रियों यथा वैज्ञानिक उपकरण, श्यामपट्ट, खड़िया, नक्शा, ग्लोब, आदि प्रयोगशाला, पुस्तकालय, वाचनालय आदि की सुविधा न हो तो सीखने पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अध्यापक की योजकता, कल्पकता उचित प्रयोग करने पर युवाओं का अध्यापक के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक दिखाई देगा।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में युवा वर्ग का अध्यापक के प्रति दृष्टिकोण नजर आता है । इस उपन्यास से स्पष्ट होता है की पिता के आर्थिक सबलता और राजनीतिक सहयोग से छात्र अध्यापकों का अपमान करते हैं। छात्र कॉलेज में कोहराम मचा देते है । वे सिर्फ अध्यापकों को तंग करते रहते हैं। छात्र अध्यापन कम और अनुशासनहीन अधिक नजर आते हैं। लेखक ने इसका वर्णन करते हुए कहा है – ''आज फिर फर्स्ट ईयर 'सी' का पेरियड है । कल भी था।..... लम्बी फैली हुई क्लास में पढ़ाना शुरू करता हूँ....। खामोशी के बीच एक कोने से बिल्ली की आवाज उठती है । इधर देखता हूँ तो दूसरी ओर से घड़ी का अलार्म बज उठता है । ..... यू स्टूपिड। करॉंचीवाला। गेट अप। गेट आऊट ऑफ द क्लास...।''[46]

लड़कियों की हँसी। खनकती हुई।..... लेकिन मुझे लगता है की इनको भी पंख लग रहे हैं। मन करता है । इनके मुँह नोच ड़ालूं। लेकिन नहीं...। उनके मुख कितने सुंदर हैं..... ये हँस रही हैं और मैं सह रहा हूँ। मुझे नौकरी करनी है । ढ़ाई सौ रूपया महीना। ढ़ाई सौ रूपये के लिए मैं अपना तमाशा बनने दे रहा हूँ। फिर पढ़ाना शुरू कर देता हूँ की एक लड़का जोर की आवाज करता है उस ओर देखना ही चाहता हूँ की दूसरी ओर से चॉक का टुकड़ा मेरी ओर आता है । फिर सीटी की आवाज।.... तभी आगे की बेंच से किसी लड़की की खिलखिलाहट सुनाई पड़ती है । मैं उसे देख लेता हूँ और बाज की तरह उस बेंच पर झपट पड़ता हूँ।

'गेट अप' गिव मी योर आई. कार्ड!

क्लास में सन्नाटा है । ''माइण्ट इट दिस इज नॉट योर डैडिस ड्राइंग रूम। दिस इज माई क्लास।' पूरी क्लास को काठ मार गया है ।''[47] इसप्रकार छात्र का अध्यापक के प्रति दृष्टिकोण नजर जाता है ।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में छात्र का अध्यापक विषयक दृष्टिकोण नजर आता है। इस उपन्यास का सुनीत अध्यापकों को आदर्श मानता है । लेकिन अध्यापक उसके प्रति जातीयता बरतते हैं। सुनीत के स्कूल में अध्यापक पाण्डेय उपहास करता है । इस संदर्भ में रजनी तिलक का कहना है, ''भारतीय शिक्षा व्यवस्था के जनक शिक्षकों के मनपटल से हे जाति का संस्कार नहीं निकल सका तो वह छात्रों को कैसे समानता की शिक्षा दे सकेंगे?''[48] इस उपन्यास का नायक छात्र सुनीत अध्यापकों का विरोध नहीं करता है । वह उसके अपमान का जवाब अपने तरीके से देता है । वह अधिक से अधिक पढ़ाई करता है । वह अनेक संकटों का सामना करके शिक्षा प्राप्त करता है । वह डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा से प्रभावित है । अध्यापकों के अनेक विरोधों के बावजूद सुनीत अध्यापक बनता है ।

मदन दीक्षित के 'मोरी की ईंट' उपन्यास में छात्र का अध्यापक विषयक दृष्टिकोण नजर आता है । इस उपन्यास में सोहन अपने अध्यापक जैकब और फ्लोरा के प्रति आस्था रखता हुआ दिखाई देता है । वह अपने अध्यापकों के हर बात को मानता है । उनके आदेश का पालन करता है । वह कठोर अध्ययन करता है । जैकब और फ्लोरा उसे अध्ययन करने के लिए प्रेरित करते है । उस पर अच्छे संस्कार करते है । उनकी प्रेरणा से अंत में सोहन डॉक्टर बनता है ।''[49] इसप्रकार सोहन अध्यापक के प्रति आस्था रखने से उसका जीवन आनंदमय बन जाता है ।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में छात्र चंदन का स्कूल की परीक्षा परिणाम के साथ हेराफेरी की जाती थी। इसलिए उसका स्थान दूसरा आया था। पहले स्थान पर किसी ब्राम्हण के लड़के को रखकर टाप करा दिया गया। इस साजिश की जानकारी सुनीत को नही रहती है। एक दिन जब सुमित्रा उसे इस साजिश के विषय में बताती है तो उसे बेहद अफसोस होता है– ''सुमित्रा के मुँह से यह सब बात सुनकर सुनीत को उबकाई सी आने लगी थी। जब अध्यापक ही ऐसी बात सोचेंगे तो फिर.... उसने कई बार किताबों में पढा था। अध्यापक देश के निर्माता होते है। क्या ऐसे ही अध्यापक देश के निर्माता होते हैं? कैसा निर्माण करते हैं वे देश का। उसके मन के भीतर बार–बार एक सवाल उठ रहे थे।''[50] इस प्रकार चंदन और सुमित्रा के मन में छात्र होने के नाते अध्यापक के प्रति दृष्टिकोण आदर्श या लेकिन परीक्षा में हेराफेरी करने के बाद अध्यापक के प्रति विश्वासघात की भावना निर्माण होती है।

निष्कर्ष :

वर्तमान काल में युवाओं का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण बदल रहा है । आज युवा वर्ग उच्च शिक्षा प्राप्त करके परंपरागत जीवन को तिलांजलि देकर विकास कर रहे है । तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास का नायक गिरीशकुमार शिक्षा प्राप्त करके अधिकारी बनता है । गिरीराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास में ग्रामीण और गरीब छात्र कानपुर के आई.आई.टी. में पढ़ने जाते हैं। मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का नायक सुनीत अनेक संकटों के बावजूद अध्यापक बनता है । इसप्रकार युवाओं को शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण बदल रहा है । संस्कार शिक्षा का अभिन्न अंग है । आज शिक्षा से सांस्कृतिक दृष्टिकोण छात्रों में प्रबल बनता जा रहा है । तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में गिरीशकुमार परंपरागत वर्गप्रधान एवं वर्णप्रधान संस्कृति को नकारता है । वह उच्च शिक्षित बनता है । अपने गुरू आसना सर और परिवार के प्रति श्रद्धा रखकर अधिकारी बनकर समाज का कल्याण करना चाहता है । सत्यप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में मनुवादी व्यवस्था का नायक चंदन नकारता है । वह अनेक संकटों के बावजूद अपने पिता द्वारा दिए गए संस्कारों का पालन करके उच्च शिक्षा प्राप्त करके समाजकार्य में जुट जाता है । चंद्रमोहन प्रधान द्वारा लिखित 'एकलव्य' उपन्यास में परंपरागत संस्कृति के कारण आचार्य द्रोण एकलव्य को शिष्य बनाने से नकारता है । इससे एकलव्य निराश होते हुए स्वयंअध्ययन करके धनुर्विदया प्राप्त करता है । यह एक नई संस्कृति की ओर जानेवाला संकेत है ।

परंपरागत सामाजिक व्यवस्था वर्णव्यवस्था पर निर्भर थी। इससे निम्नवर्ग पर अन्याय होता था। मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में शिक्षा प्रणाली में जातीयता दिखाई देती है । अध्यापक पाण्डेय इसका सार्थक उदाहरण है । लेकिन सुनीत इस व्यवस्था का पर्दाफाश करना चाहता है । उसकी सहेली सुमित्रा उसे इस कार्य में सहायता करती है । इसप्रकार सामाजिक दृष्टिकोण में शिक्षा के कारण बदलाव आ रहा है । इसी प्रकार जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास का नायक चंदन और गिरीराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास का अनुकूल शिक्षा के माध्यम से सामाजिक बदलाव लाने का प्रयास करते है ।

भारत में परंपरागत धार्मिक कट्टरता को अपनाया गया है । लेकिन शिक्षा के विकास और संविधान के निर्माण से धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को अपनाया जा रहा है । सत्यप्रकाश के 'जस तस भई

सवेर' उपन्यास में सरवन, रूपलाल, शिवदास आदि के माध्यम से धर्मनिरपेक्ष विचारों को अपनाया गया है । मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण दिखाई देता है । इस उपन्यास का नायक सुनीत जागृत है । वह उच्च शिक्षा प्राप्त करता है । वह धार्मिकता का विरोध करता है और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण की पहल करता है । गिरीराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास के पात्र रामउजागर, अनुकूल, निलम्मा आदि पात्र धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को अपनाते हैं । आज छात्र शिक्षा के माध्यम से आर्थिक विकास कर रहा है । रामधारीसिंह दिवाकर के 'आग पानी आकाश' उपन्यास में बब्बन धोबी के बेटे भागवत और युगेश्वर शिक्षा प्राप्त करके आर्थिक दृष्टी से सबल बनते हैं। मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का नायक सुमित अध्यापक बनकर आर्थिक दृष्टि से सक्षम बनता है । देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास का चंदन अध्यापक बनकर आर्थिक दृष्टि से सबल बनता है ।

आज मानवता के कारण समाज टिका हुआ है । तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास के आसना सर में मानवतावादी विचार दिखाई देते हैं । वे छात्रों को सदैव सहकार्य करते रहते हैं। पीलादास नाम बदलकर वे अपने छात्र का नाम गिरीशकुमार रखते हैं , ताकि उसे जातीयता के दंश न हो। गिरीराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास के रामउजागर, अनुकूल, निलम्मा आदि में मानवतावादी विचार नजर आते हैं । आज के छात्र शिक्षा प्राप्त करके राष्ट्रीय दृष्टिकोण से परिपक्व हैं । 'एकलव्य' उपन्यास का एकलव्य, 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का सुनीत और 'भ्रमभंग' उपन्यास का चंदन इसके सार्थक उदाहरण हैं। आज छात्र के अध्यापक की ओर देखने का दृष्टिकोण सकारात्मक और नकारात्मक नजर आते हैं। 'भ्रमभंग' उपन्यास के छात्र अध्यापक के प्रति नकारात्मक है तो 'मोरी की ईंट' उपन्यास में सकारात्मक। इसप्रकार आज छात्र का शिक्षा प्रणाली की देखने का दृष्टिकोण बदल रहा है ।

संदर्भ संकेत

1. डॉ. मिश्र गार्गीशरण, शिक्षा की समस्याएँ और समाधान, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2003, पृ.क्र. 40
2. वहीं, पृ.क्र. 177
3. चौसाळकर अशोक, महात्मा गांधी और हिंद स्वराज्य, संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 1999, पृ. क्र. 23
4. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 12
5. डॉ. धुमाळ क्षितिज, हिंदी के प्रयोगशील उपन्यास, अन्नपूर्णा प्रकाशन, प्र.सं. 2011, पृ.क्र. 93
6. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 36, 37
7. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 70
8. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 44
9. वहीं, पृ.क्र. 35
10. यादव गीता, भारतीय संस्कृति और शिक्षा, नयन प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2001. पृ.क्र. 83
11. वहीं, पृ.क्र. 129
12. डॉ. धुमाळ क्षितिज, हिंदी के प्रयोगशील उपन्यास, अन्नपूर्णा प्रकाशन, प्र.सं. 2011, पृ.क्र. 95
13. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र.18

14. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 32

15. गुप्ता लक्षता, भारतीय समाज और शिक्षा, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2007, पृ.क्र. 216

16. किशोर गिरिराज, परिशिष्ट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1998, मुखपृष्ठ से उद्धृत

17. दीक्षित मदन, 'मोरी की ईंट', शब्दाकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1996, पृ. क्र. 173

18. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 115

19. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र.64

20. वहीं, पृ.क्र. 68

21. वहीं, पृ.क्र. 88

22. वहीं, पृ.क्र. 41

23. अग्रवाल रमेश, भारतीय शिक्षा व्यवस्था, आधार प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1998, पृ.क्र. 215

24. सत्यप्रकाश, जस तस भई सबेर, सामना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1998, पृ.क्र. 128

25. विधाते विकास, मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में विद्रोह, ए. बी.एस. पल्बिकेशन, वाराणसी, प्र. सं. 2013, पृ. क्र. 143

26. किशोर गिरिराज, परिशिष्ट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1998, पृ.क्र. 153

27. दीक्षित मदन, 'मोरी की ईंट', शब्दाकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1996, पृ. क्र. 40

28. वहीं, पृ.क्र. 83

29. डॉ. राधाकृष्णन, भारतीय शिक्षा आयोग, भारतीय शिक्षा मंत्रालय, प्र. सं. 1995, पृ.क्र. 746

30. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 30

31. वही, पृ.क्र. 108

32. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र. 9

33. वहीं, पृ.क्र. 13

34. डॉ. पांढारीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 95

35. डॉ. मिश्र गार्गीशरण, शिक्षा की समस्याएँ और समाधान, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2003, पृ.क्र. 42

36. पाण्डेय अमेय, मानवीय संवेदनाएँ और शिक्षा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2001, पृ.क्र. 37

37. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ.क्र.

38. डॉ. धुमाळ क्षितिज, हिंदी के प्रयोगशील उपन्यास, अन्नपूर्णा प्रकाशन, प्र.सं. 2011, पृ.क्र. 94

39. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 139

40. डॉ. मिश्र गार्गीशरण, शिक्षा की समस्याएँ और समाधान, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2003, पृ.क्र. 175

41. वही, पृ.क्र. 176

42. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 54

43. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 96

44. सत्यप्रकाश, जस तस भई सबेर, सामना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1998, पृ.क्र. 24

45. गुप्ता मानसी, भारतीय शिक्षा और युवकों की समस्याएँ, अनुराग प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2001, पृ.क्र. 117

46. ठाकुर देवेश, भ्रमभंग, संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 1992, पृ.क्र. 52

47. वही, पृ.क्र. 53

48. संपा. चतुर्वेदी कुसुम, नया मानदंड, अंक–4, अप्रैल–जून 2003, पृ.क्र. 49

49. दीक्षित मदन, 'मोरी की ईंट', शब्दाकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1996, पृ. क्र.

50. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 113

षष्ठ अध्याय

हिंदी उपन्यास में शिक्षा प्रणाली संबंधी समस्याएँ

षष्ठ अध्याय

हिंदी उपन्यास में शिक्षा प्रणाली संबंधी समस्याएँ

प्रस्तावना :

आज शिक्षा प्रणाली में अनेक समस्याएँ सामने आ रही है। आज शिक्षा प्रणाली में मूल्यहीनता की समस्या, भ्रष्टाचार, जातीयता, अवसरवादिता आदि समस्याएँ सामने आ रही है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति और समूह अपने व्यक्तित्व, परिवार, राष्ट्र एवं विश्व, समाज के समग्र हितों का विकास करते है। किंतु दुर्भाग्यवश शिक्षा को सीखने तथा अध्यापन एवं परीक्षण तक ही सीमित कर दिया गया है। इस संदर्भ में सुभाष शर्मा का कहना है, ''विद्यार्थी को विद्यालय में इसलिए भर्ती किया जाता है जिससे वह अध्यापन को सीखना मानने, ग्रेड प्रोन्नति को शिक्षा मानने, डिप्लोमा को दक्षता मानने एवं भाषा प्रवाह को कुछ नया कहने की क्षमता मानने का भ्रम पाले। मूल्य के स्थान पर सेवा को स्वीकार करने हेतु उसकी कल्पनाशक्ति को 'विद्यालयीन' बनाया जाता है। चिकित्सा को स्वास्थ्य की देखभाल, सामाजिक कार्य को सामुदायिक जीवन की उन्नती, पुलिस संरक्षण को सुरक्षा, फौज को राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अंधदौड़ को उत्पादक कार्य गलती से मान लिया जाता है।''[1] इससे स्पष्ट हैं कि आज की शिक्षा प्रणाली सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक होने के बजाय तकनीकी बन गई है। जो विद्यार्थी औपचारिक रूप से शैक्षिक संस्थाओं में पढ़ता है, उसके संस्था प्रमुख, शिक्षक एवं अभिभावक को विशेष ध्यान देने के लिए उसे प्रेरित करते हैं। छात्र किसी भी विषय के बारे में परीक्षा में वह उच्चतम श्रेणी प्राप्त करे।

आज छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए प्रेरित करना चाहिए। उनमें नैतिक मूल्यों का बीजवपन करना चाहिए। इन दिनों किसी मध्यमवर्गीय परिवार में पहुँचने पर मेजबान (होस्ट) उसका स्वागत वह अपने बेटे या बेटी के द्वारा कोई अंग्रेजी कविता का सस्वर पाठ सुनाने के लिए अनुरोध करता है और आगंतुक जितनी ज्यादा प्रशंसा करता है, उसका उतना ही अच्छा स्वागत होता है। दुर्भाग्य से इन प्रवृत्तियों के कारण शिक्षा जगत् का बहुत ही अहित हुआ है क्योंकि इसी पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थी जब आगे उच्च शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं, तो उनके अंदर समुचित सृजनात्मकता, कल्पना–शक्ति एवं आलोचनात्मक दृष्टि विकसित नहीं हो पाती। लेकिन यह भी सच है कि जहाँ एक और शिक्षा समाज के वर्तमान मूल्यों को छात्रों के व्यक्तित्व में कूट–कूट कर भरती है, वहीं दूसरी ओर

सामाजिक परिवेश के अंतर्द्वंद्वों की वजह से शिक्षा कई मूल्यों पर सवाल भी खड़ा करती है जिससे परिवर्तन होता है। उच्च शिक्षा जगत् के बहुत सारे अध्यापक एवं शोधछात्राओं से बाते करनेपर अनेक कमजोरियाँ सामने आ रही हैं। आज पश्चिमी देशों की नकल बहुत तेजी से बढ़ी है। आधुनिक बनने के प्रयास में कंधे उचकाकर बोलने का अभ्यास करते हैं। जिस अमेरिका में अंधाधुंध माहौल है, उसे भारत जैसे देश में उतारने को वे प्रयास करते रहते हैं।

आज अनुसंधान के क्षेत्र में निम्न स्तर का शोध हो रहा है। जिससे समाज और देश का नुकसान हो रहा है। इसलिए उसमें स्तरीयता आना आवश्यक है जिससे देश महासत्ता बन सकता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर की शोध पत्रिकाओं में भारतीय शोधकर्ताओं के बहुत कम मात्रों में शोध पत्र प्रकाशित हुए हैं, जो हमारी उच्च शिक्षा की खराब गुणवत्ता का सूचक है। उसमें सुधार होने की जरूरत है। वर्तमान काल में अनेक प्रकार की शैक्षणिक समस्याएँ सामने आ गई है । शिक्षा का स्वरूप सामान्यीकृत ज्ञान–केंद्रित हो अथवा व्यवसाय–केंद्रित हुआ है। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए अथवा उच्च शिक्षा को। शिक्षा का उत्तरदायित्व सरकारी क्षेत्र पर हो अथवा निजी क्षेत्र पर। देशी ज्ञान को प्राथमिकता मिले या विदेशी ज्ञान को। शिक्षा में नई विचारधारा की क्या भूमिका हो? शिक्षण का माध्यम (भाषा) क्या हो? भाषिक कौशल, ज्ञानरचनावाद, NEF 2005 में भाषा के संदर्भ में दिए गए निर्देश, आर. टी. ई. 2009 के निर्देश, केंद्रीय आधारभूत तत्व, निरंतर एवं सर्वांगीण मूल्यांकन का क्या स्थान होगा, इस पर भी प्रकाश ड़ालने की आवश्यकता है।

आज शिक्षा प्रणाली में बदलाव की आवश्यकता है। परिणामस्वरूप देश विकास की राह पर चल सकता है। वर्तमानकाल में भारत की एक प्रमुख समस्या जनसंख्या में तीव्र वृद्धि है। वर्ष 2010 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी एक सौ पचीस करोड़ से अधिक हो चुकी है जिसका प्रभाव शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, आवास, भोजन, कपड़ा आदि पर बुरी तरह से पड़ रहा है। जनसंख्या वृद्धि से मानव संसाधन का सृजन स्वभावत: होता है किंतु यदि एक सीमा से अधिक जनसंख्या किसी देश में हो तो वह अंतत: भीड़ में तब्दील हो जाती है जिसे हाँकने का कार्य राजनीतिक दल मनचाहे ढंग से करते हैं।

आज जनसंख्या के कारण देश का विकास नहीं हो रहा है परंतु बेरोजगारों की आज फौज तैयार हो रही है। वोट की राजनीति लोकतंत्र में जनसंख्या वृद्धि का विरोध नहीं करती। इसके

अलावा कई व्यक्ति और समुदाय भी इस पर रोक लगाने के हिमायती नहीं हैं, जो अंतत: राष्ट्रहित के विरुद्ध है। किसी भी उत्पादन–प्रणाली में मानव संसाधन एक प्रमुख कारक होता है परंतु सवाल उठता है कि नवयुवकों की एक बहुत बड़ी आबादी को सामान्य तरीके से विभिन्न विषयों में सामान्यीकृत ज्ञान–केंद्रित यानी सैद्धांतिक शिक्षा दी जाए अथवा रोजगार उपलब्ध कराने के लिए व्यावसायिक और कृतियुक्त कौशलाधिष्ठित शिक्षा दी जाए। यह सर्वविदित है कि सिर्फ सामान्यीकृत ज्ञान हासिल करने से कोई भी युवक अपने परिवार का भरणपोषण नहीं कर सकेगा। सरकारी क्षेत्र में आकर काम करने के सघन अभियान के कारण लोकसेवाओं में काफी कटौती की गई है। ऐसी स्थिति में रोजगारोन्मुखी शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दिया जाना अभीष्ट है। भारतीय संविधान की धारा 21A, जिसमें जीने का अधिकार वर्णित है, शिक्षा का अधिकार जीने के अधिकार से सीधे प्रवाहित होता है क्योंकि किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा शिक्षा के अधिकार के बिना सुनिश्चित नहीं की जा सकती।

विद्यार्थियों को हिंदी विश्व में ले जाते समय उनकी शारीरिक, मानसिक, भावनिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं को पुरा करने के लिए अध्यापन प्रक्रिया में विद्यार्थियों के भाषिक कौशलों के आकलन, उपयोजन, सर्जनशील प्रयोग आदि क्षमताओं के विकास को महत्व देना होगा। ज्ञानरचनावाद का ध्यान रखते हुए पाठ्यक्रम पूर्णत: बालकेंद्रित है। जीवन कौशल के साथ–साथ लिंगसमभाव के तत्व एवं मूल्यशिक्षा को पाठ्यक्रम में यथोचित स्थान देते हुए केंद्रीय आधारभूत तत्वों का समावेश करना जरूरी है, नहीं तो छात्रों का सतत सर्वांगीण मूल्यांकन नहीं होगा। इसलिए छात्रों का सालभर निरंतर और सतत सर्वांगीण मूल्यांकन होता भी रहे, इस बात का ध्यान रहे। भारतीय संविधान की धारा 41 में यह कहा गया है कि राज्य अपनी आर्थिक क्षमता एवं विकास की सीमाओं के तहत शिक्षा के अधिकार की प्राप्ति के लिए प्रभावकारी कदम उठाएगा। इतना ही नहीं, संविधान की धारा 45 में भी यह कहा गया है कि संविधान लागू होने (26 जनवरी, 1950) से दस वर्षों के अंदर राज्य, 14 वर्ष की उम्र तक के सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा। सर्वोच्च न्यायालय ने उन्नीकृष्णन के मामले में इस नीति निर्देशक सिद्धांत की व्याख्या करते हुए इसे मौलिक अधिकार माना है किंतु संविधान लागू होने के 67 वर्ष बीत जीने के बावजूद इस दिशा में कोई पहल नहीं की गई। वर्ष 2003 में केंद्र सरकार ने 14 वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा के लिए पहली बार कानून बनाया है जो सराहनीय है। 2009 में यह

कानून सभी राज्यों ने अपनाया जिसके माध्यम से शिक्षा का मौलिक अधिकार और उसकी समुचित व्यवस्था करना सरकार का मौलिक दायित्व निर्धारीत किया गया। किंतु इस प्रारंभिक शिक्षा के बाद व्यावसायिक शिक्षा की शुरुआत उच्चतर माध्यमिक शिक्षा से निश्चित रूप से सक्रिय एवं प्रभावकारी बनाने के लिए राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) को अपनाया गया है। किंतु अधिकांश राज्यों में व्यावसायिक शिक्षण की समुचित व्यवस्था नहीं है न तो विभिन्न व्यवसायों के लिए दक्ष शिक्षक उपलब्ध हैं और न संबंधित कौशलों से संबंधित आवश्यक उपकरण एवं मशीने इन विद्यालयों में उपलब्ध हैं। परिणामस्वरूप बिना किसी विशिष्ट उद्देश्य के विदयार्थीगण सामान्यीकृत ज्ञान–केंद्रित विषयों में प्रवेश लेने के लिए अभिशप्त है। बेरोजगार नवयुवकों की फौज हर गाँव में तैयार है जो चौराहे पर शोरगुल में मशगूल है।

वर्तमान के साथ भविष्य की माँगो तथा चुनौतियों का सामना करनेवाले छात्र तैयार करना उसके साथ–साथ सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक विरासत, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, श्रमप्रतिष्ठा, परदुखकातरता प्राणीमात्रा के प्रति दया, खेलभावना, सत्यनिष्ठा, आचारनिष्ठा आदि मानवीय मूल्यों के प्रति सजगता प्राप्त कर इन गुणों को आत्मसात करने की ओर उन्मुख करना होगा। तभी छात्रों का गुणात्मक विकास होगा। यह आज के शैक्षिक विमर्श का महत्त्वपूर्ण आयाम है। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के शिक्षकों की माँग है कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षकों को सभी दृष्टिकोणों से सर्वोच्च सुविधाएँ दी जाएँ।

आज शिक्षा प्रणाली में बुनियादी शिक्षा पर अधिक बल दिया जा रहा है। जिससे देश आगे बढ़ रहा है। विभिन्न विश्वविद्यालयों, आई.आई.टी.एवं. आई.आई.एम. जैसे उत्कृष्ट संस्थानों से उत्तीर्ण विशेषकर इंजिनियर, चिकित्सक एवं वैज्ञानिक अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल स्वदेश में कम और विदेश में अधिक करते हैं। दूसरी ओर भारत के वित्तीय संसाधन सीमित हैं। जिसके कारण केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा उच्च शिक्षा और प्राथमिक–माध्यमिक शिक्षा को समान रूप से प्राथमिकता नहीं दी जा सकती। ऐसी परिस्थिति में दोनों में एक चुनने का आधार यह होगा कि किस स्तर की शिक्षा से समाज को अधिक लाभ होता है। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा अधिक–से–अधिक लोगों को ज्यादा आसानी से उपलब्ध है, तथा और भी लोगों को आसानी से उपलब्ध कराई जा सकती है, अपेक्षाकृत कम खर्चीली है तथा समाज के वंचित वर्गों के हितों के ज्यादा करीब है। इस संदर्भ में सुभाष शर्मा का

कहना है, ''प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा से सामाजिक लाभ अधिक हैं जब कि उच्च शिक्षा से सामाजिक लाभ कम, व्यक्तिगत लाभ अधिक हैं। इसलिए प्राथमिक शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए उसके बाद माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा में सरकार की भूमिका द्वितीयक हो, निजी क्षेत्रों को बढ़ावा दिया जाए तो कोई खास हर्ज नहीं क्योंकि वे माँग आधारित होंगे।''[2] उक्त चर्चित समस्याएँ वर्तमान शिक्षा प्रणाली में दिखाई देती है। किन्तु जब हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन करते है तो हमे निम्न प्रकार की शिक्षा, संबंधी समस्याएँ उजागर होती हैं।

6.1 भ्रष्टाचार की समस्या :

आज भ्रष्टाचार एक प्रमुख समस्या के रूप में हमारे सामने आ गई है। भ्रष्टाचार से सब तरफ अराजकता फैली हुई है और देश खोखला बनता जा रहा है। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था भारतीय शिक्षा को गलत दिशा की ओर ले जा रही है। वर्तमान शिक्षा को प्रभावित करनेवाले महत्त्वपूर्ण घटक ही भ्रष्टाचार में फँस चुके हैं। इसी कारण शिक्षा के क्षेत्र में अशांति और अराजकता फैल गयी है। लोगों में निहित स्वार्थों ने छात्रों के जीवन को ही पूरीतरह तहस–नहस कर दिया है । सन् 1990 के बाद आधुनिक शिक्षा प्रणाली की जटिलतम समस्याओं को हिन्दी उपन्यासकारों द्वारा उठाया गया है। भाई–भतीजावाद, नौकरी दिलाये जाने के नाम पर स्वेच्छाचार, अव्यवस्था, स्कूलों की मानसिकता, अध्यापकों की मनोवृत्तियों के कारण शिक्षा के गिरते स्तर का यथार्थपरक चित्रण अनेक लेखकों ने किया है ।

आज शिक्षा जगत् में ही कई जगह पर भ्रष्टाचार देखने को मिलता गया है। भ्रष्टाचार, राजनीतिक हस्तक्षेप और नाते संबंधों को प्रधानता से शिक्षा क्षेत्र में अराजकता फैल गई है। आज अध्यापकों के सम्बन्ध में समाज में अनेक भ्रम फैले हुए हैं। उनके सम्बन्ध में धारणा है कि वे सन्तोषी एवं आदर्शवादी होते हैं। प्रशासकी, राजनीतिज्ञों से लेकर सामान्य जनता तक पूर्वग्रहों से ग्रस्त है जिनके कारण अध्यापकों की मूल समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं देता। अध्यापकों की ऐसी ही समस्याओं की आलोच्य उपन्यासों में चर्चा हुई है। शिक्षा को संस्थापकों ने आज पैसे कमाने का धन्धा बना लिया है। पैसे के बल पर वे शिक्षा संस्थाएँ चलाने का दावा करते हैं। ये लोग जो कुछ भी करते हैं उसे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ एवं इच्छा की दृष्टि से ही करते हैं। किसी व्यापक सामाजिक दायित्व के बोध से प्रेरित होकर नहीं। वे अयोग्य तथा अज्ञानता का प्रदर्शन करते हैं कि उनकी बुद्धि

पर तरस आता है। अध्यापकों की नियुक्ति में धाँधलियाँ आज आम बात हो गयी हैं। विश्वविद्यालयों के विभागाध्यक्ष सभी जगह एक्सपर्ट रहते हैं। कॉलेज के प्रिंसिपल तथा विभागाध्यक्ष का ही अधिकार चलता है । राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप हुआ तो कॉलेज के प्रिसिंपल तथा विभागाध्यक्षों का भी कोई अधिकार नहीं चलता। जब व्यक्तिगत हाथों में शक्ति केन्द्रित हो जाती है, तब चलता है –भाई–भतीजावाद, मित्रतावाद। आज अध्यापकों की मुख्य समस्या वेतन और सेवा की सुरक्षितता है । सरकार उनके समस्याओं का हल करने का प्रयास कर रही है, फिर भी आज उनकी अनेक समस्या हैं। इस संदर्भ नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''अध्यापक भारत के सबसे उपेक्षित वर्गों में से हैं। सरकार भी इनका निर्दलन करती है और प्रबन्ध समितियाँ भी। जिस वर्ग पर यह दुहरी मार पड़ती है उसके कष्टों का अनुमान लगाना बिल्कुल भी कठिन नहीं हैं।''[3] सन 1990 के बाद के इन चार दर्शकों में सत्ता प्राप्त अधिकारियों, प्राध्यापकों तथा राजनीतिज्ञों ने अपने व्यवहार से शिक्षा के स्वर्णिम पृष्ठों को कलंकित करने का कार्य किया है। इस संदर्भ में नीता पांढरीपांडे का कहना है, '' भ्रष्ट आचरण के कारण विश्वविद्यालय शासन तानाशाही शासन लगने लगा है। चारों ओर भ्रष्टाचार, अनाचार का जहर दिन–ब–दिन फैलता जा रहा है। हर बड़ा आदमी छोटे आदमी को अजगर की तरह निगलने को तैयार बैठा है।''[4] इसप्रकार भ्रष्टाचार ने हाहाकार मचा दिया है।

'मोरी की ईट' उपन्यास में मदन दीक्षितजी ने भ्रष्टाचार और आर्थिक शोषण का चित्रण किया है। मंगिया अपने पति झरगदिया की नौकरी माँगने के लिए हीरालाल के पास जाती है। तब हीरालाल जमादार रिश्वत के नाम पर कुछ रूपये और आगे चलकर मंगिया का यौन–शोषण तक करने की इच्छा रखता है। हीरालाल मंगिया को कहता है, ''वैसे इस काम में खर्चा तो बीस–पच्चीस रूपये से कम का नहीं आता, लेकिन तू गरीबनी इतने रूपयों का इंतजाम कहाँ से करेगी!''[5] इसप्रकार हीरालाल जमादार मेहतर होकर भी मंगिया को ऐवज में नौकरी मिलने के लिए रिश्वत देने को विवश करता है। हमारे समाज में आज भी कोई भी व्यक्ति अपने से नीचे गरीब, अनाथ, पीछड़े लोगों का शोषण करते है।

रामधारीसिंह दिवाकर के 'आग पानी आकाश' उपन्यास में भ्रष्टाचार की समस्या दिखाई देती है। बब्बन धोबी गरीब दलित परिवार से है। वह अनेक संघर्षो के बावजूद अपने बेटे–भागवत और युगेश्वर को पढ़ाता है। लेकिन वहीं दोनों बेटे भ्रष्ट निकलते हैं। भ्रष्ट भागवत बाबू नेता बनते हैं और अनैतिक कार्य करते रहते हैं। वह अनेक षड़यंत्र करके लोगों पर अन्याय करते हैं। भागवत बाबू के

संदर्भ लोगों का कहना हैं, '' गाँव के बड़े लोग और भागवत बाबू जैसे नये सामंत कभी आदमी की तरह जीने नहीं देंगे। हरिजनों के पशु बने रहने में ही भागवत बाबू जैसे लोगों के अस्तित्व की सुरक्षा है।''[6] इसप्रकार भागवत बाबू भ्रष्टाचार करता रहता है। युगेश्वर एम.ए. अर्थशास्त्र की उपाधि प्राप्त करता है और स्पर्धा परीक्षा देकर वित्त विभाग के सचिवालय में वरिष्ठ अफसर बन जाता है। वह उच्च पद पर बैठने पर आम आदमी को लूटता है। इसप्रकार भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति नजर आती हैं।

तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति नजर आती है। गिरीशकुमार के दिल्ली ट्रेनिंग के लिए चला जाता है । वहाँ पर गिरीशकुमार देखता है कि सेठी साहब भ्रष्टाचारी हैं। वे लोगों को लुटते हैं। साथही वे अभिजात्य वर्ग के होने के कारण दलितों पर अन्याय करते हैं और घृणा करते है। सेठी साहब की तरह वाजपेयी भी भ्रष्ट हैं। वे भ्रष्टाचार के साथ–साथ अन्य लोगों का मजाक उड़ाते हैं। वे सांप्रदायिकता और जतियता की सदैव आलोचना करते रहते हैं । एक बार सेठी साहब कहते हैं, ''सिंधी गधे होते है, मुसलमान गद्दार होते है, सीख बेवफूफ होते है, वैसे ही चमार चमार होते हैं ।''[7] इसप्रकार भ्रष्ट सेठीसाहब और वाजपेयी अन्याय है । वे लोगों का मजाक उड़ाते हैं ।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति नजर आती है । प्रस्तुत उपन्यास से स्पष्ट होता है कि कुछ अध्यापक भ्रष्ट है । वे इस उपन्यास के कॉलेज के विभागाध्यक्षों की शान राजा–महाराजाओं की तरह है। वे उनके ज्यूनियरों का शोषण करते हैं। वे अध्यापन के कार्य के अलावा अन्य काम कर लेते है। जो इस कार्य का विरोध करते हैं। उन्हें कॉलेज में परेशान किया जाता है और जो अध्यापक चमचा बनकर रहता है, उसकी कॉलेज में चलती हैं। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना हैं, ''विभागाध्यक्षों की शान किसी राजा–महाराजा से कम नहीं है । उनके ज्यूनियरों को कम–से–कम परमनन्ट होने तक बेगार ढोनी पड़ती है। अध्यक्ष महोदय का ग्रंथ छप रहा है – प्रूफ पढ़ो। अध्यक्ष महोदय की किसी सेठ के साथ मित्रता है तो सेठजी का भाषण लिखकर दो। अपने आपको प्रतिभाशाली मानोगे तो पीट दिए जाओंगे। बस चमचे बने रहो। चमचे बनना ज्यूनियरों की नियति है । इस व्यवस्था में रहना है तो चमचा बनना ही पड़ेगा। अपनी सर्विस बनाये रखने के लिए गलत और भ्रद्दी बातों पर भी वाह वाह करनी होगी।''[8] इसप्रकार शिक्षा व्यवस्था में भ्रष्टाचार और अनैतिकता बढ़ रही है ।

6.2 गरीबी की समस्या :

गरीबी देश का अभिशाप है। आज अधिकतर जनसंख्या गरीबी के कारण निचले स्तर का जीवन जी रही है। परिणामस्वरूप देश की प्रगति नहीं हो रही है। शिक्षा जगत् में उपस्थित विभिन्न समस्याओं का एक कारण आर्थिक भी हैं। आज के युग में वित्त ही शिक्षा का आधार है। वित्त के बिना शिक्षा का प्रसार, प्रसार एवं विकास असम्भव है। वैसे ही म. फुले ने शिक्षा का महत्व बताते हुए कहा था–

''विद्या बिना मति गई, मति बिना नीति गई,
नीति बिना गति गई, गति बिना वित्त गया,
वित्त बिना शूद्र टूटे, इतना अनर्थ एक अविद्या ने किया।''[9]

आजादी के बाद भी हमारे शासकों और नेताओं ने शिक्षा को वह महत्त्व नहीं प्रदान किया, जो प्रजातंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है। परिणामस्वरूप पंचवार्षिक योजनाओं में आज भी बहुत कम मात्रा में शिक्षा पर व्यय किया जा रहा है, जो नगण्य है। हमारे देश में शैक्षिक वित्त के दो प्रमुख स्त्रोत हैं – सरकारी और गैर सरकारी। सरकार की व्यय क्षमता सीमित है अत: निजी स्त्रोतों से ही शिक्षा का अधिकतर व्यय चल रहा है। ऐसी व्यवस्था के कारण ही निजी संस्थाएँ शिक्षा की अपनी बपौती समझ बैठी है। धन के बल पर व्यवस्थापन से लेकर अध्यापन तक, छात्रों के प्रवेश से लेकर अध्यापकों की नियुक्ति तक सभी पर उनका अपना अधिकार है जिनके कारण अयोग्य, अध्यापन में रूचि न रखनेवाले लोग भी इस क्षेत्र में प्रविष्ट हो गये हैं। भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद को बढ़ावा मिल रहा है।

विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है। एक तरफ जनसंख्या बढ़ रही है तो दूसरी तरह सरकार जनता को सुविधा देने में असमर्थ है। परिणामस्वरूप गरीबी बढ़ रही है। हमारे देश की जनसंख्या बड़ी तीव्र गति से बढ़ रही है। उस अनुपात में शिक्षा पर व्यय करने में हम असमर्थ हैं परिणामस्वरूप आज भी सम्पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य पूरा करने में हम असमर्थ हैं। शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशिक्षित अध्यापक, शैक्षिक प्रशासक, शोधकर्ता आदि के साथ अतिरिक्त भूमि, भवन, क्रीडाक्षेत्र, प्रयोगशाला आदि के लिए पर्याप्त धन अपेक्षित होता है। लेकिन आज शिक्षकों को देने के लिए भी सरकार के पास पैसा नहीं हैं। वर्तमान शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य रोजगार प्राप्त कर

सुख–समृद्धि पूर्ण जीवन व्यतीत करना है। भारत में रोजगार का अर्थ सरकारी नौकरी से ही लिया जा रहा है। हमारी शिक्षा में व्यवहारिकता की कमी होने के कारण शिक्षित व्यक्ति आत्मविश्वास की कमी के कारण स्वयं उदयोग–धन्धे नहीं खोल पा रहा है। हर शिक्षित युवक बढ़िया नौकरी के सपने देखने लगता है। लेकिन जब ये सपने पूरे नहीं होते तो उनमें असंतोष की भावना निर्माण हो जाती है। इस संदर्भ में नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''धन, शक्ति तथा वर्षों का समय पढ़ाई पर व्यतीत करने के बाद भी जब उन्हें लक्ष्यपूर्ति असम्भव नजर आने लगती है तो उनमें अनुशासनहीनता आने लगती हैं।''[10] इसप्रकार गरीबी के कारण अनुशासनहीनता आ रही है।

वर्तमान काल में शिक्षा में राजनीति का प्रवेश हो गया है। जिससे शिक्षा प्रणाली गंदी हो गई है और जिससे देश का नुकसान हो रहा है। आज शिक्षण संस्थाएँ राजनीति के अखाड़े बने हुए हैं, जहाँ चार प्रकार की राजनीति चल रही है। एक तो राजनीतिक दलों की राजनीति दूसरे कुछ प्रभावशाली अध्यापकों की अपनी स्वार्थ पूर्ति तथा अपने चेलों, भाई–भतीजों को प्रतिष्ठित करने की राजनीति और तीसरे विद्यालयों के प्रबन्ध समिति की राजनीति और चौथे विद्यालयों के प्रबन्ध समिति की राजनीति। विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप रहता है, जिससे कॅम्पस का वातावरण अनिवार्य रूप से दूषित होता है।

आज समाज में शिक्षा का प्रति आस्था बढ़ रही है। फिर भी आज शिक्षा के प्रति प्रबोधन करना आवश्यक है। आज वंचितों तक शिक्षा पहुँचनी आवश्यक है, तब देश का विकास हो सकता है। समाज तथा शिक्षा दो अलग–अलग दिशाओं में चल रही थी। समाज के साथ उसका सम्बन्ध नहीं था। शिक्षा तभी उपादेय होती है जब वह समाज के लिए लाभकारी सिद्ध होती है। शिक्षा को समाज की ओर उन्मुख होना चाहिए। क्योंकि समाज की अपेक्षित माँगो की पूर्ति शिक्षा के माध्यम से ही होती है। सामाजिक व्यवहारों के प्रतिमान निर्धारण में भी शिक्षा की प्रमुख भूमिका है। हमारे देश का सामाजिक ढाँचा भी मूलत: परम्परागत ही है। अत: सामाजिक दुरूहता, राजनीतिक विवशता और आर्थिक विषमता के घातक परिणामों की शिक्षा को भुगतना पड़ा है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''आज भी हमारे यहाँ उच्च शिक्षा केवल उच्च तथा उच्च मध्यम वर्गीय लोगों के लिए ही ज्यादातर उपलब्ध है। ऐसे वर्गों से सम्बन्धित शिक्षित व्यक्ति उच्च पदोंपर पहुँचकर विभिन्न प्रकार की अन्य सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को जन्म दे रहे हैं।''[11] वर्तमान शिक्षा महँगी होने के कारण वह केवल धनवानों की ही बपौती बन गयी है। योग्य तथा बुद्धिमान छात्र पैसों

के अभाव में आज भी शिक्षा प्राप्त करने से वंचित किए जा रहे हैं। परिणामस्वरूप उनमें असन्तोष की भावना बढ रही है। सारी व्यवस्था के प्रति उनके मन में विद्रोह जाग उठ रहा है। इसी से उनमें अनुशासनहीनता आने लगी है। इसलिए गरीबी नष्ट करने के लिए शिक्षा पर बल देकर देश की प्रगति करनी चाहिए।

शिक्षा एक ऐसी वस्तु है जो प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचनी चाहिए। शिक्षा सस्ती से सस्ती हो कि निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी शिक्षा प्राप्त कर सके। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह मुलभूत अधिकार भी है। जिससे शिक्षा के दरवाजे प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए खुले। गरीबी का कदम शिक्षा के मार्ग में बाधक बना है। अन्य समुदायों की जो शिक्षा की दृष्टि से पिछडे हुई है आधुनिक शिक्षा की दृष्टि से पिछडे हुए हैं, आधुनिक शिक्षा का प्रत्येक स्तर उन्हे सुलभ कराया जाए। ताकि वे अपने अधिकार और नागरिकता के उत्तरदायित्वों की अनुभूति कर सके। कोई भी समाज शिक्षा के क्षेत्र में कितना आगे जाता है, इस समाज की गरीबी का मूल्यांकन किया जाता है। समाज में शिक्षा ही गरीबी दूर करके समानता ला सकती है। जब मनुष्य शिक्षित हो जाता है, उसमें विवेक और सोच की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जिससे अच्छे –बुरे का ज्ञान और निर्णय लेने की क्षमता आती है। बुद्धिमान बनकर समाज में आर्थिक शक्ति आ जाती है। और गरीबी दूर करना शिक्षा द्वारा ही संभव है। आलोच्य उपन्यास में गरीबी की समस्या का चित्रण उपन्यासकारोंने अपनी अपनी अनुभूतियों द्वारा रेखांकित किया है। वह निम्नप्रकार से –

मदन दीक्षित द्वारा लिखित 'मोरी की ईंट' उपन्यास में गरिबी की समस्या नजर आती है। इस उपन्यास की नायिका मंगिया की आर्थिक स्थिति बुरी है। वह अपने बेटे को पढ़ाना चाहती है, पर आर्थिक स्थिति के कारण नहीं पढ़ा पाती है। अन्त में सोहन को मिशनरी स्कूल में डाला जाता है। जहाँ पर छात्रों की सभी सुविधा मुफ्त में की जाती है । मंगिया अपने पुत्र सोहन को ईसापूर के मिशनरी स्कूल दाखिल करती है। वहाँ पर जैकब और फ्लोरा अध्यापन का काम करते हैं जो जातियता से परे हैं। मंगिया स्कूल में पहुँचने पर उसे कुर्सी पर बैठने के लिए कहा जाता है। वह गरीब लोगों की सेवा करते हैं। यह सब देखकर मंगिया कहती है, '' इतना क्याँ कम है मेमसाब! अब आप तो इस मोरी की ईंट को चौबार पर ही चढ़ाए दे रही है।''[12] इस प्रकार जैकब और फ्लोरा गरीबों के साथ मानवता का व्यवहार करते हैं। मंगिया अपने गरीबी के कारण अपने बेटे सोहन को मिशनरी स्कूल में दाखिल करती है। इस प्रकार गरीबी के कारण अपने दूर रखकर पढ़ाती है ।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में गरिबी की समस्या दिखाई देती है। इस उपन्यास का नायक सुनीत की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है लेकिन उसमें अध्ययन करने की ललक है। जातियता और गरीबी के कारण अध्यापक भी उसके साथ अन्याय करते हैं। फिर भी वह अधिक से अधिक पढ़ाई करके अन्याय का जवाब अपने तरीके से देना चाहता है। गरीबी के कारण उसके कच्चे घर में लाईट नहीं है। इसलिए सुनीत बाहर गली के किनारे पर लगे लैम्प पोस्ट के उजाले में अध्ययन करता है। उसमें कठोर अध्ययन करने की लालसा दिखाई देती है। इस संदर्भ में लेखक का कहना है, '' उनके कच्चे घर में लाईट कनेक्शन नहीं था, इसलिए सुनीत बाहर गली के किनारे पर लगे लैम्प पोस्ट के उजाले में पढ़ता था। वह, वही खडे होकर पढ़ता और जब थक जाता तो वहीं नीचे जमीन पर बैठ जाता।''[13]

बंसी को रात दिन बेटे को पढ़ते देखकर अच्छा भी लगता था लेकिन मन में चिंता भी थी। एक दिन बन्सी ने अपने बेटे सुनीत से कहा भी ''बेटे दिन में तो तुम पढ़ ही होते हो फिर रात में ..... बंसी कुछ कहना ही चाहता था कि उनसे पहले सुनीत बोल पड़ा।'' पिताजी अपने ही तो बताया था कि डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर खूब पढ़ते –लिखते थे। उनके घर बिजली न थी, पर वे बाहर लॅम्प–पोष्ट के उजाले में पढ़ते थे। मैं उसी सच को आत्मसात कर रहा हैं।''[14] किंतु सच बात तो यह थी कि सुनीत मेहनत इसलिए कर रहा था कि उनकी जात का सिर ऊँचा हो उनके मान–सम्मान को जो अब तक आघात लगे है, उनसे उबरकर वे आगे आए। यही विचार आया कि बाबासाहेब अम्बेडकर इतनी गरीबी में पढ़ सकते है तो वह क्यों नही पढ़ सकता। अम्बेडकर ने तो सारे दलित समाज का सिर ऊँचा किया था। उन्होंने गरीबी से छुटकारा दिलाया था। उन्हें एहसास दिलाया था कि वे गुलाम नहीं है। गुलामी की ओढ़ी हुई चादर उतारकर फेंक देना चाहिए। इसप्रकार गरीबी के कारण जीवन संघर्ष कितना करना पड़ा था इसका वर्णन मुक्तिपर्व उपन्यास में देखने को मिलता है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में में गरिबी की समस्या नजर आती है। इस उपन्यास का नायिका चंदन अनेक संघर्षो के बावजूद एम.ए. की उपाधि प्राप्त करता है। इसके साथ–साथ पारिवारिक जिम्मेदारी निभाता है। उसके पास बम्बई कॉलेज में इंटरव्यू के लिए पैसे नहीं है। इसलिए मित्रों से पैसे लेकर इंटरव्यू देता है। वहाँ पर उसे लेक्चरर की नौकरी मिलती है । लेकिन वहाँ तनख्वाह अधिक नहीं है इसलिए वह परेशान रहता है। फिर भी अपना शैक्षणिक नौकरी का और पारिवारिक दायित्व निभाता रहता है। लेकिन कॉलेज में उसपर अन्याय होता है और परिवारवाले

उसके साथ धोखाधड़ी करते है । इस कारण उसका जीवन नरकमय बन जाता है। इसलिए डॉ. वंदना प्रदीप का कहना है, ''निम्न वर्गीय जीवन यथार्थ को केंद्र में रखकर लिखा गया यह उपन्यास है । मध्यवर्गीय युवक चंदन के संघर्ष, उसके पारिवारिक दायित्व बोध, भ्रष्ट व्यवस्था, शिक्षा–संस्थाओं की दयनीय दशा और अर्थकेन्द्रित पारिवारिक संबंधों की असलियत आदि उजागर करता हुआ यह उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन का जीवंत दस्तावेज है।''[15] इसप्रकार इस उपन्यास से गरीबी की समस्या को उजागर किया है ।

6.3 मूल्यहीनता की समस्या :

जीवनमूल्यों की बालकों, युवकों/युवितयों को प्रेरित करने की कुछ तकनीके नीचे सुझाई जा रही है। जिसके माध्यम से मूल्यहीनता की जगह मूल्यधिष्ठित जीवन जीने का प्रयास होगा। विचार–विमर्श सत्र, परिसंवाद, परिचर्चा, अन्वेषण, साक्षात्कार, क्षेत्रीय भ्रमण, अभिकार्य, वाद–विवाद, आलोच्च्यन घटनाओं का विश्लेषण, चर्चासत्र, प्रदर्शन, मूल्यों का विषयों से समवाय कार्यानुभव कार्यक्रम आदि का आयोजन करके, सहभागी होकर आत्मनुभूती लेकर परिवर्तन कर सकते हैं। आज कई छात्र–छात्राएँ समाज के रीति–रिवाजों को नहीं मान रहे हैं। वे जीवन में हर चीज देखना चाहते हैं। आज के कतिपय छात्र मादक द्रव्यों के सेवन का आनंद उठाना चाहते हैं। वे समाज के बन्धनों को तोड़कर स्वच्छन्द जीवन जीने की अभिलाषा रखते हैं। विदेशी सभ्यता अपनाने की इच्छा के कारण कुछ छात्र यह भूल जाते हैं कि वे अपने जिन्दगी बरबाद कर रहे हैं। इस दौड़ में लड़कियाँ भी लड़कों से पीछे नहीं हैं।

व्यक्तिगत तथा व्यक्तिसंबंधी मूल्य जैसे स्वच्छता, श्रम का महत्व, समयपालन, ईनामदारी, प्रकृती प्रशंसा, सहनशीलता, आत्मनिर्भरता, परोपकारिता, साहय, पशु–पक्षीप्रेम, पर्यावरण के प्रति सजगता, समुदाय से संबंधित मूल्य– जैसे प्रेम, भाईचारा, सहयोग, सेवा, समुदाय भावना, उत्तरदायित्व, सहानुभूति, अहिंसा, क्षमा, जवाबदेही, राष्ट्रीय मूल्य जैसे– देशभक्ति, पंथ निरपेक्षता, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, प्रजातंत्र ये ऐसे मानवीय गुण हैं , जिनके विकास से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र की मूल्यविकास हो सकता है । इन्हें अपनाने की जरूरत है । वर्तमान शिक्षा मनुष्य के आचार व्यवहार में दायित्व चेतना उत्पन्न करने के स्थान पर धनार्जन और श्रम वंचना के मार्ग पर अग्रसर होना सिखाती है जिसमें अध्यापकों की सहभागिता अधिक है। जब छात्र देखते हैं कि कृतिपय

अध्यापकों में ज्ञानपिपासा के स्थान पर धनपिपासा है, गुटबाजी को वे अधिक महत्व देते हैं तो स्वाभाविक ही छात्र भी उन्हीं के नक्शे कदम पर चलने लगते है। वे भी ज्ञानपिपासा से हीन होकर प्रमाणपत्रों की प्राप्ति की ही अपनी लक्ष्य समझ बैठते हैं। आजकल अध्यापक की नौकरी पाने के लिए और प्राप्त नौकरी को बनाए रखने के लिए अध्यापकों को काफी कुछ करना पड़ता है। गुण्डागर्दी और भ्रष्टाचार के इस माहौल में अध्यापकों को अपनी नौकरी संभालकर रखने के लिए भी अनेक तिकड़में लड़ानी पड़ती हैं। अपमान सहना पड़ता हैं। बेगार ढ़ोनी पड़ती है क्योंकि प्रबन्धक, प्राचार्य, विभागाध्यक्ष सभी यह महसूस करते हैं कि अध्यापकों का भविष्य अपने हाथों में है। अत: ये लोग स्थिति का नाजायज फायदा उठाते हैं और अध्यापकों को अपने हाथ का खिलौना बना लेते हैं। यह तो सभी जानते हैं कि इस देश के सभी महकमे के सरकारी कर्मचारी प्राय: भ्रष्ट एवं बेईमान माने जाते हैं जब कि केवल शिक्षा समुदाय के लोग ही इसके अपवाद माने जाते हैं। मगर यह देखकर कितना ताज्जुब होता है कि जिन्हें हम राष्ट्रनिर्माता मानते रहे हैं अब उसमें से कुछ लोग बेईमान बन गये हैं। उनमें भी भ्रष्टाचार समा गया है, जिसके कारण छात्रों के चरित्र निर्माण के निर्माताओं का यही अब चारित्रिक पतन हो रहा हैं।

आज से शिक्षा प्रणाली में मूल्यहीनता आ गई है। जिससे छात्र और अध्यापक वर्ग में अनुशासनहीनता आ गई है। इसलिए आज शिक्षा प्रणाली तो नैतिक शिक्षा की आवश्यक है। आज शिक्षा संस्थाओं में अनुशासन के अनुसार व्यवस्था दिखाई नहीं दे रही है। जिसके कारण छात्रों में आन्तरिक शक्ति एवं विवेक की कमी प्रतीत हो रही है जो उन्हें यह ज्ञान करा सके कि क्या न्यायपूर्ण है और क्या न्यायपूर्ण नहीं है। इसी कारण आज के छात्र शिक्षा संस्थाओं में तोड़फोड़, अध्यापकों के साथ दुर्व्यवहार, आपसी झगड़े, आवारा गर्दी करते दिखाई देते हैं। अपने मानसिक असन्तोष को वे अपने उच्छृंखल व्यवहार से प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार की मनोवृत्ति शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर दिखाई देती है लेकिन उच्चस्तर पर आकर इसका उग्ररूप हमारे सामने आता है। विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक एवं आर्थिक कारणों से प्रारम्भिक कक्षाओं से ही कुछ छात्र–छात्राओं में अनुशासन विहीन मनोवृत्ति की नीव पड़ जाती है। छात्र–छात्राओं के आचरण की ओर माँ–बाप तथा शिक्षक गम्भीरता से ध्यान नहीं देते। परिणामस्वरूप उसी मनोवृत्ति के वशीभूत होकर आगे चलकर वे छात्र और अधिक अनाचरण की ओर प्रवृत्त होते हैं। इस संदर्भ में नीता पांढरीपांडे का कहना है, ''प्रारम्भिक कक्षाओं में जो छात्र झूठ बोलते हैं, गृहकार्य नहीं करते, शिक्षकों के पीछे

उनकी हँसी उड़ाते हैं, उच्च कक्षाओं में आकर वे ही छात्र कक्षा में शिक्षकों तंग करने के नये–नये रस्ते ढूँढ़ते हैं। उनका कॉलेज में आने का मकसद पढ़ना नहीं वरन् अध्यापकों को तंग करना ही होता हैं।''[16] इसप्रकार मूल्यहीनता आ रही है।

चंद्रमोहन प्रधान के 'एकलव्य' उपन्यास में मूल्यहीनता समस्या दिखाई देती है। प्रस्तुत उपन्यास में निषाद ग्राम के एकलव्य आचार्य द्रोण से शिक्षा प्राप्त करना चाहता है। इसलिए वह हस्तिनापुर आता है। वह आचार्य द्रोण के सामने आकर अपनी इच्छा प्रकट करता हैं। पर आचार्य द्रोण जातियवादी व्यवस्था को माननेवाले हैं। वे एकलव्य के प्रति भेदाभेद करते हैं। वे नैतिक मूल्यों को नहीं अपनाते हैं बल्कि उसकी भक्ति को ठुकरा देते हैं। अन्त में भागिरथी तट पर आचार्य द्रोण को गुरू मानकर एकलव्य स्वयंअध्ययन करता है। वह स्वयंअध्ययन में सफल होने के उपरान्त आचार्य द्रोण चिंतित हो जाते हैं, क्योंकि वह अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाना चाहते हैं। इसलिए गुरूदक्षिणा के रूप में एकलव्य का अंगुष्ठ की माँग करते है। वे मूल्यहीनता की परिसीमा लांघ देते हैं। एकलव्य को आचार्य द्रोण कहते है।, ''द्रव्य–आभूषण की अपेक्षा कुछ विशिष्ट चमत्कारी लोकोत्तर दक्षिणा की माँग की और कहा, तुम देना ही चाहते हो तो मात्र अपने दाहिने हाथ का अंगुष्ठ काटकर मुझे दे दो।''[17] इसप्रकार की गलत माँग करना मूल्यहीनता ही है। क्योंकि अध्यापन न करते हुए विचित्र अन्यायी और मूल्यहीन माँग करना गलत है। इसप्रकार मूल्यहीनता की समस्या सामने आ रही है।

गिरीराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में मूल्यहीनता समस्या नजर आती है। इस उपन्यास में अनुसूचित जाति के छात्रों के संदर्भ में कानपुर के आई.आई.टी. की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास से स्पष्ट होता है कि इन संस्थानों में निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के छात्रों के बीच मतभेद को दर्शाया हैं। इस मतभेद और मूल्यहीनता के कारण हर वर्ष एकाध छात्र आत्महत्या करता है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है, '' 'परिशिष्ट' एक स्तरीय रचना है जिसमें आई.आई.टी. कानपुर का परिवेश भर पड़ा है। इन संस्थानों में निम्न जाति और उच्च जाति के छात्रों के बीच मतभेद होता आया है।''[18] इसप्रकार शिक्षा संस्थाओं में मूल्यहीनता दखिाई देती है। एकाध छात्र आत्महत्या करने पर जाँच समिति बिठाकर उसपर पर्दा ड़ाला जाता है। अध्यापक तथा संस्था चालक समिति को रिश्वत देकर गलत रिपोर्ट लेते है और छात्रों पर अन्याय करते रहते है। इसप्रकार यहाँ भी मूल्यहीनता की समस्या दिखाई देती है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में मूल्यहीनता की समस्या नजर आती है। इस उपन्यास से स्पष्ट होता है कि अध्यापकों में मूल्यहीनता दिखाई देती है। वह सदैव अपना कर्तव्य भूलकर विलासीनता एवं ऐश–आराम में रहते हैं। वे अपने अध्यापन का काम छोड़कर अन्य कार्य में व्यस्त होते हैं। वे अपने ज्युनिअर अध्यापक को सदैव परेशान करते रहते और उसका शोषण करते हैं। इसप्रकार मूल्यहीनता की समस्या सामने आ रही है।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' में ठाकुर साहब और उनकी इकलौती पुत्री रजनी में वैचारिक भिन्नता है। रजनी को मातापुर के हरिजनों के प्रति दया प्रेम है, उनके उद्धार के भाषण करने तक ठीक है लेकिन ठाकुर साहब के मत में रजनी और हरिजनों के प्रति मूल्यों का लवलेश भी दिखाई नहीं देता है। ''ठाकुर साहब की मान्यता है कि ''यदि ये सब लोग पढ़–लिखकर ऊँचे ओहदों तक पहुँचने लगेंगे तो हमारी श्रेष्ठता कहाँ रह जाएगी। यदि ये सब स्वावलम्बन और स्वाभिमान का जीवन जीने लगेंगे तो फिर हमारा वर्चस्व इन पर कैसे रहेगा।''[19] इसप्रकार ठाकुर साहब के मन में दलितों के प्रति मूल्यहीनता दिखाई देती है।

मोहनदास नैमिशराय के मुक्तिपर्व उपन्यास में नारी के प्रती मूल्यों का ऱ्हास दिखाई देता हैं। हिंदु और मुस्लिम औरतो की दशा में कोई विशेष अंतर न था, दोनो की स्थिती समान थी। समाज में दोनो ही धर्मो की औरतों को दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता है क्योंकि पुरूष प्रधान समाज में नारी को सदैव पुरूष के पराधीन और गुलाम बनाकर उसपर अनेक प्रतिबंध लाद दिए है। ''औरते रखने में हिंदू भी पीछे नहीं थे। जैसे हरम बेगमों और कमीजों से भरे होते थे वैसे ही हवेलियों में भी पत्नी के साथ उपपत्नियों की कुछ कम नहीं रहती थी। कहने को वे ईट–गारा से बने घर थे पर औरतो के लिए बालू की दिवारों से बने वकलो से कम न थे। वे घर में भी बिकनेवाली मँहगी और सस्ती वस्तु से अधिक और कुछ न था।''[20]

6.4 बेरोजगारी की समस्या :

विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से भारत का दूसरा क्रमांक है। आज अनेक युवक शिक्षित बन रहे है। पर उन्हें रोजगार नहीं मिल रहा है। इसलिए बेरोजगारी की समस्या सामने आ रही है। आजादी के उनत्तर वर्ष बीत जाने के बाद भी हमारी शिक्षा रोजगार से नहीं जुड़ी है। तकनीकी शिक्षा को छोड़कर सामान्य शिक्षा का हमारा स्नातक क्लर्की के अलावा और किसी काम का नहीं रहता।

आज शैक्षणिक और शारीरिक शिक्षा देना आवश्यक है। हमारा युवक शैक्षणिक उपाधियाँ लेकर शारीरीक दृष्टि से कमजोर हो रहा है। उसे रोजगार नहीं मिल रहा है। शिक्षा व्यवस्था का एक दुखद पहलू यह है कि इसने हमारे छात्र–छात्राओं को शारीरिक श्रम को गलत दृष्टि से देखना सिखा दिया है। परिणामस्वरूप शिक्षित छात्र किसी ऐसे काम को करने ले कतराता है जिसमें उसे शारिरीक श्रम करना हो। ग्रामीण जन अक्सर यह शिकायत करते है उनके बच्चे पढ़–लिख जाने के बाद हल पर हाथ रखना अपनी तौहीन समझते हैं। किसान का बेटा पढ़–लिख जाने के बाद किसान नहीं बनना चाहता। यही बात दूसरे ग्राम शिल्पीयों के कामों पर भी लागू होती है । पढ़–लिख जाने के बाद बढ़ई का लड़का बढ़ई नहीं बनना चाहता, लुहार का लड़का लुहार नहीं बनना चाहता, कुम्हार का लड़का कुम्हार नहीं बनना चाहता, चमार का लड़का चमड़े का काम नहीं करना चाहता, बसोर का लड़का बांस का काम नहीं करना चाहता, जुलाहे का लड़का बुनने का काम नहीं करना चाहता। ये सब सरकारी नौकरी करना चाहते हैं । मतलब यह कि हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ने छात्रों को अपने परंपरागत धंधों से तो अलग कर दिया है पर किसी नये धंधे के योग्य भी नहीं बनाया है । स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था शिक्षित बेरोजगार तैयार कर रही है । देश में शिक्षित बेरोजगारों की बढ़ती भीड़ इसका जीता जागता प्रमाण है । इस संदर्भ में विवेक शर्मा का कहना है, ''हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने नये उद्योग के माध्यम से शिक्षा देने की बुनियादी शिक्षा योजना हमारे सामने इसलिए रखी थी कि हमारी शिक्षा व्यवस्था रोजगार से जुड़ सके। लेकिन हमारे अमीर नौकरशाही और धनी अभिभावकों ने इसे सफल नहीं होने दिया। क्योंकि वे अपने बच्चों से शारीरिक श्रम कराये जाने के विरोधी थे।''[21] ये लोग यह भूल गये कि अमरिका, फ्रांस, ब्रिटेन, जापान जैसे विकसित देशों में भी शारीरिक श्रम को देय दृष्टी से नहीं देखा जाता। ये देश अपने नागरिकों के शारीरिक श्रम का समुचित नियोजन करने के बाद ही विकसित हो सके है।

आज शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है कि एक आदर्श नागरिक तैयार करना। लेकिन लोग बुनियादी शिक्षा लेने से कतरा रहे हैं। लोग बुनियादी शिक्षा की इसलिए भी आलोचना करते है कि उसमें छात्र–छात्राओं को अपनी रूचि के अनुरूप उद्योग चुनने का अवसर नहीं था, लेकिन वे भूल गये कि यदि यह अवसर दिया जाता तो हमें हर शाला को एक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्था बनाना पड़ता जो हमारे सीमीत साधनों के कारण संभव नहीं था। इतना ही नहीं यदि हमें ऐसा कर भी पाते तो हमारी सामान्य शिक्षा पूरी तरह व्यावसायिक शिक्षा हो जाती। उसमें से सामान्य शिक्षा का अंश ही

समाप्त हो जाता जैसा कि हमारी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में है। यह स्थिति शिक्षा के हमारे उद्देश्य के विपरित होती। क्योंकि बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य मात्र उद्योग शिक्षा देना नहीं। उद्योग के माध्यम से सामान्य शिक्षा देना था। पर समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के पाठ्यक्रम को पढ़ाने की हमारी शालाओं और शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं में उचित कार्यान्वित हुए। फलत: उद्योग शिक्षा के अपेक्षित परिणाम श्रम की प्रतिष्ठा के संस्कार देना और कुटिर उद्योगों का व्यावहारिक ज्ञान देना हम नहीं प्राप्त कर सके।

वर्तमानकाल में युवकों को शैक्षणिक पदवी के साथ व्यावसायिक शिक्षा देना आवश्यक है। जिससे वह बेरोजगारी का सामना कर सके। आजादी के बाद हमारी शिक्षा को ग्रामीण क्षेत्रों से जोड़ने की आवश्यकता थी। सभी शालाओं में सभी ग्रामोद्योगों की शिक्षा देने के बजाय स्थानीय आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कुछ ग्रामद्योगों को सिखाने की व्यवस्था की जानी चाहिए थी। इस प्रकार शहरों में वहाँ की आवश्यकता के अनुरूप कुटीर उद्योगों, फैशन डिजाइनिंग, गारमेंट मेकिंग, स्टेनो–टायपिंग, स्क्रीन प्रिटिंग, फुड प्रिसर्वेशन, रेडिओ, टि.व्ही. रिपेयरिंग. फ्लावरी कल्चर, कम्प्यूटर का काम, प्लास्टिक वायर का काम, कागज के फूल–बेलें बनाने का काम, बिजली का काम, गुड़िया और खिलौने बनाने का काम आदि को सिखाने की व्यवस्था की जानी चाहिए थी। लेकिन हम ऐसा नहीं कर सके। फिर भी आज सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत मीना राजू मंच के माध्यम से उच्च प्राथमिक स्तर पर कौशलाधिष्टीत व्यावसायिक प्रशिक्षण और प्राथमिक स्वरूप का कौशलज्ञान देने का प्रयास हो रहा है लेकिन जितनी जागृति छात्रों के बीच और प्रशिक्षित शिक्षकों की बीच होनी चाहिए थी उतनी नहीं हुई है। जब कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में संबंधित कुटिर उद्योगों को धंधे के रूप में अपनाने वाले लोगों से समझौता करके, सहयोग लेकर, शासन इन उदयोगों को सिखाने, उनका व्यावहारिक ज्ञान देने की व्यवस्था शासकिय शालाओं में कर सकता था। इससे शासन उद्योग शिक्षक नियुक्त करने और कच्चा माल खरीदने तथा उससे संबंधित भौतिक संसाधन जुटाने की झंझटों से बच जाता।

आज सरकार को ठोस भूमिका निभानी है, जिससे छात्र का विकास हो सके इससे ही राष्ट्र महासत्ता की ओर बढ़ सकता है। उद्योग सिखाने वाले को शासन से कुछ राशी मिल जाती तथा बालश्रम से तैयार सामग्री भी बेचने हेतु मिल जाती। छात्र–छात्राओं को जीवन में काम आने वाली उपयोगी विद्या का ज्ञान हो जाता तथा उन्हें श्रम के संस्कार भी मिल जाते एवं संबंधित उदयोगों का भी विकास होता। फैक्ट्रियों या कारखानों से समझौता करके भी शासन छात्र–छात्राओं के लिए

सामान्य शिक्षा के साथ औदयोगिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था कर सकता है। शालाओं में सभी सामग्री तैयार करने के बजाय अलग–अलग शालाओं में भिन्न–भिन्न सामग्री तैयार कराई जाए। शालाएं रोलिंग फंड़ से कच्चा माल तथा भौतिक संसधानों की व्यवस्था करे तथा छात्र–छात्राओं को औदयोगिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी करें। इससे बच्चों द्वारा तैयार सामग्री शासन क्रय करके विभिन्न शालाओं और कार्यालयों में भेज कर शालाओं के रोलिंग फंड़ को यथावत बनाये रखने और बार–बार उपयोग में लाये जाने की स्थिति में रख सकता है।

आज शिक्षा समाजपयोगी होनी चाहिए। जिससे समस्या खत्म होकर समाज का विकास होना चाहिए। समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के रूप में शालाएं उपरोक्त सामग्री तैयार कराने की जिम्मेदारी निभा सकती है। शासन 'पढ़ो और कमाओ' योजना के अंतर्गत सफलतापूर्वक यह कार्य पहले कर चुका है। इस संदर्भ में गार्गीशरण गुप्ता का कहना है, ''जहाँ तक समाजोपयोगी उत्पादक कार्यों का संबंध है वह आज शालाओं के पाठ्यक्रम का अंग है। लेकिन उद्योग शिक्षक एवं रोलिंग फंड के अभाव में उद्योग प्रशिक्षण की व्यवस्था ठीक ढ़ंग से संचालित नहीं हो पा रही है। शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं में भी इसकी मात्र खानापूरी हो रही है।''[22] आज केन्द्र और राज्य सरकारें अपनी हायर सेकेन्डरी शालाओं में छात्र–छात्राओं को उद्योग शिक्षा देने के संबंध में गंभीरता से विचार करना चाहिए। इतना ही नहीं इस हेतु अपेक्षित रोलिंग फंड और उद्योग शिक्षकों की प्रत्येक शाला में समुचित व्यवस्था करे। यह बात भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि इस उद्योग शिक्षा की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक परीक्षा लेने की भी उचित व्यवस्था की जाने तथा छात्र–छात्राओं की अंक सूचियों में इसके अंकों के उल्लेख को आवश्यक माना जाये। इसके अभाव में शिक्षक और छात्र–छात्रा इस गंभीरता से नहीं ले रहे हैं। इन सब परिणाम से देश का युवक दिशाहीन होकर बेरोजगारी की खाई में डुब रहा है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में बेरोजगारी की समस्या नजर आती है। आज छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं किन्तु उन्हें रोजगार नहीं है इसलिए वे दिशाहीन हो गए हैं। राजनीतिक लोग चुनाव का फायदा उठाकर राजनीतिक षड्यंत्र कराते हैं। जिससे छात्र अपने कार्य को छोड़कर दिशाहीन होकर भटक जाते हैं। परिणामस्वरूप उनके जीवन में अनेक समस्याओं का निर्माण होता है। उनकी शिक्षा अच्छी तरह से पूरी नहीं होती है। इसलिए उन्हें रोजगार नहीं मिलता है। कहीं जगह पर सामाजिक कारण के परिणामस्वरूप शिक्षा नहीं ले पाते तो कहीं जगह पर आर्थिक कारण से शिक्षा

प्राप्त नहीं कर पाते। शिक्षा लेते भी है तो नौकरी मिलना मुश्किल हो जाता है। इस उपन्यास का नायक चंदन अधिक दृष्टि से हीन–दीन है। फिर भी शिक्षा प्राप्त करता है। लेकिन शिक्षा लेने के उपरान्त इंटरव्यू को जाने के लिए उनके पास पैसे नहीं है। वह अपने मित्रों से पैसे लेकर इंटरव्यू को जाता है। इसप्रकार बेरोजगारी की समस्या सामने आ रही है।

गिरीराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में बेरोजगारी की समस्या नजर आती है। इस उपन्यास के शिक्षा संस्थान में छात्रों के साथ भेदभाव किया जाता है। इस कारण कुछ छात्र पढ़ नहीं पाते हैं। कुछ छात्र शिक्षा छोड़कर चले जाते हैं । इस कारण उन्हें रोजगार मिलना मुश्किल हो जाता है । परिणामस्वरूप बेरोजगारी की समस्या सामने आ जाती है । इस उपन्यास का पात्र रामउजागर को कॉलेज से निकाला जाता है । वह कही का नहीं रहता है । उसके जीवन में अंधकार छा जाता है । अंत में वह विवश होकर आत्महत्या कर लेता है । इसप्रकार बेरोजगारी की समस्या दिखाई देती है ।

तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में बेरोजगारी की समस्या को उजागर किया है । इस उपन्यास में दिल्ली का वर्णन आ गया है । दिल्ली में कई जगह के कारण उनका जीवन नरकमय है । उन्हें अच्छा रोजगार नहीं मिलता है । मिलता भी है तो निचले स्तर का होता है । अनेक युवक बेरोजगारी में जुझ रहे हैं । इसलिए वह दिशाहीन हो गए हैं। जब गिरीशकुमार यह देखता है कि बेरोजगारी और गरीबी के कारण लोक बेहाल हैं। उनके लिए कुछ करने की इच्छा रखता है , पर कर नहीं पाता है । बेरोजगारी के कारण युवक गलत रास्ता अपना रहे है , परिणामस्वरूप समाज और राष्ट्र का नुकसान हो रहा है । इसप्रकार बेरोजगारी की समस्या सामने आ गई है ।

6.5 शिक्षा के लिए उचित परिवेश का अभाव :

आज शिक्षा क्षेत्र में उचित परिवेश का अभाव नजर आता है। बच्चों की शिक्षा के अनुकूल शैक्षिक परिवेश के साथ ही पारिवारिक, सामाजिक, राजकीय, आर्थिक, धार्मिक परिवेश की आवश्यकता होती है। आज के बच्चे कल के आदर्श नागरिक है। इसलिए उन्हें संस्कार और आदर्श ज्ञान देना जरूरी है। पंरपरा से शिक्षा क्षेत्र आदर्श था, लेकिन आज शिक्षा क्षेत्र में स्वार्थ, भ्रष्टाचार, अनैतिकता ने कहर कर दिया है। आजकल अध्यापकों की नौकरी पाने के लिए और पाई गई नौकरी को बनाए रखने के लिए अध्यापकों को काफी कुछ करना पड़ता है । अपमान सहना पड़ता है ,

बेगार ढ़ोनी पड़ती है, क्योंकि, प्रबन्धक, प्राचार्य, विभागाध्यक्ष सभी यह महसूस करते है कि अध्यापकों का भविष्य अपने हाथों में है। आज समाज में अनेक समस्याएँ एक साथ उभरकर सामने आ रही हैं। इसलिए युवा वर्ग में असन्तोष की भावना का आधिक्य है।

शिक्षा क्षेत्र में अराजकता फैलने से समाज दिशाहीन हो गया है। सब तरफ भ्रष्टाचार, स्वार्थांधता फैल रही है। परिणामस्वरूप आज युवा बेरोजगारी की खाई में गिर रहा है। शिक्षा क्षेत्र में राजनीतिक गंदगी फैलकर सबतरफ हाहाकार मचा है। इसप्रकार के वातावरण से उचित परिवेश अपेक्षा शिक्षा क्षेत्र में करना बेकार है। शिक्षा के प्रति असन्तोष सामाजिक मान्यताओं के प्रति असन्तोष, पुरानी पीढ़ी के प्रति असन्तोष, शासन के प्रति असन्तोष का प्रदर्शन आज का युवा–वर्ग विभिन्न आन्दोलनों के रूप में कर रहा है। आज देश की समस्याओं का रूप बदल गया है, किन्तु जिस क्रांति का छात्रों को आजादी के समय मिला, आज उसने अधिक बलपूर्वक अपनी भुजाओं में ग्रहण कर लिया है। उसी अस्त्र का प्रयोग आज वे अपनी माँगे मनवाने के लिए कर रहे हैं। सन् 1990 से आज तक असन्तोष बड़े उग्र रूप में प्रकट हुआ है। छात्र आन्दोलन छात्रों की मानसिक वृत्ति के प्रतीक होते हैं। छात्र–रोष उनके ज्ञानात्मक पहलू को व्यक्त करता है जबकि छात्र–आन्दोलन उनके क्रियात्मक पहलू को। छात्र आक्रोशित होते हैं और अपना रोष हड़ताल करके प्रदर्शित करते हैं। इन हड़तालों के कारण बहुत ही छोटे या छिछले प्रकार के भी होते हैं। बहुधा यह आन्दोलन अध्यापकों या राजनीतिज्ञों के उकसाने के कारण भी किये जाते हैं।

वर्तमानकाल में छात्रों को सही रूप से शिक्षा नहीं मिल रही है। परिणामस्वरूप छात्र दिशाहीन हो रहे हैं। शिक्षा प्रणाली में राजनीति ने प्रवेश करने अध्यापक अपने कार्य को छोड़कर राजनीति में अधिक रूचि रख रहे हैं। इस माहौल में छात्र भी समाज विघातक कार्य में अधिक रूचि ले रहे हैं। आज के समाज में प्राय: हमारे शिक्षा प्रणाली की आलोचना हो रही है कि वे छात्रों को वांछित शिक्षण देने में असमर्थ रहे हैं। आज की शिक्षा से छात्रों में न मानसिक और न ही नैतिक विकास होता है। छात्र किसी तरह रह कर अथवा नकल करके अथवा परीक्षकों को खुश करके डिग्री ले लेता है। छात्र पढ़ने में ध्यान नहीं देते हैं। समय समय पर हड़ताल, तोड़–फोड़ कर देते हैं तो अध्यापकों को अपनी गुटबन्दी से अवकाश ही नंही मिलता कि वे छात्रों को पढ़ा सके। वरिष्ठ छात्र का मुख्य उद्देश्य विद्यालयीन वातावरण से निकलकर महाविद्यालयीन वातावरण में प्रवेश करनेवाले नये छात्रों का मार्गदर्शन करना, उनके मनोबल को बढ़ाना और उनका मानसिक एवं शारीरिक विकास करना है।

इस संदर्भ में राकेश कुमार का कहना है, '' आज के कतिपय छात्रों का अधिक समय आवारा गर्दी करने में ही बीता जा रहा है। ''[23] छात्र–छात्राएँ कॉलेज में आते हैं। दौड़–धूप करके फार्म जमा होता है। महीने भर बाद फीस जमा होती है, तीन–चार महीने के चक्कर के बाद पढ़ाई के कमरे का पता लगाते हैं और तब तक इन पर कॉलेज की नई दुनिया का रंग चढ़ जाता है। पुरा साल कब खत्म हो जाता है, वह मालूम ही नहीं होता है। इसलिए शिक्षा क्षेत्र में उचित परिवेश की आवश्यकता है।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' में शिक्षा क्षेत्र और समाज में उचित परिवेश का अभाव नजर आता हैं। इस उपन्यास में नायक–चंदन अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दीन–हीन समाज के उत्थान के लिए करना चाहता है लेकिन समाज की पारंपारिक स्थिति उचित शिक्षा व्यवस्था का अभाव उनमें अडसर आ रहा है। तब वे कहते है कि, '' हाँ मैं अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दीन–हीन समाज के उत्थान के लिए करूँगा। मैं उन पीड़ित, शोषित और उपेक्षित लोगों को उपर उठाने के लिए काम करूँगा जो कीड़े–मकोड़े की तरह जीते हैं। शेष समाज जिनके साथ पशुवत व्यवहार करता है उनके पास नहीं बैठता, उनसे घृणा करता है। उन लोगों को शिक्षित करूँगा मैं। स्कूल खोलूँगा और इन गरीबों के रेत–मिट्टी में खेल रहे बच्चों को पढ़ाऊँगा। दूसरा तो उनको पढ़ाएगा कौन और पढ़ाएगा तो वही मेरी तरह सबसे पीछेवाले बेंच पर बैठाकर जहाँ से न तो ब्लॅक बोर्ड का लिखा ही ठीक ढंग से पढ़ने में आता है और नहीं अध्यापक का बोला ही कानों में पड़ता है। ऐसे में क्या पढ़ पाएंगे ये लोग और पढ़ेंगे नही तो जानेंगे कैसे देश–दुनिया को।''[24] इसप्रकार परिवेश उचित न होने के कारण समाज की स्थिति को बदल देने का दृढ निश्चय चंदन करता है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में शिक्षा क्षेत्र में उचित परिवेश का अभाव नजर आता है। इस उपन्यास का नायक चंदन मुम्बई के एक सरकारी कॉलेज में नौकरी पाता है। तब वह देखता है कि वहाँ का परिवेश पूरी तरह शिक्षा विरोधी है। वहाँ पर छात्र पढ़ाई में रूचि नहीं लेते हैं। वे सदैव गलत व्यवहार करते रहते हैं। अध्यापक पढ़ाने की अपेक्षा दूसरे कार्य में सदैव व्यस्त रहते हैं। पूरी तरह से परिवेश गंदा हो गया है। इस संदर्भ में डॉ. नीता पांढरीपांडे का कहना है कि, '''भ्रमभंग' का नायक चंदन मुम्बई के एक सरकारी कॉलेज में नौकरी प्राप्त करता है। लेकिन देखता है कि छात्रों को पढ़ाई में रूचि ही नहीं है । पाठ्यक्रम छात्रों को अपनी और आकृष्ट करने में असफल है। इसी कारण छात्र कक्षा में नहीं आते और आते भी हैं तो अध्यापक को तंग करते रहते हैं। कभी कुत्ते–बिल्ली

की आवाजें निकालते हैं, कभी टेप–रिकार्ड बजाते हैं, कभी सीटी बजाते हैं तो कभी घड़ी का अलार्म बजाते हैं। ऐसे वातावरण में चंदन जैसा प्रतिबद्ध अध्यापक निराश हो जाता है।''[25] इसप्रकार परिवेश पूरी तरह से दिशाहीन है। जहाँ हम अच्छे संस्कार पाने के लिए जाते है वहाँ पर ही परिवेश गंदा होने से समाज दिशाहीन हो रहा है।

मदन दीक्षित के 'मोरी की ईंट' उपन्यास में शिक्षा क्षेत्र में उचित परिवेश का अभाव नजर आता है। इस उपन्यास की नायिका मंगिया अपने बेटे सोहन को पढ़ाना चाहती है। लेकिन वह जहाँ रहती है उस गाँव के स्कूल का परिवेश उचित नहीं है। वहाँ पर अध्यापकों में जातियता दिखाई देती है। वह दलित वर्ग के छात्रों को स्कूल में प्रवेश नहीं देते है। वे शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में भी भेदभाव करते रहते है। इसलिए मंगिया अपने बेटे सोहन को मिशनरी स्कूल दाखिल करती है। इसप्रकार शिक्षा क्षेत्र में उचित परिवेश का अभाव नजर आता है।

चंद्रमोहन प्रधान के 'एकलव्य' उपन्यास में शिक्षा क्षेत्र में उचित परिवेश का अभााव नजर आता है। निषाद ग्रामवासी एकलव्य आचार्य द्रोण से धनुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। इसलिए वह आचार्य द्रोण को गुरु मानकर शिष्य बनना चाहता है। इसलिए वह हस्तिनापुर में आकर आचार्य द्रोण के सामने नतमस्तक होता है। वह अपनी इच्छा आचार्य द्रोण के सामने रखते हुए कहता है कि, 'बचपन से आपका शिष्य बनने की इच्छा है। इसलिए धनुर्विद्या सीखने के लिए अपने चरणों में स्थान दीजिए'। तब आचार्य द्रौण कहता है, '' तुम अपेक्षाकृत हीन कुल में उत्पन्न हुए हो। यहाँ पर कोई गुरुकुल नहीं है। मैं उच्च कुलस्थ लड़कों के साथ तुम्हे शिक्षा नहीं दे सकता और बात यह भी है कि तुम निषादवंशी होकर उन राजकुमारों के साथ कैसे सिख सकोंगे।''[26] इसप्रकार आचार्य द्रोण भेदभाव करते नजर आते हैं । अत: शिक्षा क्षेत्र में उचित का अभाव नजर आता है।

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' में शिक्षा क्षेत्र में उचित परिवेश का अभाव नजर आता हैं। जातिभेद का अनुभव दलित वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को कभी–न–कभी आता ही है। शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में ही यह समस्या परिलक्षित होती है। 'छप्पर' उपन्यास का नामक चंदन उच्च शिक्षा हेतु शहर जाता है। वहाँ सवर्ण छात्रों की भरमार होती है। परंतु वह स्वयं अकेला ही कुछ खोया और उलझा–सा रहता है। क्योंकि '' दलित होने के कारण उसके कालेज के सहपाठी उसे अपने साथ नहीं बैठने देते है।''[27] वहाँ का ऊँच–नीच और छुआछूत का जहर उचित परिवेश का अभाव के कारण चंदन का मन दु:खी अवश्य होता है। संविधान के अनुसार निम्नवर्ग को जितना संरक्षण देने का प्रयास हुआ है,

उतनी ही असुरक्षितता इस वर्ग को महसूस होती है। उर्पयुक्त साहित्यकारों के साहित्य में चित्रित परिवेश शिक्षा के प्रतिकुल है। परिवेश के अभाव में ग्रामीण प्रतिभासंपन्न युवक शिक्षा से वंचित है। जो उच्च शिक्षा के लिए शहर जाते है लेकिन शहरी वातावरण असुविधा के कारण दिशाहीन बनते है। इस प्रकार युवकों की शिक्षा में नित नई समस्या निर्माण होती है।

6.6 अवसरवादिता की प्रवृत्ति :

वर्तमानकाल में शिक्षा क्षेत्र में अवसरवादिता की प्रवृत्ति बढ़ रही है। राजनीतिक हस्तक्षेप और अध्यापकों की स्वार्थी, कामचोर मानसिकता से शिक्षा क्षेत्र में गंदगी फैली हुई है। हर एक अवसरवादिता को अपनाकर शिक्षा क्षेत्र को खोखला कर रहा है। 18 वीं एवं 19 वीं शताब्दी में जब देश में अंग्रेजी राज्य की स्थापना एवं प्रसार हुआ तब उन्हें भी भारतीय शिक्षा के विकास के प्रति अपने कर्तव्यों को स्वीकार करना पड़ा। आजादी के बाद राजनीतिज्ञ शैक्षिक मामलों में दखलन्दाजी कर रहे हैं। विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ती में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप रहता है जिससे कैम्पस का वातावरण अनिवार्य रूप से दूषित होता हैं। वर्तमान काल में शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सरकारी तौर पर छात्रवृत्ति एवं गरीब विदयार्थियों की फीस माफी की व्यवस्था की गयी है ताकि सभी छात्रों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्राप्त हो सकें। लेकिन कुछ स्वायत्त संस्थाएँ ऐसी हैं जो सरकार से पैसे प्राप्त कर उसका दुरूपयोग करने में पीछे नहीं हटती।

आज छात्र केंद्रित शिक्षा होनी चाहिए, लेकिन छात्र विकास के नामपर अवसरवादिता की प्रवृत्ति पनप रही है। जिससे समाज का नुकसान हो रहा है। आज सब तरफ भ्रष्टाचार फैला हुआ है। सब अपने दायित्व से मुखरकर स्वार्थ के पीछे दौड़ रहे है। परंपरा से आदर्श माननेवाला क्षेत्र वर्तमानकाल में आलोचना का विषय बन गया है। किस महाविद्यालय का प्रधानाचार्य यह नहीं जानता कि छात्रवृत्ति या फीस माफी करानेवालों में कई ऐसे छात्र होते हैं जो गरीब नहीं है या छात्रवृत्ति पाने के योग्य नहीं है। फिर भी उन्हें कमेटी की सिफारिश पर वजीफे प्राप्त हो जाते हैं तथा जो सचमुच इसके हकदार हैं वे अपने अधिकारों से वंचित रह जाते हैं। वर्तमान काल में शिक्षा प्रणाली में बहुत अन्तर आ गया है। आज न तो ये उदार शिक्षा केन्द्र हैं और न ही किसी व्यवसाय के लिए या किसी समाज सेवा के लिए हो, शिक्षा दी जाती है। आज वह ऐसी संस्था के रूप है जहाँ हजारों की संस्था में छात्र आते हैं। इस संदर्भ में वंदना सिंह का कहना है, ''किसी भी भाँति वे सिर्फ डिग्री प्राप्त करना

चाहते है। यहाँ न तो उन्हे नेतृत्व का प्रशिक्षण मिलता है और न ही उन्हें सत्व की खोज की ओर प्रोत्साहित किया जाता है।''[28] कक्षा में छात्रों की संस्था में वृद्धि, अध्यापकों की पढ़ाने में उदासीनता, बेरोजगारी, भेदभाव की नीति, दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, राजनीतिक हस्तक्षेप ऐसे अनेक कारण हैं जो छात्रों से सम्बन्धित हैं तथा उनकी समस्याओं के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान है। सन् 1990 से आज तक शिक्षा संस्थाओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

आज शिक्षा क्षेत्र में अवसरवादिता बढ़ने के कारण शिक्षा के बारें में समाज में उदासिनता बढ़ रही है। आज राजनीतिक हस्तक्षेप, बेरोजगारी, अध्यापकों का कर्तव्य से मुखरना, द्वेषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था से अनेक समस्याओं का निर्माण होना है। आज शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अधिक अध्यापकों की आवश्यकता है। छात्र समाज पर नियंत्रण करनेवाली अगर कोई शक्ति हो सकती है, तो वह है अध्यापक शक्ति! अध्यापकों का समाज ऐसा होना चाहिए जो केवल ज्ञानी न हो वरन् उसमें साहस, नेतृत्त्व, आत्मबल तथा तेजस्विता के गुण भी हों। ज्ञान के क्षेत्र में तो विचार वैभिन्य होता है क्योंकि विचार वैभिन्य से ही ज्ञान के नए आयाम खुलते हैं। वर्तमान परिवेश में आज का अध्यापक अपना सन्मान खो चुका हैं। अपने ऊपर आरोपित नैतिकता, प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक नेतृत्त्व की झूठी भावना, इज्जत के झूठे अहसास लेकर फिरनेवाला अध्यापक समकालीन समाज में प्रताड़ित हो रहा है। न तो वह अपनी समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष कर पा रहा है और न अपने अधिकारों को ही प्राप्त कर पा रहा है। इस संदर्भ में वंदना सिंह का कहना है, ''वस्तुत: आज के शिक्षा तंत्र पर वह अपने अधिकार एवं अधिपत्य को खो बैठा है। ऐसी स्थिती में उसके हृदय का क्षोभ और निखारा का ज्वालामुखी अपने सहयोगी साथियों पर ही फूट पड़ता है। अध्यापक छात्रों को एकता, मित्रता, सहयोग की भावना पर उपदेश देता है वही अध्यापक आज अपने साथ प्रशिक्षण में जुटे हुए अध्यापकों की निन्दा करता है।''[29] इसप्रकार शिक्षा प्रणाली में अवसरवादिता की प्रवृत्ति बढ़ने से दिशाहीन परिवेश निर्माण हो गया है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में अवसरवादिता की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इस उपन्यास में शिवानंद शर्मा स्कूल में पढ़ाते हैं। उन्होंने स्कूल के नजदीक ही मंदिर बनवा लिया था। वहाँ से वे दक्षिणा उठाते थे। साथ ही मंदिर में वे सवर्ण छात्रों का क्लास लेते थे। इसप्रकार हमें शिवानंद शर्मा अवसरवादी दिखाई देते हैं। उस मंदिर में सवर्ण छोड़कर अन्य लोग आने के लिए मना था। जब सुनीत और उसका मित्र हबीबुल्ला मंदिर देखने जाते हैं तब शिवानंद शर्मा क्रोधित हो

जाते है। वे कहते हैं , ''क्यों बे मुल्ला, मंदिर को क्या मस्जिद समझ रखा है। ''[30] इसप्रकार शिक्षा क्षेत्र के रक्षक ही अवसरवादिता की प्रवृत्ति को अपना रहे हैं। जिससे समाज पतन की ओर बढ़ रहा है और राष्ट्र का नुकसान हो रहा है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में अवसरवादिता की प्रवृत्ति नजर आती है। इस उपन्यास में मुम्बई के कॉलेज का वर्णन आ गया है। इस कॉलेज में अध्यापक अवसरवादी प्रवृत्ति को अपनाते हैं। पूरे कॉलेज का परिवेश बिगड गया है। ऐसे माहौल से प्रतिबद्ध अध्यापक निराश हो जाते हैं। वहाँ पर विभागाध्यक्ष मनमानी करते रहते हैं। उनकी शान राजा–महाराजाओं की तरह है। वे अपने ज्युनियर अध्यापकों का शोषण करते हैं। उन्हें बेगार ढ़ोना पड़ता है। वे कभी भाषण लिखकर देने के लिए कहते हैं तो कभी प्रुफ करने के लिए कहते हैं। उसका विरोध करने पर अन्याय और अपमान का सामना करना पड़ता है। जब कॉलेज के सिनियर अध्यापक, विभागाध्यक्ष, प्रधानाचार्य और संस्था चालक के चमचे बने रहोंगे तो आपको सन्मान मिल सकता है। सिर्फ आपको उनकी वाह–वाह करनी पड़ती है। इसप्रकार अवसरवादी प्रवृत्ति शिक्षा में पनप रही है।

गिरीराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में अवसरवादिता की प्रवृत्ति नजर आती है। राष्ट्रीय महत्त्व की इस शिक्षा–संस्थाओं में अवसरवादी प्रवृत्ति होना शर्मनाक है। इस उपन्यास के कानपुर के आई.आई.टी. के अधिकतर अध्यापकों में अवसरवादिता है। साथही उनमें जातियता और भेदाभेद कूट–कूटकर भरा हुआ है। इससे राष्ट्र का नुकसान हो रहा है। यह उपन्यास अमानवीय व्यवहार करनेवाले अध्यापकों के गिरेबान में झाँकने के लिए मजबूर करता है। ऐसे अध्यापक सवर्ण छात्रों को सहाय्यता करते हैं और अनुसुचित जाति के छात्र पर अन्याय करते हैं। इसलिए लेखक गिरीराज किशोर कहते हैं, ''अनुसूचित कोई जाति नहीं मानसिकता है। जिसे अभिजात वर्ग पर ढकेल देता है वह अनुसूचित हो जाता है।''[31] इसप्रकार अवसरवादी और घिनौनी मानसिकता का पर्दाफाश लेखक ने किया है।

6.7 शिक्षा माध्यम की समस्या :

प्राचीन काल से आज तक शिक्षा औपचारिक, अनौपचारिक, सहज अनुभूतियों के माध्यम से दी जा है। लेकिन आधुनिकीकरण पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण के कारण शिक्षा क्षेत्र में अनेक समस्याएँ फैली हुई है। आज सिर्फ डिग्रियाँ देने के लिए अनेक संस्थाएँ निर्माण हो गई है। अध्यापक

की शिक्षा क्षेत्र में रूचि नहीं है। राजनीतिक हस्तक्षेप, भ्रष्टाचार अवसरवादिता से अनेक समस्याओं का निर्माण हो गया है। अध्यापकों के बारें में समाज में अनेक भ्रम फैले हुए हैं। उनके बारें में धारणा है कि वे सन्तोषी एवं आदर्शवादी होते हैं। प्रशासकों, राजनीतिज्ञों से लेकर सामान्य जनता तक पूर्वग्रहों से ग्रस्त है जिनके कारण अध्यापकों की मूल समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं देता। वर्तमान काल में शिक्षा प्रणाली के रूप में बहुत अन्तर आ गया है। आज न उदार शिक्षा केन्द्र हैं और न किसी व्यवसाय के लिए या किसी समाज सेवा के लिए शिक्षा दी जाती है। यहाँ न तो उन्हें नेतृत्त्व का प्रशिक्षण मिलता है और न ही उन्हें सत्य की खोज की ओर प्रोत्साहित किया जाता है। कक्षा में छात्रों की संख्या में वृद्धि न ही उन्हे उनके व्यक्तित्व का प्रतिबिंब देकर व्यक्तिमत्व विकास किया जाता है। न ही उन्हे भविष्यवेधी बनाते। अध्यापकों की पढ़ाने में उदासीनता, बेरोजगारी, भेदभाव की नीति, दोषपूर्ण शिक्षा एवं परीक्षा प्रणाली, राजनीतिक हस्तक्षेप ऐसे अनेक कारण हैं जो छात्रों से सम्बन्धित है।

आज शिक्षा क्षेत्र सिर्फ आर्थिक आदान का माध्यम बन गया है। आज राजनीति से पूरा शिक्षा क्षेत्र गंदा हो गया है। आज अनेक जगह पर अयोग्य अध्यापकों की भरमार है। इससे छात्रों को सही रूप से मार्गदर्शन नहीं मिलता है। परिणामस्वरूप छात्र दिशाहीन हो जाते हैं। इससे उस छात्र का, परिवार का, समाज का और देश का नुकसान हो रहा है। इसलिए शिक्षा माध्यम की समस्या नष्ट करके समाज को सही राह दिखाने की आवश्यकता है। सन 1990 से आज तक शिक्षा संस्थाओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है। शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अधिक अध्यापकों की आवश्यकता है। आज विद्यालयों में बालकों की संख्या में वृद्धि हो गयी थी उन्हें नियंत्रण में रखना मुश्किल हो गया है। साथही पाठ्यक्रम में इतने विषयोंकी भरमार हो गयी कि अध्यापकों को छात्रों तक पहुँचाना मुश्किल हो गया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात परीक्षाओं पर अधिक बल दिए जाने के कारण शिक्षक छात्रों को परीक्षाओं के हेतु तैयार करनेवाले एजंट बन गए। अच्छे रिजल्ट लाना ही इनका उद्देश्य बन गया।

ज्ञान के क्षेत्र में तो विचार वैभिन्य होता ही है क्योंकि विचार वैभिन्य से ही ज्ञान के नये आयाम खुलते हैं। यदि कोई अपनी ही मत अंतिम मानकर बैठ जाए तो ज्ञान की गति ही अवरूद्ध हो जाएगी। शिक्षा के क्षेत्र में रहकर भी कुछ लोग इस तथ्य को भूल जाते हैं। इस संदर्भ में श्री निवास दीक्षित का कहना है, ''कई अध्यापक संकीर्ण हृदय और ईर्ष्यालु होते हैं जो अपनी अयोग्यता पर

परदा ड़ालने के लिए अध्ययनरत शिक्षकों के विरूध्द मोर्चा बाँधते हैं। इस गुट में वे सभी अध्यापक शामिल हो जाते हैं जिनकी पढ़ने–पढ़ाने में कोई आस्था नहीं होती। केवल गुटबाजी करना ही उनका काम होता है।''[32]

आज अनुशासनहीनता ने शिक्षा क्षेत्र कमजोर बनता जा रहा है। आज अनेक अयोग्य अध्यापक शिक्षा क्षेत्र में नजर आते हैं। आज शिक्षा क्षेत्र में दूषित मानसिकता नजर आती है। परिणामस्वरूप छात्र दिशाहीन हो गया है। इसकारण की समस्या से समाज का नुकसान हो रहा है। वर्तमान परिवेश में आज का अध्यापक अपना सन्मान खो चुका है। नैतिकता, प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक नेतृत्व की झूठी भावना, इज्जत के झूठे अहसास लेकर घुमनेवाला अध्यापक समकालीन समाज में प्रताड़ित हो रहा है। न तो वह अपनी समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष कर पा रहा है और न अपने अधिकारों को ही प्राप्त कर पा रहा है। ऐसी स्थिती में उसके हृदय का क्षोभ और निराशा का ज्वालामुखी अपने सहयोगी साथियों पर ही फूट पड़ता है। जो अध्यापक छात्रों को एकता, मित्रता, सहयोग की भावना पर उपदेश देता है वही अध्यापक आज अपने साथ प्रशिक्षण में जुटे हुए अध्यापकों की निन्दा करता है। हमारे देश के छात्रों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता आज अध्यापक वर्ग के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए सिरदर्द का कारण बन गयी है। आजादी के बाद देश में अनुशासनहीनता कम होने की अपेक्षा निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। इसप्रकार शिक्षा क्षेत्र में समस्याओं का जंजाल तैयार हो गया है।

शिक्षा क्षेत्र में औपचारिक शिक्षा के साथ–साथ समाज में घर परिवार में अनौपचारिक शिक्षा का माध्यम हो सकता है। कभी–कभी औपचारिक शिक्षा से भी अनौपचारिक शिक्षा का माध्यम संस्कारक्षम मूल्याधिष्टित अनुभूतियों द्वारा होता है। जिसका प्रभाव मानव समुदाय पर ज्यादा असरदायक बनाता है। भारतीय समाज की रूढ़ी, परंपराएँ, उसकी अपनी अमूल्य देन है। परंपराओं का जतन अनौपचारिक शिक्षा माध्यम से किया जाता है। आप–अपने, परस्पर संबंध सोचने–विचारने की पध्दति उनके किया व्यापर, उनकी मान्यताएँ एवं विश्वास उनकी रीति–नीतियों को सुयोग्य रखने का यथासंभव प्रयत्न अनौपचारिक माध्यम से होता हैं। जिसके माध्यम से सामाजिक चेतना का निर्माण होता है। जिसके कारण अपनी पारिवारिक और सामाजिक स्तरीयता सुधारने की चेतना जाग उठती है। अपना अस्तित्व दिखाने का प्रयास होता है। निम्नवर्ग समाज सदियों से पीड़ित है। उच्चवर्ण का प्रस्थापित वर्ग उसका निरंतर शोषण करता आया है। डॉ. अम्बेडकर जी से प्रेरणा पाकर

अब निम्नवर्ग का युवावर्ग उच्च शिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ हैं । शिक्षा ग्रहन करने पर अपने समाज को शोषण मुक्त करने का प्रयास युवा वर्ग करने लगा है। इसलिए 'छप्पर' उपन्यास का नायक चंदन शिक्षा के माध्यम से अपने भोलेभाले समाज की रखवाली का ठान लेता है। चंदन कहता है, ''मैं अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दीन–हीन समाज के उत्थान के लिए करूँगा जो कीड़े–मकोड़े की तरह जीते हैं। शेष समाज जिनके साथ पशुवत व्यवहार करता है, उनके पास नहीं बिठाता और उनसे घृणा करता है। पढ़–लिखकर हमारे समाज के लोग ऊपर नहीं उठेंगे तो हमें कौन पूछेगा। हम थोड़े से लोग चीख–चीखकर मर जायेंगे। कौन सुनेगा हमारी चीख को हमें समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लढ़ाई लड़नी है, जुल्म और शोषण के विरूध्द संघर्ष करना है। इस प्रकार उच्चवर्ण को उत्पीड़न से मुक्त करने के लिए शीक्षित होना और शिक्षा माध्यम से परिवर्तन ला सकते है।''[33]

चंद्रमोहन प्रधान के 'एकलव्य' उपन्यास में शिक्षा माध्यम की समस्या नजर आती है। भारत में परंपरा से मनुवादी प्रणाली को अपनाया गया है। परिणामस्वरूप शिक्षा क्षेत्र एक वर्ग तक सीमित रही है। परंपरा से शिक्षा प्रणाली पर ब्राह्मणवादी व्यवस्था का प्रभुत्व था। इसलिए अन्य वर्ग पर अन्याय होकर वे हाशिए पर ड़ाले गए थे। प्रस्तुत उपन्यास में भी निषाद ग्रामवासी क्षत्रिय एकलव्य आचार्य द्रोण से धनुर्विदया प्राप्त करना चाहता है। इसलिए वह हस्तिनापूर में आता है वह आचार्य द्रोण के सामने नतमस्तक होकर शिष्य बनने की इच्छा रखता है पर आचार्य द्रोण मनुवादी व्यवस्था के समर्थक थे। वे एकलव्य को शिष्य नहीं बनाते हैं। उसे जातियता के नामपर अपमानित करते हैं। आचार्य द्रोण के सिर्फ उच्च वर्ग के छात्रों को पढ़ाते हैं। इसप्रकार की समस्या शिक्षा माध्यम सामने आ रही है।

देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास में शिक्षा माध्यम की समस्या को उजागर किया है। हम जिसे शिक्षा व्यवस्था के गाड़ी पहिए कहते हैं, वह है– छात्र और अध्यापक आज अध्यापक अपने कर्तव्य से मुकर रहे हैं। वे अपना कर्तव्य भूलकर अन्य कार्यों में व्यस्त रहते हैं। परिणामस्वरूप गाड़ी का एक पहिया टुट गया है। उन्हें छात्रों से लेना–देना नहीं है। वे सिर्फ तनख्वाह लेते हैं। वे दूसरों पर अन्याय करना अपना अधिकार मानते हैं। छात्र भी दिशाहीन हो गए हैं। वे क्लास में नहीं बैठते हैं। बाहर सदैव घुमते रहते है। जो क्लास में बैठते हैं, वे अध्यापकों का मजाक उड़ाते रहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास का नायक चंदन इस परिवेश से तंग आ गया है। शिक्षा क्षेत्र में आज अनैतिकता ने कहर कर दिया है। इस उपन्यास की सुमन शाह इसका सार्थक उदाहरण है। वह जिस प्रकार से

कपड़े बदले जाते है, उसी प्रकार बॉयफ्रेंड बदलती रहती है। इस संदर्भ में डॉ. माधवी बागी कहती है, ''सुमन शाह सन्तानोत्पति के लिए अयोग्य है या वह मुक्त यौन सम्बन्धों की अनिवार्यता पर विश्वास रखती है।''[34] इसप्रकार आज शिक्षा माध्यम की समस्या सामने आ रही है।

गिरीराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में माध्यम की समस्या नजर आती है। इस उपन्यास में कानपुर के आई.आई. टी. का वर्णन है। इस उपन्यास से स्पष्ट होता है कि इन राष्ट्रीय महत्त्व रखनेवाले शिक्षा संस्थाओं भेदभाव किया जाता है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है। शिक्षा क्षेत्र पवित्र माना जाता है। ऐसे क्षेत्र में असमानता, भेदभाव होना शर्मनाक बात है। लेकिन वास्तविकता यह है कि वहा पर खुलेआम अन्याय अध्यापक और प्रशासन कर रहा है। जिसके शिकार दलित छात्र हो रहे हैं। इस उपन्यास के राम उजागर अनुकूल और निलम्मा आदि पात्र इसके शिकार है। इसप्रकार शिक्षा माध्यम की समस्या सामने आ रही है।

6.8 जातीयता की समस्या :

जातीयता भारत का कलंक है। परंपरा से मनुष्य के साथ मनुष्य जैसा व्यवहार न होकर अमानवीयता का भयानक रूप देखा गया। देश आजाद होने के उपरांत भी यह बीमारी मौजूद है। शिक्षा क्षेत्र भी इससे अछूता न रहा है। आजादी के उपरान्त भारत सरकार ने शिक्षा की जो योजना बनाई जिससे अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्रों में शिक्षा के प्रति जागृति हुई है।

परंपरा से शिक्षा व्यवस्था में जातीयता को बरकरार रखने का प्रयास मनुवादी व्यवस्था ने किया है। आज भी शिक्षा प्रणाली में जातीयता दिखाई देती है। जिससे अध्यापक और छात्रों पर अन्याय हो रहा है। वर्तमानकाल में शिक्षा के प्रति सजगता दिखाई देती है, जिस कारण कॉलेजों एवं विश्वविदयालयों में छात्र–छात्राओं की संख्या में भी बहुत वृद्धि हुई है। शिक्षा प्राप्ति हेतु आज कई छात्र–छात्राएँ छात्रावास में रहतें हैं। यदि छात्रावास का वातावरण दूषित है तो उसके कारण उन्हें कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। दलित परंपरा से जातियता की समस्या से जुझ रहे हैं। आज साहित्यकार दलित जीवन की वास्तविकता को यथार्थ रूप से चित्रित कर रहे हैं। वे भोगा हुआ यथार्थ को आत्मानुभूति, सहानुभूति से समाज के सामने ला रहे हैं।

आज साहित्यकार भी शिक्षा व्यवस्था की विसंगतियों को चित्रित कर रहे हैं। साथही उन्हें दिशा देकर न्याय देने का प्रयास कर रहे हैं। आज दलित शिक्षित बनकर सामाजिक समता की ओर

बढ़ रहा है। आज साहित्यकार भी स्वतंत्रता, समता, बंधुता एवं न्याय को आधार बनाकर साहित्य का सृजन कर रहे हैं। वे परंपरागत मानसिकता एवं प्रवृत्ति पर कठोर प्रहार कर रहे हैं। इस संदर्भ में मैथ्यू अर्नाल्ड का कहना है, ''साहित्य को समसामयिक समाज को प्रतिबिंबित करनेवाली शक्ति के बजाय प्रत्यावर्तित करनेवाली वस्तुत समझना अधिक समीचीन है। साहित्य, समाज जीवन को प्रतिबिंबित करनेवाला आईना हैं। इतना ही नहीं जीवन को सार्थक बनानेवाला पूरक तत्व भी होता है।''[35] इसप्रकार साहित्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्य में हम मानव जीवन के अंग को देख सकते हैं। परम्परा से मनुवादी व्यवस्था ने शिक्षा के साथ–साथ पानी पीने का अधिकार तक छीन लिया था। लेकिन म. फुले, राजर्षि शाहू और डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने दलितों को समान अधिकार की पैरवी की। उन्हें शिक्षित बनने का संदेश दिया। परिणामस्वरूप दलित शिक्षित बनकर सामाजिक परिवर्तन की राह पर चलने लगे। उन्होंने शिक्षित बनकर संगठित होकर अन्याय का विरोध करके अधिकार के लिए संघर्ष करके न्याय माँग रहे है। यह परिवर्तन होने के पीछे शिक्षा ही है।

आज दलित शिक्षित बनकर संगठित होकर संघर्ष कर रहे हैं। साहित्यकार साहित्य के माध्यम से क्रांति निर्माण कर रहे हैं। शिक्षा ही परिवर्तन का शस्त्र है। आज दलित समाज शिक्षित बनकर अन्याय का विरोध कर रहा है । शिक्षा के माध्यम से उनके जीवन में बदलाव आ गया है। वे विकास की राह पर चल रहे है। शिक्षा से उनके जीवन में परिवर्तन आ गया है। इस संदर्भ में विकास विधाते का कहना हैं, ''शिक्षा से ही दलितों के जीवन में रोशनी आ सकती है। यह बात अब इस समाज ने स्वीकार की है।''[36] इसप्रकार शिक्षा ही दलितों का शस्त्र है। इसके माध्यम से वे जातियता की समस्या मिटाने का प्रयास कर रहे है।

मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त जातियता की समस्या दिखाई देती है। जातियता देश को लगा कलंक है। शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में जातियता का प्रयोग होना शर्मनाक है। इस उपन्यास के अध्यापक पाण्डे जातियता को अपनाते हैं। वे दलित छात्रों पर अन्याय करते हैं। सुनीत मिरिट के आधार पर स्कॉलरशिप का फार्म भरना चाहता है। लेकिन अध्यापक पाण्डेय उसका विरोध करते हैं। वह कहता हैं कि तुमको जाति की स्कॉलरशिप है तो वह क्यों नहीं भरते हो? इसप्रकार वे अन्याय करके जातियता का प्रयोग करते हैं। लेखक मोहनदास नैमिशराय के शब्दों में, ''सुनीत मेरिट के आधार पर स्कॉलरशिप के लिए फॉर्म भरना चाहता है। फार्म पर कक्षा–अध्यापक के हस्ताक्षर चाहिए थे। लेकिन पिछड़ी जाति का सुनीत स्कॉलरशिप फार्म

भरने पर पाण्डे उखड़ जाता था। उसे यह पसंद नहीं था कि सुनीत मैरिट के आधार पर स्कॉलरशिप का फॉर्म भरें। थोड़ी–सी नाराजगी के स्वर में वे बोले मेरी समझने यह नहीं आ रहा है कि जब सरकार ने तुम लोगों के लिए अलग से स्कॉलरशिप देने की योजना बनाई है, तो तुम वहीं फार्म क्यों नहीं भर रहे हो? उन्हें इस बात का एतराज था कि जाति के आधार पर स्कॉलरशिप का फार्म न भरकर योग्यता के आधारपर भरें। वह सुनीत के फार्म पर हस्ताक्षर करने को टाल रहा था।''[37] इसप्रकार शिक्षा क्षेत्र में जातियता की समस्या दिखाई देती है।

चंद्रमोहन प्रधान के 'एकलव्य' उपन्यास में शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त जातियता की समस्या दिखाई देती है। निषाद ग्रामवासी एकलव्य धनुर्विद्या प्राप्त करना चाहता है। इसलिए वह हस्तिनापूर आता है। वहाँ पर आचार्य द्रोण के पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट करता है। लेकिन शिक्षा क्षेत्र अधिकार रखनेवाले आचार्य द्रोण वह स्वीकार नहीं करते है। क्योंकि एकलव्य निम्नवर्ग से है और आचार्य द्रोण सिर्फ उच्च वर्ग के छात्रों को शिक्षा देते थे। आचार्य द्रोण एकलव्य को कहते हैं, '' तुम अपेक्षाकृतहीन कुल में उत्पन्न हुए हा। यहाँ पर कोई गुरूकुल नहीं है। मैं उच्च कुलस्थ लड़कों के साथ तुम्हें शिक्षा नहीं दे सकता और बात यह भी है कि तुम निषादवंशी होकर उन राजकुमारों के साथ कैसे सीख सकोगे।''[38] इसप्रकार हमें शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त जातियता नजर आती है।

मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखित 'मुक्तिपर्व' उपन्यास जातियता की समस्या नजर आती है। डॉ. अम्बेडकर ने ही गुलामी का अहसास कराया था। और उससे मुक्ति का भी रास्ता सुझाया था कि शिक्षा के बिना दलितों की मुक्ति असंभव होगी। आर्य–समाजी रामलाल के मुँह से ही बंसी ने पहली बार डॉ. अम्बेडकर का नाम सुना था। बन्सी तुम्हें पता है, डॉ. अम्बेडकर और गांधीजी में क्यों बार–बार तकरार होती थी, ''क्यों भला'' उत्तर सुनने की उत्सुकता में पूछा उसने, ''तो सुनो तकरार का मुख्य कारण यह था कि गांधीजी कभी यह नहीं चाहते थे कि अम्बेडकर यह सिद्ध कर पाएँ कि वे ही दलितों के नेता है। 'ऐसा क्यों चाहते थे गांधीजी?''' इसलिए कि सवणों में कोई नहीं चाहता कि किसी भी क्षेत्र में नेतृत्व उनके हाथ से चला जाए। गांधीजी महान हैं, ये ठीक है, पर अम्बेडकर भी तो महान थे। फिर वे आगे की पंक्ति के नेता क्यों नहीं कहला सकते थे। आगे की पंक्ति में हमेशा सवर्ण–समाज की नेता ही क्यो रहे? यह बात तो राज की है। इसे कोई बताना नहीं चाहता। इसे कूटनीती भी कह सकते है। तुम और रणनीति भी। यह सुनकर बन्सी गंभीरता से सोचने लगता हैं। उसे जैसे गहरे पानी में से आज कोई रहस्य का सूत्र मिला था। वह मन ही मन सोचने

लगता है। क्या गांधीजी भी इतने बड़े कूटनीतिज्ञ हो सकते हैं।''[39] इस प्रकार राजनीति में भी जातीयता नजर आती है।

गिरीराज किशोर द्वारा लिखित 'परिशिष्ट' उपन्यास में जातीयता की समस्या नजर आती है। इस उपन्यास में अनुसूचित जाति के छात्रों के संदर्भ में कानपुर के आई.आई.टी. की त्रासदी का अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास से स्पष्ट होता है कि इन संस्थानों में निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के छात्रों के बीच मतभेद को दर्शाया हैं। जो इस उपन्यास के रूप में प्रस्तुत हुआ है। आज राष्ट्रीय स्तर पर ऊँच–नीच और छुआछूत का विष फैला हुआ दिखाई देता हैं। आरक्षणवादी नीतियाँ समानता के लिए अपनाई गई हैं। फिर भी आज मनुवादी मानसिकता अमानवीय व्यवहार कर रही है, जो उन्हें उनके गिरेबान में झाँकने के लिए मजबूर करती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय दलित वर्ग की तमाम त्रासदी को रेखांकित किया है। लेखक गिरीराज किशोर कहते है, ''अनुसूचित कोई जाति नहीं, मानसिकता है। जिसे अभिजात वर्ग परे ढ़केल देता है, वह अनुसूचित हो जाता है।''[40] इसप्रकार शिक्षा क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण संस्था कानपुर के आई.आई.टी. में जातियता दिखाई देती है।

निष्कर्ष :

हिंदी उपन्यासों में शिक्षा क्षेत्र के संदर्भ में अध्ययन करने पर अनेक समस्याएँ सामने आ जाती है। आज शिक्षा जगत में भ्रष्टाचार ने हाहाकार मचा दिया है। रामधारीसिंह दिवाकर का 'आग पानी आकाश' तेजिंदर का 'उस शहर तक' और देवेश ठाकुर का 'भ्रमभंग' उपन्यास में भ्रष्टाचार की समस्या दिखाई देती है। 'भ्रमभंग' उपन्यास से स्पष्ट होता है कि कॉलेज के अध्यापक कामचोर और भ्रष्ट हैं। विभागाध्यक्ष ज्यूनिअर अध्यापकों का शोषण करके भ्रष्टाचारी वृत्ति दर्शाते हैं। आज भारत शिक्षा क्षेत्र में पिछड़ने का कारण गरीबी है। गरीबी के कारण अधिकतर छात्र स्कूल नहीं जा पाते हैं। जो स्कूल जाते हैं, वे आर्थिक विपन्नता के कारण शिक्षा बीच में छोड़ते हैं। जो शिक्षा प्राप्त करते हैं उन्हें अधिक संघर्ष करना पड़ता है। देवेश ठाकुर का 'भ्रमभंग', मदन दीक्षित का 'मोरी की ईट ' और मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व' आदि उपन्यासों से गरीबी की समस्या सामने आ जाती है। गरीबी के कारण 'मुक्तिपर्व' का नायक सुनीत लैम्प पोस्ट के लाईट में अध्ययन करता है। 'मोरी की ईट ' उपन्यास का सोहन गरीबी के कारण मुफ्त में मिलनेवाले मिशनरी स्कूल में पढ़ता है। 'भ्रमभंग' उपन्यास का चंदन पढ़ाई के साथ रोजगार करता है, क्योंकि उस पर ही पूरे परिवार की

जिम्मेदारी है। आज शिक्षा क्षेत्र में मूल्यहीनता ने कहर किया है। आज शिक्षा क्षेत्र में भ्रष्टाचार, अनैतिकता को बढ़ावा मिल रहा है। अपने स्वार्थ के लिए अनेक नए–नए षड़यंत्र रचाकर अमानवीयता का परिचय दे रहे है। 'एकलव्य' उपन्यास के आचार्य द्रोण 'परिशिष्ट' उपन्यास के अध्यापक 'भ्रमभंग' उपन्यास के विभागाध्यक्ष आदि में मूल्यहीनता नजर आती है।

हिंदी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों से बेरोजगारी की समस्या को उजागर किया है। आज शिक्षा क्षेत्र में और समाज में सुधार होने से छात्र पढ़ाई कर रहे है। लेकिन उनके सामने बेरोजगारी की समस्या सामने आ रही है। बेरोजगारी को रोकने को सरकार नाकाम रही है। इससे समाज दिशाहीन हो गया है। 'भ्रमभंग', 'उस शहर तक', 'परिशिष्ट' आदि उपन्यासों से बेरोजगारी की समस्या सामने आ गई है। 'भ्रमभंग' उपन्यास का नायक चंदन एम.ए. उत्तीर्ण है। लेकिन उसे रोजगार नहीं है। इसलिए उसे दर–दर की ठोकर खाने पड़ते हैं। मुम्बई को इंटरव्यू को जाने के लिए उसके पास पैसे नहीं है। वह मित्रों से पैसे लेकर मुम्बई चला जाता है। वहाँ पर उसे टेम्परारी नौकरी मिलती है। उसका और परिवार का खर्चा पूरा नहीं होता है। आज छात्र और अध्यापकों में भ्रष्टाचार अनैतिकता फैल रही है। जिससे पूरा परिवेश गंदा हो गया है और शिक्षा क्षेत्र दिशाहीन हो गया है। 'एकलव्य', 'मोरी की ईंट' और 'भ्रमभंग' उपन्यास में हमें उचित परिवेश का अभाव नजर आता है। आज शिक्षा क्षेत्र में अवसरवादिता की प्रवृत्ति पनप रही है। इसकारण शिक्षा क्षेत्र अपना सन्मान खो चुका है। आज अध्यापक सिर्फ स्वार्थ, भ्रष्टाचार और अनैतिकता को अपना रहे है। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का शिवानंद शर्मा, 'भ्रमभंग' उपन्यास के विभागाध्यक्ष और 'परिशिष्ट' उपन्यास के अध्यापक इसके प्रमाण हैं। साथ ही आज शिक्षा माध्यम की समस्या सामने आ रही है। आज शिक्षा क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या जातियता है। आज जातियता के कारण शिक्षा क्षेत्र का ही नहीं बल्कि राष्ट्र का नुकसान हो रहा हैं। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का अध्यापक पाण्डे, 'एकलव्य' उपन्यास के आचार्य द्रोण और 'परिशिष्ट' उपन्यास के अध्यापक जातियता को अपनाकर भेदभाव करते है। इसप्रकार आज शिक्षा क्षेत्र में अनेक समस्या सामने आ रही है। फिर भी कुछ अच्छे अध्यापक अपने क्षेत्र में ज्ञानार्जन के साथ–साथ व्यक्तिमत्व विकास होने के दृष्टि से काम कर रहे हैं।

संदर्भ संकेत

1 . सुभाष शर्मा, भारत में शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2010, पृ.क्र. 121

2. वहीं, पृ. क्र. 125

3. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 143

4. वहीं, पृ. क्र. 125

5. दीक्षित मदन, 'मोरी की ईंट', शब्दाकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1996, पृ. क्र. 87

6. दिवाकर रामधारीसिंह, आग पानी आकाश, नैशनल पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, प्र. सं. 1999, पृ. क्र. 124

7. तेजिंदर के 'उस शहर तक', ज्ञान भारती प्रकाशन, प्र.सं. 1997, पृ.क्र. 40

8. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 95

9. कीर धनंजय, महात्मा ज्योतीराव फुले, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, द्वितीय संस्करण, 1968, पृ.क्र. 189

10. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 172

11. वहीं, पृ. क्र. 171

12. दीक्षित मदन, 'मोरी की ईंट', शब्दाकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1996, पृ. क्र. 99

13. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 63

14. वहीं, पृ. क्र. 17

15. डॉ. प्रदीप वंदना, देवेश ठाकुर के उपन्यासों में चरित्र–शिल्प, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2008, पृ.क्र. 31

16. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 110
17. प्रधान चंद्रमोहन, एकलव्य, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1997, पृ. क्र. 187
18. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 70
19. कर्दम जयप्रकाश, 'छप्पर', संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं:1994,पृ.क्र.
20. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र. 20
21. शर्मा विवेक, महात्मा गांधी और शिक्षा प्रणाली, ज्ञानभारती प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 2003, पृ. क्र. 83
22. डॉ. गुप्ता गार्गीशरण, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2003, पृ.क्र. 74
23. कुमार राकेश, वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2009, पृ. क्र. 113
24. कर्दम जयप्रकाश, 'छप्पर', संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं:1994,पृ.क्र.
25. डॉ. पांढरीपांडे नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009, पृ.क्र. 95
26. प्रधान चंद्रमोहन, एकलव्य, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1997, पृ. क्र. 120
27. कर्दम जयप्रकाश, 'छप्पर', संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं:1994,पृ.क्र.
28. सिंह वंदना, भारतीय शिक्षा प्रणाली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2007, पृ. क्र. 111
29. वहीं, पृ. क्र. 273
30. नैमिशराय मोहनदास, मुक्तिपर्व, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002, पृ.क्र.
31. गिरिराज किशोर, 'परिशिष्ट', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1998, पृ.क्र.
32. दीक्षित श्रीनिवास, भारतीय शिक्षा प्रणाली में समस्याएँ, अनुराग प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2003, पृ.क्र. 13
33. कर्दम जयप्रकाश, 'छप्पर', संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं:1994,पृ.क्र.

34. डॉ. बागी माधवी, देवेश ठाकुर के उपन्यासों में नारी, विदया प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2001, पृ.क्र. 49

35. संपा. डॉ. थॉमस पी. एस., मध्यमवर्ग और सामाजिक उपन्यास, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1999, पृ.क्र. 44

36. विधाते विकास, मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में विद्रोह, ए. बी. एस. पल्बिकेशन, वाराणसी, प्र. सं. 2013, पृ. क्र. 38

37. नैमिशराय मोहनदास, 'मुक्तिपर्व', अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2002, पृ.क्र. 163

38. प्रधान चंद्रमोहन, एकलव्य, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1997, पृ. क्र. 120

39. नैमिशराय मोहनदास, 'मुक्तिपर्व', अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2002, पृ.क्र.69

40. किशोर गिरिराज, परिशिष्ट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1998, मुखपृष्ठ से उद्धृत

उपसंहार

उपसंहार

शिक्षा से तात्पर्य है कि मानव का सर्वांगीण विकास। परंपरा से आज तक मनुष्य के जीवन में परिवर्तन, विकास होने के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण साधन है। शिक्षा के बिना मानव जीवन की प्रगति नहीं हो सकती है। शिक्षा से मानव का चरित्र निर्माण होता है। शिक्षा से मनुष्य के अंतर्गत शक्ति का विकास होता है। इससे राष्ट्रीयत्व, विश्वबंधुत्व एवं मानवतावादी विचार निर्माण होते हैं। शिक्षा से मनुष्य में ज्ञानात्मक, व्यवहारगत, क्रियात्मक एवं भावात्मक परिवर्तन आता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली की एक परंपरा है। इसमें धार्मिक शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। धर्म हमें सही एवं गलत धारणाओं की जानकारी देता है। मानव जीवन को नियंत्रण में रखने के लिए धार्मिक शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय शिक्षा एवं समाज व्यवस्था 'अर्थ' पर निर्भर है। आज शिक्षा का उद्‌देश्य आर्थिक स्थैर्य प्राप्त करना माना जाता है। किसी देश के शिक्षा की जड़े जितनी मजबूत है, उतना ही उस देश की सामाजिक स्थिति में विकास होता है। शिक्षा के माध्यम से उसकी सामाजिक विरासत, संस्कृति मानव को प्रदान की जाती है। प्रत्येक मानव समूह में परंपरा के विकास के परिणामस्वरूप संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता है। यह संस्कृति प्रत्येक पीढ़ी द्वारा नई पीढ़ी को शिक्षा से प्रदान की जाती है। जब मानव शिक्षा प्राप्त करता है, तब भौतिक ज्ञान के साथ–साथ आध्यात्मिक ज्ञान को भी प्राप्त करता है। आध्यात्मिक शिक्षा के अंतर्गत आत्मा, शरीर, बुद्‌धि एवं मन पर विचार करके संस्कार ग्रहण करता है। कहना गलत नहीं है कि शिक्षा का मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आज हिंदी के अनेक उपन्यासकार शिक्षा प्रणाली पर कलम उठा रहे हैं। देवेश ठाकुर द्‌वारा लिखित 'भ्रमभंग' उपन्यास में शिक्षा संस्थाओं की दयनीय स्थिति को उजागर किया है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक चंदन पारिवारिक दायित्व निभाते हुए संघर्ष करके अध्यापन का कार्य करता है। जो युवा पीढी के लिए प्रेरणादायी है। इस उपन्यास से शिक्षा व्यवस्था के शोषण और स्वार्थ की बुनियाद को उजागर किया है। ऐसी व्यवस्था से चंदन जैसे युवकों का भ्रमभंग होता है। इस उपन्यास से शिक्षा जगत की भ्रष्ट, स्वार्थी, आत्मकेंद्रीत एवं अवसरवादी मानसिकता को स्पष्ट किया है। जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में परंपरागत शिक्षा व्यवस्था की पोल खोल दी है। इस

उपन्यास का नायक चंदन अनेक संघर्षों के बावजूद शिक्षा प्राप्त करता है। वह शिक्षित बनकर गरीब जनता में जागृति लाना चाहता है। वह लोगों को अज्ञान, अशिक्षा एवं अंधविश्वास से दूर रहने की सलाह देकर शिक्षित बनकर उन्नति करने का संदेश देता है।

मदन दीक्षित द्वारा लिखित 'मोरी की ईंट' उपन्यास में जैकब और फ्लोरा में मानवतावादी गुण नजर आते हैं। वह सोहम जैसे गरीब परिवार से आने वाले छात्रों को पढ़ाते हैं। वह छात्रों को अपने बेटे की तरह पालते हैं। वे शिक्षा के माध्यम से छात्रों के जीवन में आनंद के रंग भर देते हैं। चंद्रमोहन प्रधान द्वारा लिखित 'एकलव्य' उपन्यास में रुढ़ी, प्रथा, परंपरा का विरोध करके परंपरागत शिक्षा व्यवस्था पर करारा व्यंग्य कसा है। इस उपन्यास में शिक्षा का महत्त्व, स्वअध्ययन का महत्त्व आदि को प्राथमिकता देकर परंपरागत भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर करारी चोट की गई है। अन्यायी आचार्य द्रोण द्वारा गुरू दक्षिणा के रुप में अँगुठे की मांग करके एकलव्य को शोषण का शिकार बनाया जाता है। इसप्रकार लेखक ने परंपरागत शिक्षा व्यवस्था की पोल खोलने का काम किया है। तेजिंदर कृत 'उस शहर तक' उपन्यास में एक उच्च शिक्षित युवक की पीड़ा को वाणी मिली है। इस उपन्यास का नायक गिरीशकुमार शिक्षित बनकर परिवर्तन की राह पर चल रहा है। वह परंपरागत जीवन को नकारकर विकास की राह पर आगे बढ़ रहा है। लेखक ने शिक्षा के माध्यम से समाज में परिवर्तन दिखाया है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर राजनीति का बहुत गहरा प्रभाव दिखाई देता है। कॉलेज–विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे और राजनीतिक गतिविधियों से जुड़े नवयुवकों की बहुत–सी गतिविधियों को उपन्यासकारों ने अभिव्यक्त किया है। गिरीराज किशोर का 'परिशिष्ट' उपन्यास इसकी पहल करता है। आज शिक्षा जगत में अनुचित मानसिकता के कारण व्यक्ति उच्च पद पर विराजमान है। उच्च पद पर बैठे लोग अपनी जात–बिरादरी के लोगों का समर्थन करके योग्य व्यक्तियों पर अन्याय करते हैं। इस उपन्यास में अनुसूचित जाति के छात्रों की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। उच्च शिक्षा प्रदान करने वाली महान शिक्षा संस्थानों में हो रहे दुर्व्यवहार को लेखक ने उद्घाटित किया है। इस जातीय मानसिकता के कारण निम्नवर्ग के छात्रों का नुकसान हो रहा है। सत्यप्रकाश के 'जस तस भई सवेर' उपन्यास का शिवदास उच्च शिक्षित है। वह अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है। वह शिक्षा के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाना चाहता है।

रामधारी सिंह दिवाकर कृत 'आग,पानी,आकाश' उपन्यास में आजादी के उपरांत बदलते सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थिति, आधुनिकीकरण, शिक्षा आदि को प्रधानता दी है। 'शिक्षा

का अधिकार' आजादी के बाद सभी को प्राप्त होने से विकासोन्मुख नीतियों से समाज में परिवर्तन हो रहा है। इस उपन्यास से भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार, गलत राजनीति, बेरोजगारी एवं शिक्षा के महत्त्व पर बल दिया गया हैं। मोहनदास नैमिशराय लिखित 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में डॉ. अम्बेडकर के 'शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो' के मूलमंत्र को दर्शाया है। लेखक ने परंपरागत शिक्षा प्रणाली के प्रति विद्रोह करके समतावादी विचार लाने का कार्य किया है। सुनीत इस विचारधारा की पहल करता है। वह अनेक संघर्षों के बावजूद शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक बनता है और समाज में परिवर्तनवादी विचार प्रवाहित करने का प्रयास करता है। इन उपन्यासकारों ने विषमतावादी शिक्षा प्रणाली को नकारकर आधुनिक एवं समतावादी शिक्षा प्रणाली की पहल की है। वे शिक्षा प्रणाली की समस्याओं पर गौर करके समाधान ढूँढ रहे हैं। वे अपनी लेखनी से शिक्षा प्रणाली और समाज को सही दिशा देने का प्रयास कर रहे हैं।

हिंदी उपन्यासकारों ने शिक्षा प्रणाली के सभी अंगों पर अपने विचार रखे हैं। भारत में परंपरागत शिक्षा प्रणाली उच्च वर्ग तक सिमित थी। जिससे कुछ वर्ग शिक्षा प्राप्त कर सकते थे और अधिकत्तर लोग यानि निम्न वर्ग शिक्षा से दूर था। उनको शिक्षा के द्वार बंद थे। उनके जीवन में सिर्फ गुलामी थी। इसका चित्रण उपन्यासकारों ने किया है। 'एकलव्य' उपन्यास इस मानसिकता की पहल करता है। इसमें परंपरागत शिक्षा प्रणाली को अपनाया है । परंपरागत शिक्षा प्रणाली को अपनानेवाले आचार्य द्रोण एकलव्य को शिक्षा से दूर रखते हैं। सिर्फ हीन कुल में उत्पन्न होने से परंपरागत व्यवस्था एकलव्य को अधिकारों से दूर रखती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में अनेक परिवर्तन आ गए हैं। उसमें परंपरागत शिक्षा प्रणाली को नकारकर आधुनिकता को अपनाया है। जिसमें मनुष्य का विकास हो रहा है। मनुष्य शिक्षित बनकर, गतिमान होकर समानता की पैरवी करता है। मदन दिक्षित का 'मोरी की ईट' उपन्यास में मिशनरीयों द्वारा आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अपनाया है । इसमे जैकब और फ्लोरा आधुनिक विचारधारा की पहल करते हैं। वे अपने स्कूल में परंपरागत मान्यताओं और भेदभाव को नकारकर समानता और आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अपनाते है।

आज सरकारी शिक्षा प्रणाली ग्रामीण लोगों के हर घटक तक पहुँचाकर विकास करना चाहती है । भारत की अधिकतर आबादी ग्रामीण परिवेश में रहती है। जब उनका विकास होंगा, तब राष्ट्र की प्रगति हो सकती है। इसलिए सरकार इन लोगों पर सर्व शिक्षा अभियान के माध्यम से अधिक ध्यान दे रही है। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का रामलाल इसका सार्थक उदाहरण है । वह ग्रामीण जीवन के पिछड़े

वर्ग को विकास की राह पर लाना चाहता है। इसलिए वह चमार बस्ती में स्कूल निर्माण करता है। अध्यापक की व्यवस्था करके लोगों को शिक्षित बनने का आवाहन करता है। शहरों में शिक्षा प्रणाली ने उच्च विकास किया है, परंतु उसके नकारात्मक पहलू भी सामने आ रहे हैं। शहरों में एकतरफ शिक्षा से विकास हो रहा है तो दूसरी तरफ शिक्षा क्षेत्र में विषमता नजर आ रही है। इससे समाज दिशाहीन होकर समाज में विषमता फैल रही है। इससे राष्ट्र का पतन होता हुआ नजर आता है। गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' उपन्यास इस प्रवृत्ति की पहल करता है। इसमें कानपुर के आय.आय.टी. का चित्रण है। शहरी शिक्षा प्रणाली में विषमता और जातियता फैलने से राम उजागर जैसा छात्र इस व्यवस्था का शिकार बनता है।

सरकारी शिक्षा प्रणाली में हम देखते है कि सरकार बुद्धिमान युवक निर्माण करना चाहती है,लेकिन समाजव्यवस्था में जो असमानता है उससे विकास नहीं हो रहा है। आज भी भारत में मनुवादी मानसिकता परंपरागत शिक्षा प्रणाली अपनाना चाहती है। साथ ही सरकार शिक्षा प्रणाली पर अधिक खर्च करती है, पर वह योजना छात्रों तक नहीं पहुँच पाती है। उसमे भ्रष्टाचार होता रहता है। भारत में आज भी उच्च शिक्षित दलितों पर अन्याय होता है। उसकी ओर हीन दृष्टि से देखा जाता है। तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास में यह प्रणाली नजर आती है। गिरिशकुमार उच्च शिक्षित होने पर भी इस व्यवस्था का शिकार बनता है। उसे दिल्ली जैसे शहर में जातियता के नामपर अपमानित किया जाता है। यह विषमता आज प्राथमिक, माध्यमिक तक ही नहीं, बल्कि, उच्च शिक्षा में दिखाई देती है। जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' उपन्यास, मदन दीक्षित का 'मोरी की ईट' उपन्यास या गिरीराज किशोर का 'परिशिष्ट' उपन्यास इस विषमता को उजागर करता है। इसप्रकार उपन्यासकारों ने इस शिक्षा प्रणाली पर अध्ययन करके कलम चलाई है। उन्होंने गलत धारणाओं पर प्रहार करते हुए सही रास्ता दिखाने का प्रयास किया है ।

अध्यापक का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण आदर्श है। पर कुछ अध्यापक अपने कर्तव्य से मुखर रहे हैं। इसका सार्थक उदाहरण देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास के अध्यापक त्रिवेदी हैं। साथ ही अनेक अध्यापक छात्रों में भेद करते है। उनमें जातियता, सांप्रदायिकता नजर आती है। गिरीराज किशोर का 'परिशिष्ट', मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व' उपन्यास इसकी पैरवी करता है। अध्यापक समाज को दिशा देने का कार्य करते हैं। अपने छात्रों पर संस्कार करते हैं। 'भ्रमभंग' उपन्यास का चंदन अपने छात्रों पर अच्छे संस्कार करता है पर कुछ अध्यापक

संस्कृति के नामपर गलत व्यवहार करते हैं। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास के 'शिवानंद शर्मा', 'एकलव्य' उपन्यास के आचार्य द्रोण इसके सार्थक उदाहरण हैं।

अध्यापक समाज को दिशा देने का कार्य करते हैं। वे समाज में व्याप्त बुराईयों को नष्ट करते हैं और स्वस्थ समतावादी समाज निर्माण करते हैं। समाजसेवा ही उनका कार्य होता है। मदन दीक्षित के 'मोरी की ईंट' उपन्यास के फ्लोरा और जैकब कट्टरता के स्थानपर धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे सर्वधर्मसमभाव को प्रधानता देकर सामाजिक समता लाने का कार्य करते हैं। जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास का चंदन इसकी पैरवी करता है। अध्यापक परंपरा से 'अर्थ' को महत्व न देकर अपने कर्तव्य को महत्व देते आए हैं। वे समाजकार्य करना अपना कार्य मानते है। 'मोरी की ईंट' उपन्यास के फ्लोरा और जैकब इसके सार्थक उदाहरण है। वे अपने कार्य से मानवतावादी विचार प्रवाहित करने का कार्य करते है। वे अमानवीयता को नकारकर मनुष्य को न्याय देने का कार्य करते हैं। सत्यप्रकाश के 'जस तस भई सवेर' उपन्यास में मानवतावादी विचार सामने आते हैं। इस उपन्यास का पात्र रूपलाल मानवतावादी विचारों को समाज के सामने रखता है।

अध्यापक सदैव राष्ट्रीय दृष्टिकोण को सामने रखकर कार्य करते हैं। उनका दायित्व होता है कि वे समाज को मार्गदर्शन करके योग्य रास्ता दिखाकर राष्ट्रीय विकास में योगदान दे। तेजिंदर के 'उस शहर तक' उपन्यास के आसना सर में राष्ट्रीयता के विचार दिखाई देते हैं। अध्यापक अपने छात्र के प्रति आदर्श होते हैं । अध्यापक सदैव अपने छात्र के प्रति आदर्श दृष्टिकोण रखते हैं। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का सुनीत अपने छात्र के प्रति आदर्श दृष्टिकोण रखता है। लेकिन कुछ जगह पर अध्यापक भेदभाव करते नजर आते हैं। गिरीराज किशोर के 'परिशिष्ट' उपन्यास के अध्यापक इसप्रकार की मानसिकता रखते हैं। इसप्रकार अध्यापक का शिक्षा प्रणाली की ओर देखने का दृष्टिकोण सामने आता है।

हिंदी उपन्यासों में शिक्षा क्षेत्र के संदर्भ में अध्ययन करने पर अनेक समस्याएँ सामने आ जाती है। आज शिक्षा जगत में भ्रष्टाचार ने हाहाकार मचा दिया है। रामधारीसिंह दिवाकर के 'आग पानी आकाश' तेजिंदर के 'उस शहर तक' और देवेश ठाकुर 'भ्रमभंग' उपन्यास में भ्रष्टाचार की समस्या दिखाई देती है। 'भ्रमभंग' उपन्यास से स्पष्ट होता है कि कॉलेज के अध्यापक कामचोर और भ्रष्ट हैं। विभागाध्यक्ष ज्यूनिअर अध्यापकों का शोषण करके भ्रष्टाचारी वृत्ति दर्शाते हैं। आज भारत शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ने का कारण गरीबी है। गरीबी के कारण अधिकतर छात्र स्कूल नहीं जा

पाते हैं, जो स्कूल जाते हैं, उन्हें आर्थिक विपन्नता के कारण शिक्षा बीच में छोड़नी पड़ती है। जो शिक्षा प्राप्त करते हैं उन्हें अधिक संघर्ष करना पड़ता है। देवेश ठाकुर का 'भ्रमभंग' मदन दीक्षित का 'मोरी की ईट ' और मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व' आदि उपन्यासों से गरीबी की समस्या सामने आ जाती है। गरीबी के कारण 'मुक्तिपर्व' का नायक सुनीत लॅम्प पोस्ट के लाईट में अध्ययन करता है। 'मोरी की ईट ' उपन्यास का सोहन गरीबी के कारण मुफ्त में मिलनेवाले मिशनरी स्कूल में पढ़ता है। 'भ्रमभंग' उपन्यास का चंदन पढ़ाई के रोजगार करता है, क्योंकि उस पर ही पूरे परिवार की जिम्मेदारी है। आज शिक्षा क्षेत्र में मूल्यहीनता ने कहर किया है। आज शिक्षा क्षेत्र में भ्रष्टाचार अनैतिकता को बढ़ावा मिल रहा है। अपने स्वार्थ के लिए अनेक नए–नए षड़यंत्र रचकर अमानवीयता का परिचय दे रहे है। 'एकलव्य' उपन्यास के आचार्य द्रोण 'परिशिष्ट' उपन्यास के अध्यापक 'भ्रमभंग' उपन्यास के विभागाध्यक्ष आदि में मूल्यहीनता नजर आती है।

हिंदी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों से बेरोजगारी की समस्या को उजागर किया है। आज शिक्षा के क्षेत्र में और समाज में सुधार होने से छात्र पढ़ाई कर रहे है। लेकिन उनके सामने बेरोजगारी की समस्या सामने आ रही है। बेरोजगारी को रोकने में सरकार नाकाम रही है। इससे समाज दिशाहीन हो गया है। 'भ्रमभंग', 'उस शहर तक', 'परिशिष्ट' आदि उपन्यासों से बेरोजगारी की समस्या सामने आ गई है। 'भ्रमभंग' उपन्यास का नायक चंदन एम.ए. उत्तीर्ण है। लेकिन उसे रोजगार नहीं है। इसलिए उसे दर–दर के ठोकर खाने पड़ते है। मुम्बई में इंटरव्यू जाने के लिए उसके पास पैसे नहीं है। वह मित्रों से पैसे लेकर मुम्बई चला जाता है। वहाँ पर उसे टेम्परारी नौकरी मिलती है। उसका और परिवार का खर्चा पूरा नहीं होता है। आज छात्र और अध्यापकों में भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता फैल रही है। जिससे पूरा परिवेश गंदा हो गया है और शिक्षा क्षेत्र दिशाहीन हो गया है। 'एकलव्य', 'मोरी की ईंट' और 'भ्रमभंग' उपन्यास में हमें उचित परिवेश का अभाव नजर आता है। आज शिक्षा क्षेत्र में अवसरवादिता की प्रवृत्ति पनप रही है। इसकारण शिक्षा क्षेत्र अपना सन्मान खो चुका है। आज अध्यापक सिर्फ स्वार्थ, भ्रष्टाचार और अनैतिकता को अपना रहे है। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का शिवानंद शर्मा, 'भ्रमभंग' उपन्यास के विभागाध्यक्ष और 'परिशिष्ट' उपन्यास के अध्यापक इसके प्रमाण हैं। साथ ही शिक्षा माध्यम की समस्या सामने आ रही है। आज शिक्षा क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या जातियता है। आज जातियता के कारण शिक्षा क्षेत्र का ही नहीं बल्कि राष्ट्र का नुकसान हो रहा हैं। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास का अध्यापक पाण्डे, 'एकलव्य' उपन्यास का आचार्य द्रोण

और 'परिशिष्ट' उपन्यास के अध्यापक जातियता को अपनाकर भेदभाव करते है। इसप्रकार आज शिक्षा क्षेत्र में अनेक समस्या सामने आ रही है।

समसामयिक हिंदी उपन्यासों में लेखकों ने शिक्षा प्रणाली का वास्तविक चित्रण किया है। उन्होंने शिक्षा प्रणाली में व्याप्त समस्याओं का यथार्थ चित्रण करके समाधान देने का प्रयास किया है। वे शिक्षा के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाकर वैचारिक क्रांति का निर्माण करना चाहते हैं। साथ ही युवा वर्ग को सही राह दिखाने का काम करके अध्यापक के आदर्श दृष्टिकोण से परिचित कराने का काम किया है।

उपलब्धियाँ :

वस्तुत: प्रत्येक शोध प्रबंध की कई उपलब्धियाँ हैं जो अनुसंधान क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सिध्द होती है। प्रस्तुत विषय के अनुसंधान की मुख्य उपलब्धियाँ ये हैं।

1 उपन्यासकार शिक्षा के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाना चाहते है।

2 उपन्यासकार मानवतावादी मूल्यों को अपनाकर वैचारिक क्रांति की अपेक्षा करते है।

3 अध्यापक के माध्यम से समाज में दिशा देने का काम कर रहे है।

4 युवा वर्ग के माध्यम देश के विकास में योगदान देना चाहता है।

5 समाज में व्याप्त समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर स्पष्ट करके समाधान ढूँढ़ने का प्रयास उपन्यासकारों ने किया है।

अध्ययन की नई दिशाएँ :

निम्नलिखित विषयों पर अनुसंधान किया जा सकता हैं।

1 इक्कीसवीं शती के हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली

2 समकालीन हिंदी उपन्यासों में अध्यापक वर्ग

3 समकालीन हिंदी उपन्यासों में छात्र वर्ग

4 समकालीन हिंदी उपन्यासों में शिक्षा जगत् का यथार्थ

5 समकालीन हिंदी उपन्यासों में जातीयता/धर्मांधता का चित्रण

6 समकालीन हिंदी उपन्यासों में शिक्षाविषयक समस्याओं का अध्ययन

7 समकालीन हिंदी उपन्यासों में शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकताएँ

प्रत्येक शोध विषय की अपनी व्याप्ति तथा सीमाएँ होती है। मैंने भी विवेच्य विषय को लेकर अपनी बात स्पष्ट की है। उम्मीद करता हूँ कि अब आनेवाले समय में उर्पयुक्त विषयों पर स्वतंत्र रूप से शोध–कार्य हो सकता है।

ग्रंथानुसूची

ग्रंथानुसूची

आधार स्त्रोत

अ) विवेच्च उपन्यास

1. ठाकुर देवेश, **'भ्रमभंग',** संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्र. सं. 1992
2. कर्दम जयप्रकाश – **'छप्पर',** संगीता प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1994
3. दीक्षित मदन, **'मोरी की ईंट'**, शब्दाकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1996
4. प्रधान चंद्रमोहन, **'एकलव्य',** अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1997
5. तेजिंदर, **'उस शहर तक',** ज्ञानभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1997
6. किशोर गिरीराज, **'परिशिष्ट',** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1998
7. सत्यप्रकाश, **'जसतस भई सवेर',** कामना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1998
8. दिवाकर रामधारीसिंह, **'आग, पानी, आकाश',** नैशनल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1999
9. नैमिशराय मोहनदास, **'मुक्तिपर्व',** अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2002

आ) सहायक ग्रंथ सूची

हिंदी

1. अग्रवाल रमेश, भारतीय शिक्षा व्यवस्था, आधार प्रकाशन, जयपुर, 1998
2. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
3. उपाध्याय राजेंद्र, शिक्षा मनोविज्ञान, वंदना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
4. कुमार राकेश, वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
5. गांधी महात्मा, नई तालीम की ओर, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1936
6. गुप्ता, मानसी, भारतीय शिक्षा और युवकों की समस्याए, अनुराग प्रकाशन, कानपुर, 2001
7. (संपा) गुप्ता पवनकुमार, शिक्षा, सभ्यता और आधुनिकता, परंपरा प्रकाशन–दिल्ली,2005,
8. गुप्ता लक्षता, भारतीय समाज और शिक्षा, वंदना पब्लिकेशन–नई दिल्ली, 2007
9. चौसाळकर (डॉ.) अशोक, महात्मा गांधी और हिंद स्वराज्य, संकल्प प्रकाशन, मुंबई,1999

10. (संपा.) थॉमस (डॉ.) पी. एस., मध्यमवर्ग और सामाजिक उपन्यास, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1999
11. दीक्षित श्रीनिवास, भारतीय शिक्षा प्रणाली में समस्याएँ, अनुराग प्रकाशन, कानपुर, 2003
12. धानवी रमेश, शिक्षा की परीक्षा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
13. धुमाळ (डॉ.) क्षितिज, हिंदी के प्रयोगशील उपन्यास, अन्नपूर्णा प्रकाशन, 2011
14. ब्राडबेकर जॉन एस., शिक्षा के आधुनिक दर्शन धाराएँ, राजकमल प्रकाशन–नई दिल्ली, 1992
15. बागी (डॉ.) माधवी, देवेश ठाकुर के उपन्यासों में नारी, विदया प्रकाशन, कानपुर, 2001
16. पांढारीपांडे (डॉ.) नीता, हिंदी उपन्यासों में शैक्षिक समस्याएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 2009
17. पाण्डेय अमेय, मानवीय संवेदनाएँ और शिक्षा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
18. प्रदीप (डॉ.) वंदना, देवेश ठाकुर के उपन्यासों में चरित्र–शिल्प, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, 2008
19. भाटिया के. के., आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, प्रकाश ब्रदर्स, लुधियाना, 1983
20. भार्गव लक्ष्मी, भारतीय शिक्षा व्यवस्था, वंदना पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
21. मिश्र (डॉ.) वैद्यनाथ, शिक्षाशास्त्र, पूजा प्रकाशन–कानपुर,1998
22. यादव गीता, भारतीय संस्कृति और शिक्षा, नयन प्रकाशन, दिल्ली, 2001
23. वाले एच. सी., आधुनिक भारतीय शिक्षा एवं समस्याएँ, लखनौ प्रकाशन, लखनऊ, 1990–91
24. विधाते विकास, भारत में शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
25. शर्मा (डॉ.) सुभाष, भारत में शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
26. शर्मा (डॉ.) विवेक, महात्मा गांधी और शिक्षा प्रणाली, ज्ञानभारती प्रकाशन, मुंबई, 2003
27. शर्मा (डॉ.) राजेंद्र, शिक्षा दर्शन, सूर्या प्रकाशन–जयपुर
28. शुक्ला (डॉ.) रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा–काशी, 1942
29. सिंह (डॉ.) किरण, प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था, वाणी प्रकाशन–नई दिल्ली, 2001
30. सिंह (डॉ.) रामपाल, शिक्षा सिद्धांत, पुस्तक प्रकाशन, आगरा, 1981
31. सिंह वंदना, भारतीय शिक्षा प्रणाली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007

मराठी

1. करंदीकर (डॉ.) सुरेश, भारतीय समाजातील शिक्षण, फडके प्रकाशन, कोल्हापुर, 2002
2. दीक्षित श्रीनिवास, भारतीय तत्वज्ञान, ज्ञानगंगा प्रकाशन–काशी,1999
3. देशमुख एल. जी., भाारतातील शिक्षणाचा विकास, फडके प्रकाशन, कोल्हापुर,2014
4. रंगनाथानंद स्वामी, आधुनिक भारताची उभारणी करण्यात शिक्षकांची भूमिका व जबाबदारी रामकृष्ण मठ, नागपूर, 2008
5. डॉ. राधाकृष्णन, भारतीय शिक्षा आयोग, भारतीय शिक्षा मंत्रालय, 1995
6. रेडेकर (डॉ.) अरविंद, शिक्षणाचे राजकारण, लोकवाड्.मय गृह, मुंबई, 2004
7. वाड (डॉ.) विजया, उत्तम शिक्षक होण्यासाठी, अनुश्री प्रकाशन, पुणे, 2009
8. भारताचे संविधान, चौथी आवृत्ती, 1996, प्रकाशन, भारत सरकार, नवी दिल्ली, अनुदावादन– महाराष्ट राज्याचे, भाषा संचालनालय, मुंबई.

इंग्रजी

1. Altekar (Dr.) A. S., Education in Ancient Indian, Nandkishor & Brother- Banaras, 1951
2. Basu A. N., Education in Mordern India, Concept Publishing company, New Delhi, 1982
3. Keay (Dr.) F. E., Indian Education in Ancient and Later Times, Nandkishor & Brother- Banaras, 1975

शब्दकोश

1. संपा. नवलजी, नालंदा विशाल शब्द सागर, आदीश बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली, संस्करण, 2005
2. संपा. केशव भिकाजी ढवळे, सुलभ हिन्दी–मराठी शब्दकोश, मुंबई 4, ऑक्टोबर 2008
3. आपटे वामन शिवराम, संस्कृत–हिंदी कोश, न्यू भारतीय बुक प्रकाशन, दिल्ली, अष्टम संस्करण, 2004

पत्र–पत्रिका

1. संपा. कच्छल दिपीका, योजना – विकास समर्पित मासिक, बेलापूर, नवी मुंबई– मे, जून 2015
2. संपा. डॉ. गोगटे वामन वासुदेव, भारतीय शिक्षण, महाराष्ट्र भारतीय शिक्षण मंडळ, कांदिवली (प.), मुंबई, सप्टें. ऑक्टो. 2015
3. संपा. डॉ. गोगटे वामन वासुदेव, भारतीय शिक्षण (मराठी शैक्षणिक मासिक), महाराष्ट्र भारतीय शिक्षण मंडळ, बोरीवली, मुंबई, नोव्हें. डिसें. 2015
4. संपा. श्री. जरग एन. के., सातत्यपूर्ण सर्वंकष मूल्यमापन, शिक्षक मार्गदर्शिका भाग 1,2,3,4, महाराष्ट्र राज्य शैक्षणिक संशोधन व प्रशिक्षण परिषद, (विदया परिषद) पुणे–30, मार्च 2010
5. संपा. श्री. जरग एन. के., सर्व शिक्षा अभियान अंतर्गत नवनियुक्त प्रशिक्षित शिक्षकांचे प्रशिक्षण, शिक्षक हस्तपुस्तिका, महाराष्ट्र राज्य शैक्षणिक संशोधन व प्रशिक्षण परिषद, (विदया परिषद) पुणे–30, प्रथम आवृत्ती, मार्च 2012
6. संपा. जरग श्री. एन. के., प्रभावी शालेय व्यवस्थापन, महाराष्ट्र राज्य शैक्षणिक संशोधन व प्रशिक्षण परिषद (विदया परिषद) पुणे–30, प्रथम आवृत्ती, फेब्रुवारी 2013
7. संपा. नांदेडे गोविंद, जीवन शिक्षण, महाराष्ट्र राज्य शैक्षणिक संशोधन व प्रशिक्षण परिषद (विद्या परिषद) पुणे, जून, जूलै 2015
8. संपा. पाटील कृष्णकुमार मा., शिक्षण संक्रमण, महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षण मंडळ, पुणे, मार्च, एप्रिल 2015
9. संपा. सचिव, बालकांचा मोफत व सक्तीचा शिक्षणाचा हक्क अधिनियम, 2009, शालेय शिक्षण व क्रीडा विभाग, मंत्रालय, महाराष्ट्र शासन, मुंबई, नोव्हेंबर 2012
10. http://hi.wikipedia.org/s/it date- 25 July 2015.